डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

द्र कौन ?



शूद्र कौन?

लेखक :

डॉ० बी० आर० अम्बेडकर

अनुवादः

एन० आर० सागर

कंचन प्रकाशन

दिल्ली 110032

ISBN 81-901535-1-X

संस्करण 2003

प्रकाशक कचन प्रकाशन
30/64 गली न० 8 विश्वास नगर,
शाहदरा, दिल्ली–110032
Ph: 2056715

मूल्य 150 00

शब्दाकन अम्बिका कम्प्यूटर,
शाहदरा, दिल्ली–110032

मुद्रक हिन्दुस्तान ऑफसैट प्रिंटर्स दिल्ली – ३२

SHUDRA KAUN
By Dr B R Ambedkar

प्राक्कथन

आधुनिक युग मे शूद्रो के विषय से सम्बन्धित शोध–ग्रन्थ को विषय–वस्तु क सूक्ष्म विवेचन तथा साहित्यिक दृष्टि से सराहा नही जायेगा। क्योकि, प्राय यह कहा जाता हे कि भारतीय आर्यो की सामाजिक–सरचना चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त पर आधारित है। चातुर्वण्य का अर्थ है समाज को चार भागो मे विभाजित करना और ये चार भाग है– ब्राह्मण (पुरोहित), क्षत्रिय (सैनिक), वैश्य (व्यापारी) तथा शूद्र (दास)। इस चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था से शूद्रों की "समस्या" की जटिलता और गहनता प्रकट नही हो पाती। यदि चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था का आशय समाज का चार भागो मे विभागीकरण ही होता तो कुछ भी आपत्तिजनक न होता। दुर्भाग्यवश, चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था रहस्यमयी है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत समाज को चार भागो में बॉटते के साथ–साथ चारो वर्णो का जीवन–स्तर निर्धारित करने के लिये क्रमिक असमानता है। क्रमिक असमानता की प्रणाली मौखिक न होकर वेधानिक और दण्डनीय हे। चातुर्वणर्य–सरचना में शूद्र निम्नतम स्तर पर हैं। इसके साथ ही उस पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये हे जिससे वह अपने स्तर से उबर न सके। जब तक अछूतो का पॉचवा वर्ण नहीं बना था, शूद्र ही अधमतम थे आर्यो की दृष्टि एव व्यवस्था मे। यह है शूद्रों की समस्या का वास्तविक स्वरूप। प्राय लोग शूद्रो की समस्या की ओर दुर्भाग्य से शूद्रो की जनसंख्या अलग से नही दर्शायी जाती। तथापि यह निस्संदेह सच है कि हिन्दुओ मे, अछूतो को छोडकर, शूद्रों की सख्या का घनत्व 75 से 80 प्रतिशत है। अस्तु, इतनी बडी जनसख्या के सम्बन्ध मे लिखा गया शोध–ग्रन्थ साधारण या नगण्य नहीं ठहराया जा सकता।

ग्रथ का विषय है भारतीय आर्य समाज मे शूद्र। एक मत यह है कि आज के युग के शूद्रों के विषय मे गवेषणा आवश्यक नही हे। और, यह मत है शैरिंग महाशय का 14वीं अपनी कृति "हिन्दू कबीले और जातियो" (प्रथम खण्ड, प्रस्तावना पृष्ठ–सख्या 21) मे लिखते है

"शूद्र आर्य थे या भारत की आदिम जाति अथवा वे इन दोनों के मिश्रण थे– इस प्रश्न का महत्त्व नही रह गया है। वे अनादि काल मे ही एक वर्ग बन गये थे जो समाज का चौथा वर्ण था और शेष तीन आर्य वर्णो– ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य – स था यदि यह मान भी लिया जाय कि वे आर्य न थे तब भी वे तीनो

वर्णो से विवाहादि सम्बन्ध स्थापित कर आर्य–जैसे बन गये थे। उदाहरणार्थ शूद्रो की कुछ जातिया तो ब्राह्मण, क्षत्रियो से भी बढ–चढकर है। सक्षेप मे, शूद्र आर्यो की शेष जातियो–वर्णो मे उसी प्रकार एकाकार हो गये है जिस प्रकार इग्लैण्ड की केल्टिक जाति एग्लो–सैक्सन जाति मे मिलकर अपना प्रथक अस्तित्व खो बैठी है। यदि कभी शूद्रा का प्रथक अस्तित्व था भी तो वह पूर्णत लुप्त हो चुका है।"

इस मत मे दो त्रुटियॉ है– (1) आधुनिक शूद्र अनेक जातियो का मिश्रण है तथा भारत के प्राचीन आर्यो के मूल शूद्रो से भिन्न हे, और (2) शूद्रो के विषय मे यह महत्व का विषय नही है कि वे किस जाति या नस्ल के है, महत्वपूर्ण है वे विधान जिनके कारण वे शासित/दण्डनीय है। ये दण्डविधान, निस्सदह, ब्राह्मणो ने उन शूद्रो के लिये तैयार किये थे जिसका प्रथक अस्तित्व विलीन हो चुका है। किन्तु आश्चर्य का विषय हे कि मूल शूद्रो के लिये विहित दण्ड–विधान वर्तमान मे सभी निम्नवर्णीय हिन्दुओ पर लागू हैं, जिनका मूल शूद्रो से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह कैसे हुआ– यह कौतुक का विषय है। इस सम्बन्ध मे मेरा स्पष्ट मत है कि ब्राह्मण–विहित विधान से पीडित प्राचीन आर्यो के शूद्र कालान्तर में इतने पतित हो गये कि जन–जीवन मे उनका कोई स्तर ही नहीं रह गया अथात् उनका स्तर समाज म निम्नतर हो गया। इसके दो परिणाम निकले– प्रथम तो यह कि "शूद्र" शब्द का अर्थ ही बदल गया। इसका अर्थ एक विशेष जाति का नाम न रह कर सामान्यत असभ्य असस्कृत एव अधम जातियों का सयुक्त नाम हो गया। दूसरा परिणाम यह हुआ कि शूद्र शब्द का अर्थ व्यापक होने के कारण दण्ड–विधान का भी विस्तार हुआ। इस प्रकार तथाकथित आधुनिक शूद्र भी उस दण्ड–विधान से शासित होने लगे जिनसे आदि शूद्र होते थे। कुछ भी हो, तथ्य यह है कि अपराधियो के लिये निहित दण्ड–विधान निर्दोषों पर भी क्रूरता से लागू होने लगे। यदि हिन्दू विधि निर्माता इस ऐतिहासिक वास्तविकता से विमुख न होते कि आधुनिक निम्नवर्णीय जन आदि शूद्रो से भिन्न हैं तो यह अन्धेर नही होता। दुर्भाग्य से ये दण्ड–विधान आदि शूद्रो की भाति ही आधुनिक शूद्रो पर बर्बरता से लागू है। इसलिये आदि शूद्रों के लिये निहित दण्ड–विधान आधुनिक शूद्रो पर कैसे लागू हुआ, कम महत्व का विषय नही है।

यदि यह मान भी लिया जाय कि शूद्रो के उद्भव का विषय गवेषणीय है, तब यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या मुझे ऐसा करने का अधिकार है? मुझे यह चेतावनी दी गयी है कि मुझे राजनीति पर तो बोलने का अधिकार है, किन्तु "धर्म" और "भारतीय धर्म का इतिहास" मेरा क्षेत्र नही है। अस्तु मै उसमें प्रवेश न करूँ। मै कोई स्पष्ट कारण नहीं समझ पाता जिसके कारण मेरे आलोचको को मुझे ऐसी चेतावनी या धमकी देने की आवश्यकता पडी। मैं चिन्तक और लेखक होने के नाते इसे व्यर्थ ही मानता हूँ। मै तो यह भी मानने को तैयार हूँ कि मुझे राजनीति मे भी दखल देने का अधिकार नहीं है यह धमकी यदि मुझे भाषा का ज्ञान न होने

के कारण दी जाती, तो मै इसका आधार समझता। फिर भी मै यह मानने को बिलकुल तैयार नही कि सस्कृत का ज्ञान न होने के कारण मै इस विषय में लिख नहीं सकता। सस्कृत साहित्य का मात्र अल्पाश ही तो अग्रेजी भाषा मे सुलभ नहीं है। अब अंग्रेजी अनुवादो के निरन्तर पन्द्रहवर्षीय अध्ययन से यह अधिकार मुझे स्वत ही प्राप्त हो गया है। जहाँ तक मेरी सक्षमता का सम्बन्ध है, वह इस कृति से स्पष्ट हो जायेगी। मै "जहाँ फरिश्ते जाने से भय खाते है, मूर्ख वहाँ प्रवेश कर जाते हैं" आदर्श को दृष्टिगत रखते हुए इस वर्जित क्षेत्र मे प्रवेश करने का साहस कर रहा हूँ।

मेरी अपनी गवेषणा के आधार पर प्रतिपादित मत-निष्कर्ष ही इस पुस्तक की विशेषताये है। इस कृति मे दो विशेष प्रश्न् उठाये गये है– (1) शूद्र कौन थे तथा (2) वे प्राचीन आर्यो के समाज का चौथा वर्ण क्यों और कैसे बने। संक्षेप मे मेरा उत्तर निम्न प्रकार है.

1 शूद्र आर्यो की जातियो मे सूर्यवशीय हैं।

2 एक समय था जब आर्यो मे केवल तीन ही वर्ण थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य।

3 शूद्रों का प्रथक वर्ण न था। व आर्यों के द्वितीय वर्ण– क्षत्रिय वर्ण– का ही एक अग थे।

4 शूद्र राजाओं और ब्राह्मणो मे निरन्तर सघर्ष चला और ब्राह्मणों को शूद्रो के वीभत्स अत्याचार सहने पडे।।

5 शूद्रो के दमन से आक्रान्त ब्राह्मणों ने घृणावश शूद्रो का उपनयन्न बन्द कर दिया।

6 उपनयन– विरोध से शूद्रो का सामाजिक पराभव हुआ। वे सामाजिक स्तर पर इतने पतित हुए कि उन्हें वैश्यों से भी नीचे एक और वर्ण– चौथा वर्ण बनना पडा।

इन निष्कर्षो पर मै विद्वानो की सम्मति की उपेक्षा करता हूँ। ये मत न केवल मौलिक है, प्रत्युत सभी प्रचलित सिद्धान्तो के विरोध में हैं। मेरा मत मान्य है अथवा नही, यह उन पर निर्भर करता है जो इस का निर्णय करने के अधिकारी हैं। यदि विद्वान किसी मत विशेष से सम्बन्धित हो तो निश्चय ही इस मत को अमान्य कर देगा। यदि समालोचक सच्चा है तो आशा है वह मेरे निष्कर्षो से सहमति प्रकट करेगा। कम से कम वह मेरे मत को नूतन दृष्टिकोण कहकर अवश्य सराहेगा।

विद्वानो के अतिरिक्त हिन्दू समाज पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, इसकी कल्पना भी रोचक ही होगी। आज का हिन्दू समाज पाँच श्रेणियो मे विभाजित है। पहला वर्ग पुरात पंथी लोगों का है जो हिन्दू सामाजिक प्रणाली में कोई दोष नहीं मानते दूसरा वर्ग आर्य समाजियों का है वे वेदों में विश्वास व्यक्त करते हैं और

किसी ऐसी बात को नही मानते जो वेद–विहित नही है। तीसरा वर्ग इस व्यवस्था को मृतप्राय कहता है क्योंकि कानून उसे मान्यता नही देता। चौथा वर्ग राजनेताओ का है– वे इन सब बातो से उदासीन है। उनके लिये सामाजिक व्यवस्था मे सुधार मे भी अधिक महत्व स्वराज का है। पॉचवा वर्ग शान्त चिन्तको का है जो सामाजिक सुधार को स्वराज्य से भी महत्वपूर्ण मानते हैं

तीसरे वर्ग के हिन्दू इस कृति को अनावश्यक ही समझेगे और मानेगे म इस मत से सहमत नही हूँ। उनका यह कथन तो सत्य है कानून हिन्दू जाति–व्यवस्था को मान्यता नहीं देता। जाब्ता दीवानी की ग्यारहवी धारा के अनुसार किसी को यह आदेश नही मिल सकता कि वह अमुक वर्ण या जाति का है। यदि वर्ण–निर्धारण पर विचार किया जाता है तो वह केवल विवाह, पैतृक सम्पत्ति, गोद लेने के सम्बन्ध मे। "कानून वर्ण–व्यवस्था को नही मानता" का गलत अर्थ नही लगाना चाहिये। सक्षेप मे–

1 इसका अर्थ यह नही है कि जाति–व्यवस्था को मानना अपराध है।
2 इसका अर्थ यह नही है कि वर्ण–व्यवस्था समाप्त हो गयी है।
3 इसका अर्थ यह भी नहीं कि नागरिको के अधिकारो की प्राप्ति के निमित्त किसी का वर्ण–निर्धारण आवश्यक होने पर ऐसा निर्णय नही किया जायेगा।
4 इसका अर्थ कवल यह है कि कानून जाति–व्यवस्था को मान्यता प्रदान नही करता।

सामाजिक सगठन कानून के बल पर नहीं चलते, कुछ अन्य बातो के बल पर चला करते हैं। इनमे सामाजिक और धार्मिक बल प्रमुख हैं। वर्ण–व्यवस्था धार्मिक आधार पर आधारित है और यही कारण है कि हिन्दुओ का सामाजिक बल इसका साथ देता हैं। वैधानिक निषेध न होने के कारण ही धार्मिक मान्यता के बल पर जाति–वर्ण–व्यवस्था फलती–फूलती रही है। इसका सबसे पुष्ट प्रमाण यह ही है कि शूद्रो और अछूतो की स्थिति आज भी पहले जैसी ही है। अस्तु, यह नहीं कहा जा सकता कि इस विषय की गवेषणा आवश्यक नहीं है।

राजनीतिज्ञ हिन्दू दूरदर्शी नहीं है। अत उनकी बातों पर गभीर चिन्तन की आवश्यकता नहीं। वे कोई ऐसा कार्य करने को तैयार नहीं जिससे उनकी राजनीतिक ख्याति को आघात पहुँचे। अस्तु यह स्वाभाविक है कि वे इसे उत्पात ही समझे।

यह पुस्तक आर्य समाजियो पर भीषण आघात करती है। मेरे मत का उनसे दो आधारो पर मतभेद है। आर्य समाजियो का विश्वास है कि आर्यो मे प्राचीन काल से ही चार वर्ण है। इसके विपरीत प्राचीन ग्रथों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में आर्यों में केवल तीन ही वर्ण थे आर्य समाजी यह भी कहते हैं वेद ईश्वर कृत

है अत अनादि हैं। परन्तु, इस पुस्तक मे स्पष्ट किया गया है कि वेदो के अनेक भाग विशेषकर "पुरुष सूक्त" ब्राह्मणो ने अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिये कालान्तर मे प्रक्षेप किये। ये दोनो मत आर्य समाजियो के सिद्धान्तो पर भीषण आघात करते हैं।

मुझे आर्य समाजियों का विरोध करने में रंचमात्र भी खेद या सकोच नहीं है। उन्होन हिन्दू समाज मे भ्रान्ति का प्रचार किया है। "वेदो के आधार पर स्थापित सस्थाये भी वेदो की भॉति ही अनादि, अनन्त और अभ्रान्त है और उनमे परिवर्तन या सशोधन की आवश्यकता नही है" मत का प्रचार समाज का घृणिततम अहित है। म यह भली भॉति जानता हूँ कि जब तक आर्य समाज–विचार धारा को पूर्णत समाप्त नहीं कर दिया जाता, हिन्दू समाज वाछनीय सुधारो की आवश्यकता को स्वीकृति नहीं देगा। और यह सत्कार्य मै इस पुस्तक के माध्यम से कर रहा हूँ– कोई अन्य करे या न करे।

वर्षो से मैं कट्टर हिन्दुओ से सघर्ष करता चला आ रहा हूँ। अत मे जानता हूँ कि वे क्या कहेंगे। एक नम्र और सीधा–सादा हिन्दू, जब उसके धार्मिक ग्रन्थों की आलोचना की जाती है, हिंसक क्यों हो उठता है– यह तथ्य मै आज तक नही समझ पाया। इसका पता मुझे पहली बार तब चला जब गत वर्ष मेरे मद्रास भाषण से क्रोधित हो उठे हिन्दुओ ने अश्लील, अकथनीय और अमुद्रणीय गालियो आर मेरे जीवन के लिये धमकी–भरे पत्रो की मुझ पर बरसात की। पिछली बार तो उन्होने मेरा पहला अपराध मान कर मुझे छोड दिया था, किन्तु इस बार क्या कर वेठगे, मैं नहीं जानता। इस पुस्तक को पढने से उनका आक्रोश और क्रोध और भडक उठगा क्योकि यह मेरे अपराध की पुनरावृत्ति मात्र ही नही है, प्रत्युत मेरे द्वारा प्रस्तुत धार्मिक ग्रथों के उद्धरण एव अध्याय उनके राजनैतिक हितो, जातिगत पक्षपात और स्वार्थो पर भीषण आघात करते हैं। मैं उनकी धमकियो से भयभीत नहीं हूँ। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि उन्होने अपने धर्म को व्यवसाय बना रखा है। उन जैसा स्वार्थी विश्व मे कहीं भी नही है। उन्होने अपनी जाति के स्वार्थो की सिद्धि के लिये अपने ज्ञान का दुरूपयोग किया है। क्या यह आश्चर्य का विषय नही कि इन तथाकथित पतित–पावन ग्रथो के प्रावधानो के विरुद्ध आवाहन करने वाले व्यक्ति पर कट्टर हिन्दुओ के पागल कुत्ते टूट पडते है और तथाकथित लब्धप्रतिष्ठ निष्पक्ष कहलाने वाले हिन्दू विद्वान उनका साथ देते हैं। यहाँ तक कि उच्च न्यायालयों के हिन्दू न्यायाधीश और भारतीय राज्यो के हिन्दू प्रधान मन्त्री भी इन तत्वों का साथ देने मे सकोच नहीं करते। वे मात्र गर्जना तक ही अग्रणीय नही रहते, आक्रमण मे भी साथ देते हैं। उनका विचार है कि उनका सामाजिक उच्च स्तर कट्टरता के विरोध मे उठने वाले किसी भी स्वर को दबाने के लिये यथेष्ट है। यह अत्याचार का अतिक्रमण नहीं तो क्या है? मै इन सुशील सज्जनो को बता देना चाहता हूँ कि मैं उनकी धमकियों से अपने निश्चय से नहीं हटूँगा वे डॉ० के

इस कथन से अनभिज्ञ है "मै दुष्टो के भय से छली/चोर को पकडने से बाज न आऊँगा।" मै डॉ० जानसन की भॉति ही, चाहे कुछ क्यो न हो, ऐतिहासिक सत्य सिद्धान्तो का अनुगमन करते हुए उन धार्मिक ग्रन्थो की पोल खोलता रहूँगा जिनके कारण देश और समाज का पतन–पराभव हुआ है। भले ही वर्तमान पीढी इसका सम्मान न करे, किन्तु भावी पीढियॉ इसका सम्मान करेगी। मै सफलता से निराश नहीं हूँ। महाकवि भवभूति ने कहा है– "समय अनन्त है और पृथ्वी विस्तीर्ण। किसी दिन काई अवश्य पैदा होगा जो मेरे मत की सराहना करेगा।" कुछ भी हो, यह पुस्तक कट्टरता को चुनौती है।

हिन्दू समाज का एकमात्र वर्ग सामाजिक सुधारो की अनिवार्यता को मानता है। वह वर्ग इस पुस्तक का स्वागत करेगा। उनके विचार से इस समस्या के समाधान मे एक लम्बा समय ओर अनेक पीढियो का प्रयास अपेक्षित है। अस्तु, इसका अनुसंधान स्थगित करना अनुचित है। एक उत्साही हिन्दू राजनीतिज्ञ भी यह मानता हे कि सामाजिक सकीर्णता हर मोड पर सकट खडा कर देती है। ये कठिनाइयॉ सामयिक न होकर हर क्षण की कठिनाइयाँ है। मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दू समाज मे एक ऐसा भी वर्ग है। यद्यपि ऐसे लोगो की सख्या अल्प ही होगी, तदपि मै अपना पक्ष उन्हीं के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

यह कहा जा सकता है कि मैने हिन्दू धर्म–ग्रथो को अपेक्षित सम्मान नही दिया। इसके दो कारण है– प्रथम तो यह कि मैंने इतिहासवेत्ता की दृष्टि से गवेषणा की हे। इतिहासवेत्ता सत्यानुसंधान के लिये धार्मिक ग्रथो एव इतर ग्रथो मे कोई भेद–भाव नहीं करता। उसका मुख्य ध्येय तो सत्य की खोज रहता है। अस्तु, इस कार्य में मैं हिन्दू ग्रथों के प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं कर सका, तो वह क्षम्य है। दूसरी बात यह है कि धार्मिक ग्रथो मे श्रद्धा करायी नही जाती। वह तो स्वाभाविक स्थितियो मे स्वय पनपती या भग होती है। हिन्दू ग्रंथो के प्रति ब्राह्मण विद्वान की श्रद्धा तो स्वाभाविक है किन्तु एक अब्राह्मण शोधकर्ता के लिये अस्वाभाविक। इस भेद को सरलता से समझा जा सकता है। ये पवित्र ग्रंथ ब्राह्मणों द्वारा लिखित हैं और इनमे ब्राह्मणो की श्रेष्ठता और विशेषाधिकारो का वर्णन है। अत ब्राह्मण इन ग्रथो की पवित्रता–पावनता को अक्षुण्ण क्यो न बनाये रखें। यही कारण है कि इन ग्रन्थो मे ब्राह्मणों की श्रद्धा और अब्राह्मणो की अश्रद्धा है। अब्राह्मण यह जानकर ही कि ये तथाकथित पावन ग्रथ ही उनके सामाजिक पराभव के लिये उत्तरदायी है, ब्राह्मण विरोधी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अस्तु, इन ग्रथो के प्रति मेरा श्रद्धावान न होना स्वाभाविक है। यदि यह तथ्य दृष्टिगत रखा जाय कि मैं अब्राह्मण हूँ, अब्राह्मण ही नहीं अछूत हूँ। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि इन ग्रथो के प्रति मेरी घृणा किसी अन्य अब्राह्मण से कम नहीं है।

इन पुनीत पावन ग्रथों के प्रति ब्राह्मणों की श्रद्धा और अब्राह्मणों की

स्वाभाविक है किन्तु एक अब्राह्मण शोधकर्ता के लिये अस्वाभाविक। इस भेद को सरलता से समझा जा सकता है। ये पवित्र ग्रथ ब्राह्मणो द्वारा लिखित है और इनमे ब्राह्मणो की श्रेष्ठता और विशेषाधिकारों का वर्णन है। अत ब्राह्मण इन ग्रथो की पवित्रता–पावनता को अक्षुण्ण क्यो न बनाये रखे। यही कारण है कि इन ग्रन्थो मे ब्राह्मणो की श्रद्धा और अब्राह्मणो की अश्रद्धा है। अब्राह्मण यह जानकर ही कि ये तथाकथित पावन ग्रथ ही उनके सामाजिक पराभव के लिये उत्तरदायी हैं, ब्राह्मण विरोधी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अस्तु, इन ग्रथो के प्रति मेरा श्रद्धावान न होना स्वाभाविक है। यदि यह तथ्य दृष्टिगत रखा जाय कि मै अब्राह्मण हूँ, अब्राह्मण ही नही अछूत हूँ। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि इन ग्रथो के प्रति मेरी घृणा किसी अन्य अब्राह्मण से कम नही है।

इन पुनीत–पावन ग्रथो के प्रति ब्राह्मणों की श्रद्धा और अब्राह्मणो की अश्रद्धा से अवगत हूँ। हिन्दुओ के सामाजिक इतिहास की गवेषणा इन्हीं ग्रन्थो पर निर्भर है। अत इसके प्रति ब्राह्मणो की श्रद्धा और अब्राह्मणो की अश्रद्धा ऐतिहासिक सत्यानुसधान मे एक बहुत बडी बाधा है।

फिर ब्राह्मण शोधकारो द्वारा ऐतिहासिक गवेषणा में की गयी चालाकी भी प्रत्यक्षत स्पष्ट है। क्योकि ब्राह्मण धर्म–ग्रन्थो को पुनीत पावन बनाये रखने मे उनके दो स्वार्थ निहित है। प्रथम तो यह कि ये ग्रथ उनके पूर्वजो द्वारा सृजित है। अस्तु पितृ–भक्ति के कारण सत्य–हनन करते हुए भी वे इनका समर्थन करते है। दूसरा स्वार्थ यह है कि इन ग्रथो मे ब्राह्मणो को श्रेष्ठता एवं प्रभुता का समर्थन हैं। इसलिये भी ब्राह्मण शोधकार ब्राह्मण की सत्ता की क्षति पहुँचाने वाले कृत्यों के प्रति सतर्क रहा है। वर्ण–व्यवस्था से होने वाली स्वार्थ–सिद्धि तथा वर्ण–व्यवस्था का प्रतिष्टाता उसके पूर्वजो का सम्मान सतत् सतर्क ब्राह्मण गवेषणों को सत्यानुसंधान या सत्य–भाषण से विरत रखता रहा है। काल–निर्धारण तथा वशावली–खोज के अतिरिक्त अन्वेषण के क्षेत्र मे ब्राह्मणो का योगदान नगण्य ही रहा है। अब्राह्मण शोधकार इन बन्धनो से मुक्त है। शोधकारो की इन दो श्रेणियो का भेद मात्र परिकल्पना नही है और यह इस पुस्तक से स्पष्ट हो जायेगा। पुस्तक मे स्पष्ट दर्शाया गया है कि ब्राह्मणो ने शूद्रो के विरुद्ध क्या–क्या षडयत्र रचे। क्या ब्राह्मण/शोधकार ऐसा साहस कर सकता है?

यह सत्य है कि अब्राह्मण/शोधकार के समक्ष ब्राह्मण शोधकारों जैसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अस्तु यह सभावना हो सकती है कि वह सम्पूर्ण हिन्दू साहित्य को शोध–कार्य के अयोग्य ठहराकर रद्दी की टोकरी मे फैंकने की बात कहे। किन्तु यह इतिहासकार का स्वभाव नहीं है। इतिहासकार तो निर्दोष, निष्ठावान, निष्काम

निस्पृह निर्भीक लगनशील सत्य प्रेमी इतिहास का महान कृत्यो का सरक्षक, विस्मरण का शत्रु, विगत का साक्षी और भविष्य का मार्गदर्शक होता है। उसे स्पष्ट मस्तिष्क, उपलब्ध साक्ष्या–साक्ष्य भले ही नकली और जाली हो– का परीक्षण करने को तत्पर रहना होता है अब्राह्मण विद्वान के लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य है– यह अन्वेषण मे यह सत्य की खोज के लिये अब्राह्मण राजनीति अथवा प्राचीन साहित्य के आधार–हीन प्रक्षेपो को समाहित कर सकता है। किन्तु, अपने इस अन्वेषण मे मैने अपने को पूर्णत निष्पक्ष रखा है। शूद्रो के विषय मे खोज करते समय मेरे मस्तिष्क में पूर्ण ऐतिहासिकता रही है। यह सर्वविदित है कि इस देश मे अब्राह्मणो का– शूद्रों का – एक आन्दोलन चल रहा है ओर उससे मेरा निकट का सम्बन्ध है। फिर भी पाठक यह देखेगे कि मैने इस कृति को अब्राह्मणी राजनीति का प्रश्न या प्राक्कथन नही बनाया।

मैं इस शोध–पुस्तक की कमियो से अनजान नहीं हूँ। इसमे प्राचीन ग्रथो के अनेक लम्बे–लम्बे अश उद्धृत किये गये है। यह कलात्मक कृति भी नही है। अस्तु संभावना है कि पाठक पढते–पढते उकता जायें फिर भी इसमे सारा दोष मेरा अपना नही है। मेरी अपनी बात होती तो मैं स्वेच्छा से काट–छॉट कर सकता था। किन्तु यह पुस्तक तो उन अबोध शूद्रो के लिये लिखी गयी है जिन्हे यह मालूम नही कि उनकी यह स्थिति क्यों हे। उन्हे इससे कोई सरोकार नही कि अपनी बात को स्पष्ट करने के लिये क्या कला अपनायी जाती है, वे तो विस्तृत और पुष्ट प्रमाण चाहते हे। मैने जिन लोगो को पाण्डुलिपि दिखाई है, उन्होने उद्धरण प्रस्तुत करने का आग्रह किया है। साक्ष्य–सामग्री के प्रति उनकी जिज्ञासा इतनी प्रबल थी कि मै उनके आग्रह को नहीं टाल पाया। पुस्तक का कलेवर बढने तथा साक्ष्य–सामग्री के सहज सुलभ न होने के कारण मैं उद्धरण–प्रकारणो का अग्रेजी अनुवाद ही प्रस्तुत कर पाया हूँ संस्कृत मूल प्रस्तुत नहीं कर सका।

यदि यह स्मरण रखा जाय कि शूद्रो को चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था के परिणामस्वरूप अपरिमित क्षति उठानी पडी है तथा यही व्यवस्था उनके पतन–पराभव का मूल कारण यही है और शूद्र – केवल शूद्र ही उसका उच्छेद करने मे सक्षम हैं तब यह सरलता से समझा जा सकता है कि शूद्रो को उनकी स्थिति से अवगत कराने एव प्रचलित प्रमाण–दृष्टान्तो को मिटाने या उनमे आवश्यक काट–छॉट करने के लिये सन्नद्ध करने की मुझे आवश्यकता क्यो पडी।

सर्वप्रथम तो मैं महाभारत के चालीसवे अध्याय के "शान्ति पर्व" के रचनाकार का आभारी हूँ। यद्यपि यह कहना कठिन है कि वह कौन था– व्यास, वैशम्पायन, सूत, लोमहर्ष अथवा भृगु। इनमे से कोई भी क्यो न हो, उसने पैजवन

अश्रद्धा से अवगत हूँ। हिन्दुओ के सामाजिक इतिहास की गवेषणा इन्हीं ग्रन्थो पर निर्भर है। अत इसके प्रति ब्राह्मणो की श्रद्धा और अब्राह्मणो की अश्रद्धा ऐतिहासिक सत्यानुसधान मे एक बहुत बडी बाधा है।

फिर ब्राह्मण शोधकारो द्वारा ऐतिहासिक गवेषणा ने की गयी चालाकी भी प्रत्यक्षत स्पष्ट है। क्योकि ब्राह्मण धर्म–ग्रन्थो को पुनीत पावन बनाये रखने मे उनके दो स्वार्थ निहित है। प्रथम तो यह कि ये ग्रथ उनके पूर्वजो द्वारा सृजित हैं। अस्तु पितृ–भक्ति के कारण सत्य–हनन करते हुए भी वे इनका समर्थन करते है। दूसरा स्वार्थ यह है कि इन ग्रथो मे ब्राह्मणो को श्रेष्ठता एवं प्रभुता का समर्थन हैं। इसलिये भी ब्राह्मण शोधकार ब्राह्मण की सत्ता की क्षति पहुँचाने वाले कृत्यों के प्रति सतर्क रहा है। वर्ण–व्यवस्था से होने वाली स्वार्थ–सिद्धि तथा वर्ण–व्यवस्था का प्रतिष्ठाता उसके पूर्वजों का सम्मान सतत् सतर्क ब्राह्मण गवेषणो को सत्यानुसधान या सत्य–भाषण से विरत रखता रहा है। काल–निर्धारण तथा वंशावली–खोज के अतिरिक्त अन्वेषण के क्षेत्र मे ब्राह्मणो का योगदान नगण्य ही रहा है। अब्राह्मण शोधकार इन बन्धनो से मुक्त है। शोधकारों की इन दो श्रेणियों का भेद मात्र परिकल्पना नहीं है और यह इस पुस्तक से स्पष्ट हो जायेगा। पुस्तक मे स्पष्ट दर्शाया गया है कि ब्राह्मणो ने शूद्रो के विरुद्ध क्या–क्या षडयत्र रचे। क्या ब्राह्मण/शोधकार ऐसा साहस कर सकता है?

यह सत्य है कि अब्राह्मण/शोधकार के समक्ष ब्राह्मण शोधकारों जैसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अस्तु यह सभावना हो सकती है कि वह सम्पूर्ण हिन्दू साहित्य को शोध–कार्य के अयोग्य ठहराकर रद्दी की टोकरी मे फैंकने की बात कहे; किन्तु यह इतिहासकार का स्वभाव नहीं है। इतिहासकार तो निर्दोष, निष्ठावान, निष्काम निस्पृह, निर्भीक, लगनशील सत्य–प्रेमी, इतिहास का जन्मदाता, महान् कृत्यो का सरक्षक, विस्मरण का शत्रु, विगत का साक्षी और भविष्य का मार्गदर्शक होता है। उसे स्पष्ट मस्तिष्क, उपलब्ध साक्ष्यो–साक्ष्य भले ही नकली और जाली हो– का परीक्षण करने को तत्पर रहना होता है अब्राह्मण विद्वान के लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य है– यह अन्वेषण में यह सत्य की खोज के लिये अब्राह्मण राजनीति अथवा प्राचीन साहित्य के आधार–हीन प्रक्षेपो को समाहित कर सकता है। किन्तु, अपने इस अन्वेषण मे मैने अपने को पूर्णत निष्पक्ष रखा है। शूद्रो के विषय मे खोज करते समय मेरे मस्तिष्क मे पूर्ण ऐतिहासिकता रही है। यह सर्वविदित है कि इस देश मे अब्राह्मणो का– शूद्रों का – एक आन्दोलन चल रहा है और उससे मेरा निकट का सम्बन्ध है। फिर भी पाठक यह देखेंगे कि मैंने इस कृति को अब्राह्मणी राजनीति का प्रश्न या प्राक्कथन नहीं बनाया।

मैं इस शोध–पुस्तक की कमियों से अनजान नहीं हूँ। इसमे प्राचीन ग्रथो के अनेक लम्बे लम्बे अश उद्धृत किये गये हैं यह कृति भी नहीं है

अस्तु संभावना है कि पाठक पढते--पढते उकता जायें फिर भी इसमें सारा दोष मेरा अपना नही है। मेरी अपनी बात होती तो मैं स्वेच्छा से काट—छॉट कर सकता था। किन्तु यह पुस्तक तो उन अबोध शूद्रो के लिये लिखी गयी है जिन्हे यह मालूम नही कि उनकी यह स्थिति क्यो है। उन्हे इससे कोई सरोकार नहीं कि अपनी बात को स्पष्ट करने के लिये क्या कला अपनायी जाती है, वे तो विस्तृत ओर पुष्ट प्रमाण चाहते हैं। मैने जिन लोगो को पाण्डुलिपि दिखाई है, उन्होने उद्धरण प्रस्तुत करने का आग्रह किया है। साक्ष्य—सामग्री के प्रति उनकी जिज्ञासा इतनी प्रबल थी कि मै उनके आग्रह को नहीं टाल पाया। पुस्तक का कलेवर बढने तथा साक्ष्य—सामग्री के सहज सुलभ न होने के कारण मै उद्धरण—प्रकारणो का अग्रेजी अनुवाद ही प्रस्तुत कर पाया हूँ संस्कृत मूल प्रस्तुत नहीं कर सका।

यदि यह स्मरण रखा जाय कि शूद्रों को चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था के परिणामस्वरूप अपरिमित क्षति उठानी पडी है तथा यही व्यवस्था उनके पतन--पराभव का मूल कारण यही है और शूद्र – केवल शूद्र ही उसका उच्छेद करने मे सक्षम हैं तब यह सरलता से समझा जा सकता है कि शूद्रों को उनकी स्थिति से अवगत कराने एवं प्रचलित प्रमाण—दृष्टान्तो को मिटाने या उनमे आवश्यक काट—छॉट करने के लिये सन्नद्ध करने की मुझे आवश्यकता क्यो पडी।

सर्वप्रथम तो मै महाभारत के चालीसवे अध्याय के "शान्ति पर्व" के रचनाकार का आभारी हूँ। यद्यपि यह कहना कठिन है कि वह कौन था— व्यास वेशम्पायन, सूत, लोमहर्ष अथवा भृगु। इनमे से कोई भी क्यों न हो, उसने पैजवन का पूर्ण वृतान्त देकर अनुग्रह ही किया है। यदि वह पैजवन को शूद्र न कहता तो शूद्रो के उद्‌भव का मूल स्रोत ही विलुप्त हो जाता। भावी पीढी के लिये इतनी महत्वपूर्ण सूचना—सामग्री को सुरक्षित रखे जाने वाले रचनाकार का यह अपर उपकार है। इस प्रमाण—साक्ष्य वृतान्त के अभाव मे इस शोध—ग्रन्थ की रचना ही असभव थी।

इस्माइल युसूफ कालेज, अंधेरी, बम्बई के प्रो० कागले का आभारी हूँ जिन्होने इस पुस्तक मे वर्णित—चर्चित संस्कृत श्लोको के अंग्रेजी रूपान्तर की जॉच कर मुझे सहारा दिया है। यह तो सभी जानते है कि मैं सस्कृत का ज्ञाता नहीं हूँ। तदपि मैं आश्वस्त हूँ कि साक्ष्य—सामग्री की विवेचना में मैने अर्थ का अनर्थ नहीं किया है और यह प्रो० कागले के सहयोग का परिणाम है। तथापि इसका अर्थ यह कदापि न लिया जाय कि अग्रेजी रूपान्तर के सम्बन्ध मे इगित की जाने वाली त्रुटियो का दायित्व प्रो० कांगले का है।

प्रो० मनोहर चिटणिस, सिद्धार्थ कॉलेज, बम्बई का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होने विषय—सूची तैयार करने मे अपना अमूल्य सहयोग किया।

10 अक्टूबर 1946 **बी० आर०**

शूद्र वर्ण— एक पहेली

यह सभी जानते है कि 'शूद्र' भारतीय आर्य—समाज का चोथा वर्ण है। किन्तु किसी ने यह जानने का प्रयास नहीं किया कि शूद्र कौन थे और वे हिन्दू समाज का चतुर्थ वर्ण कैसे वन गये? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। अस्तु, यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि वे समाज की विकास—परम्परा अथवा किसी परिवर्तन (क्रान्ति) के फलस्वरूप समाज का चौथा वर्ण बन गये या बनाये गये।

शूद्रो की खोज के लिये हमें सर्वप्रथम भारतीय आर्य समाज की चातुर्वर्णीय व्यवस्था की जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। चातुर्वण्य की व्यवस्था की जानकारी हमे ऋग्वेद के दसवे मण्डल के 90वे मत्र "पुरुष सूक्त" से मिलती है। मत्र मे कहा गया है कि

1 पुरुष के सहस्र सिर (मुख), सहस्र नेत्र और सहस्र पैर है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसने दस अगुल से ग्रहण/आच्छादित किया हुआ है।

2 पुरुष स्वयं ही ब्रह्माण्ड है— जो हो गया है और जो भवितव्य है। वह अमरत्व का स्वामी है और भोजन से वृद्धि पाता है।

3 यह उसकी महानता है। पुरुष उससे भी उत्तम हे। समस्त ब्रह्माण्ड उसका चतुर्थाश हे। शेष तीन चोथाई शून्य (आकाश) मे अमर है।

4 तीन चौथाई के साथ पुरुष ऊपर चढा। उसका एक चतुर्थाश यहाँ उत्पन्न हुआ। उसने विस्तृत रूप धारण कर खाद्य—अखाद्य सभी पदार्थो को आच्छादित कर लिया।

5 उससे वीर्य उत्पन्न हुआ और वीर्य से उत्पन्न पुरुष सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल गया।

6 जब देवताओ ने पुरुष की बलि से यज्ञ किया तो वसन्त का घृत बना, ग्रीष्म की लकडी और पतझड की समिधा।

7 पुरुष का दूर्बा घास पर वध किया गया जिससे देवताओं, साध्यो और ऋषियो ने यज्ञ किया।

8 इस विश्व—यज्ञ से दही और घी बना, जंगली और पालतू पशु पैदा हुए।

9 उस यज्ञ से ऋक और साम की ऋचाए छबद और यजुर्वेद के मत्र पैदा हुए।

10 उससे घोडे, दोनो और दॉतों वाले पशु, गाये बकरी और भेडे पैदा हुए।

11 जब देवो ने पुरुष का विभाजन किया उसे कितने भागो मे बॉटा? उसका मुख क्या था? बाहू क्या थे? उसके पैर क्या थे?

12 ब्राह्मण उसका मुख, राजन्य (क्षत्रिय) बाहु, वैश्य और शूद्र उसके पैरो से उत्पन्न हुए।

13 उसके मानस से चन्द्रमा, नयनो से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा श्वास से वायु की उत्पत्ति हुई।

14 उसकी नाभि से बयार, सिर से आकाश, पैर से पृथ्वी, कान से चार दिशाएँ बना। इस प्रकार देवो ने विश्व की रचना की?

15 जब देवताओ ने पुरुष को बलि के लिये बॉधा, अग्नि के चारो ओर सात लकडियाँ खडी की और तीन बार सात–सात लकडियो की आहुति दी।

16 देवताओ ने बलि देकर यज्ञ किया। यह प्रथम सस्कार था। इन महान् शक्तियो ने पूर्व के साध्यो और देवो के लिये आकाश की रचना की।

पुरुष सूक्त विश्वोत्पत्ति का वर्णन है। दूसरे शब्दो मे विश्वोत्पत्ति–शास्त्र है। किसी भी विकसित–सभ्य देश मे विश्व की उत्पत्ति का वर्णन किसी न किसी प्रकार अवश्य मिलता है। मिस्र वासियो की विश्वोत्पत्ति की कथा लगभग पुरुष सूक्त जैसी है। उनके अनुसार देवता खुनूमू ने कुम्हार की भांति चाक पर विश्व की रचना की। उसने मानव और देवगण पैदा किये। वह स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, जल, पर्वत का निर्माता है। उसी ने पक्षियो, मछलियो, जगली पशुओ, पालतू पशुओ और अन्य कीडे–मकोडो का सृजन किया और उन्हे नर–मादा मे विभाजित किया। इस प्रकार वह पिताओ का पिता, माताओं की माता अर्थात् आदि पिता है। बाइबिल के प्रथम अध्याय मे लगभग इसी प्रकार की विश्व–रचना का उल्लेख है।

विश्वोत्पत्ति का विषय विद्यार्थिया की जिज्ञासा का शमन और बच्चो के मन–बहलाव का साधन भर बनकर रहा है। यही बात समस्त पुरुष सूक्त पर तो नही उसके कुछ भागो पर अवश्य लागू होती है। वह इसलिये कि पुरुष सूक्त के सभी मत्र न तो समान महत्वपूर्ण है और न समान महत्ता ही रखते है। मंत्र 11 और 12 श्रेणी के है तथा शेष दूसरी श्रेणी के। मत्र 11 और 12 को छोडकर शेष मत्रो को न तो कोई हिन्दू जानता है और न उनको मानता है। कोई उनका स्मरण तक नहीं करता। लेकिन मत्र 11 और 12 के विषय मे ऐसा सोचना भूल होगी। प्रत्यक्षत

य मत्र 'चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति सृजनकर्ता से किस प्रकार हुई' के अतिरिक्त कुछ अन्य नहीं बताते। शाब्दिक अर्थ भले ही विश्व–उत्पत्ति मान लिया जाये, लेकिन सचाई कुछ और ही है। भारतीय आर्य इसे एक कवि की आदर्श कल्पना मात्र मानते थे, यह स्वीकार कर लेना भी भयकर भूल होगी। इसके विपरीत, वे सृजनकर्ता के आदेश–निर्देश के रूप मे पुरुष सूक्त मे व्यक्त चार्तुवर्ण की व्यवस्था को सामाजिक आधार मानते थे। इन मत्रो की रचना मे प्रयुक्त भाषा न्याय सगत नहीं है। यह सत्य है कि मत्र–रचना की यह परम्परा है। फिर भी, यह कहना कठिन है कि पुरुष सूक्त का रचयिता अपनी भाषा के आशय–अर्थ से अनभिज्ञ था। मत्र 11 और 12 ससार–उत्पत्ति का वर्णन मात्र नहीं है। वे समाज को विशेष विधान (चातुवर्ण की व्यवस्था) का ईश्वरीय आदेश है।

पुरुष सूक्त द्वारा स्वीकृत विधान ही चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था है। यह ईश्वरीय आदश ही भारतीय आर्य समाज का आदर्श माना गया। इसी आदर्श व्यवस्था ने समस्त भारतीय आर्य जाति को एक विशेष सॉचे मे ढाल दिया।

भारतीय आर्य समाज द्वारा सम्मानित चतुर्वर्ण का व्यवस्था प्रश्न से तो परे है ही वर्णन से भी दूर की चीज है। इसका समाज पर गहरा प्रभाव रहा है। पुरुष सूक्त द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था पर भगवान बुद्ध से पहले किसी ने आवाज तक नहीं उठाई। बुद्ध पूरी तरह सफल न हो पाये। इसका कारण यह था कि बुद्ध के समय म और बौद्ध धर्म के पतन के उपरान्त अनेक शास्त्रकारो ने न केवल पुरुष सूक्त के सिद्धान्तो की रक्षा को अपना व्यवसाय बना रखा था, वे उसका प्रचार–प्रसार भी करते थे।

पुरुष सूक्त के समर्थन–प्रसार की बानगी आपस्तम्ब धर्मसूत्र और वशिष्ट धर्मसूत्र में देखिये। आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहता है –

"जातियॉ चार हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र

इन चारो में प्रत्येक पहली जाति क्रमश बाद की सभी जातियो से उच्च हैं।

शूद्रो और पतितो को छोडकर सभी को उपनयन, वेदाध्ययन तथा यज्ञ (बलि) का अधिकार है।"

वशिष्ठ सूत्र मे इसे दोहराते हुए कहा गया है:–

"बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज है। उनका प्रथम जन्म मॉ की योनि से होता है। और दूसरा उपनयन से होता है। इस (दूसरे जन्म) मे सावित्री मॉ और शिक्षक

पिता माना गया है।

शिक्षक (गुरु) वेदो की शिक्षा देता है इसलिये पिता कहा जाता है।

जातियाँ जन्म और सस्कार की बोधक है।"

एक वेद–वाक्य यह भी है–

"ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय बाहुओ से, वैश्य जघाओ से और शूद्र पैरो से पैदा हुए।"

तात्पर्य यह कि शूद्र (द्विज वर्णो के समान) उपनयन आदि संस्कारों के अधिकार से वचित है।

अन्य शास्त्रकारो ने भी पुरुष सूक्त के "मूल" को तोते की भाँति ही दोहराया है। यहाँ उनके मत की पुनरोक्ति की आवश्यकता नही है। जिन लोगो ने पुरुष सूक्त मे स्वीकृत प्रतिपादित चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था का विरोध किया, उन्हे हिन्दू समाज के शिल्पी मनु ने सर्वदा के लिये दबा कर रख दिया। मनु ने दो कार्य किये। एक तो यह कि "ससार की वृद्धि के लिये ईश्वर ने अपने मुख से ब्राह्मण, क्षत्रिय को बाहो से, वैश्य को जघाओ से और शूद्र को पैरो से पैदा किया है" व्यवस्था देते हुए चतुर्वर्ण को ईश्वरीय आदेश ठहरा दिया कि "ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज वर्ण हैं और शूद्र का केवल एक ही जन्म होता है।"

मनु ने यद्यपि अपने पूर्ववर्ती शास्त्रकारो का अनुसरण किया है। तथापि उसने उनसे एक कदम आगे बढकर दूसरी व्यवस्था भी समाज को दी कि "वेद ही धर्म का एकमात्र और अन्तिम आधार है।"

इस प्रकार मनु ने "पुरुष सूक्त वेद का एक अग है" ध्यान मे रखकर उसमे व्यक्त चार्तुवर्ण की सामाजिक आदर्श व्यवस्था को ईश्वरीय आदेश और विधान के आवरण से मण्डित कर दिया।

(2)

इन कारणों के ज्ञान के लिये पुरुष सूक्त का आलोचनात्मक विवेचन आवश्यक हो गया है। सभी हिन्दू यह मानते है कि पुरुष सूक्त अपूर्व है। नि सदेह यह दावा उस समय किया गया होगा जब मानव मस्तिष्क – विकास की आरम्भिक अवस्था मे था और उसमे [भविष्य के प्रति] अच्छा या बुरा अथवा दूरगामी परिणामो पर विचार करने की क्षमता न थी। यदि वर्ग–हीन समाज की रचना का आदर्श उपस्थित किया जाता तो निश्चय ही पुरुष सूक्त अपूर्व ही नही अनूठा भी होता।

पुरुष–सूक्त ने क्या किया? उसने समाज को जाति–भेद का आदर्श दिया। क्या यह भेद–भाव का आदर्श अपूर्व या अनूठा माना जा सकता है। इसका उत्तर हाँ में केवल कोई ही दे सकता है। यह सत्य है कि वर्ग या श्रेणियाँ हर समाज मे पाई जाती हैं। आज विश्व का विकसित सभ्य समाज तक इस बुराई से नहीं बच सका है। इस दृष्टि से इसमे कोई अपूर्वता या नवीनता नही है।

अब हमे उन कारणों पर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिये जिनकी वजह से पुरुष सूक्त अपूर्व माना जाता है। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि अधिकाशत लोग इससे अनजान है। जब वे इसकी अपूर्वता को जानेगे तो उन्हे जानकर बडा दु ख होगा कि पुरुष सूक्त की अपूर्वता और अनूठापन मानवता और मानव–जाति के साथ कितना बडा धोखा है।

आइये पुरुष सूक्त की सामाजिक विशेषताओ की विवेचना करे। इसके अनूठेपन के कारण इस प्रकार है:–

1 सभी समाजो मे जन–श्रेणियो का अस्तित्व है, किन्तु किसी ने भी उस वास्तविक स्वरूप को समाज के आदर्श के रूप मे नहीं बदला। मात्र पुरुष सूक्त ही एक ऐसा उदाहरण है जिसमे वर्ण–भेद को समाज के आदर्श का दर्जा दिया गया है।

2 किसी भी समाज ने अपने वास्तविक वर्ग–भेद को वैधानिक स्वरुप प्रदान नही किया। ग्रीक का उदाहरण सामने है। प्लेटो जैसे महान् विद्वान के वकालत करने के बावजूद भी वहाँ के लोगो ने वर्ग–भेद को एक आदर्श सामाजिक सरचना का रूप देने की बात नहीं मानी। पुरुष सूक्त ही एक ऐसा उदाहरण है जिसने वर्ग–भेद को सवैधानिक स्वरुप प्रदान किया है।

3 किसी भी समाज ने वर्ग–भेद को समाज का आदर्श न मानकर प्राकृतिक देन ही माना है। पुरुष सूक्त इसमे (सबसे) आगे है। उसने वर्ग–भेद को समाज का आदर्श और प्राकृतिक तो माना ही है, उसे पवित्र और ईश्वरीय आदेश की सज्ञा से मण्डित कर स्थायित्व भी प्रदान किया है।

4 इतिहास साक्षी है कि किसी समाज ने जन– श्रेणियो की सख्या निश्चित नही की। रोम दो वर्गो मे विभाजित था– मिस्र मे तीन जब श्रेणियॉ थी। भारतीय ईरानी भी तीन जातियो – अथ्रवश (पुरोहित), रथेस्तर (सैनिक) और वस्त्र–फायुत (कृषक) में सीमित थे। किन्तु पुरुष सूक्त ने वर्ण–सख्या चार निश्चित की है जो न तो घट सकती है और न बढ ही सकती है।

5 प्रत्येक समाज मे कोई भी जन श्रेणी अपने महत्व के आधार पर समयानुकूल

आदर और स्थान प्राप्त कर सकती है। किसी ने भी श्रेष्ठता और हीनता का कोई मापदण्ड और बधन निश्चित नही किया है। किन्तु पुरुष सूक्त इस सम्बन्ध मे अपूर्व है क्योकि उसने विभिन्न जन–श्रेणियो को सदा–सर्वदा के लिये एक स्थान पर बॉध दिया है। असमानता के सिद्धान्त पर खडी चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था मे ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च है। ब्राह्मण के नीचे किन्तु वेश्य ओर शूद्र के ऊपर क्षत्रिय का स्थान है। वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रिय के नीचे किन्तु शूद्र से ऊपर आता है। शूद्र सबसे नीचे है। यह क्रमश आदर और अनादर की परम्परा सदा के लिये अटूट है।

(३)

पुरुष सूक्त की ये विशेषताय ह। यह पहेलियो से भरा पडा है इसलिये असाधारण भी है। इस अपूर्वता और असारणता का ज्ञान केवल कुछ लोगो को ही है। जानने का प्रयास करने पर इन पहेलियो के वास्तविक स्वरूप और विचित्रता का पता चलेगा।

विश्वोत्पत्ति का वर्णन केवल पुरुष सूक्त मे ही नही, ऋग्वेद मे अन्यत्र भी मिलता है। ऋग्वेद के दसवे मण्डल के 72वें मत्र मे विश्व–उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है–

1 आओ, देवो का उच्च स्वर मे गुण–गान करे। स्तुति–गान से दे भक्तो पर प्रसन्न होते है।

2 ब्राह्मणस्पति ने देवताओं को लोहार की भॉति अपनी श्वास–क्रिया से फुला दिया। देवताओ के प्रथम युग मे सृष्टि की रचना शून्य से हुई।

3 प्रथम चरण में सृष्टि शून्य से उत्पन्न हुई। इसके उपरान्त क्षितिज का जन्म हुआ। और उसके बाद ऊपर की ओर बढने वाले वृक्ष पैदा हुए।

4 ऊपर की ओर बढ़ने वाले वृक्षो से पृथ्वी पैदा हुई, पृथ्वी से दिशाओं का जन्म हुआ। दक्ष का जन्म अदिति से और अदिति का जन्म दक्ष से हुआ।

5 हे दक्ष! फिर तेरी पुत्री अदिति का जन्म हुआ। उसके बाद पूजनीय और मृत्यु के बंधन से मुक्त देवजन पैदा हुए।

6 हे देवजनो! जब तुमने सुव्यवस्थित कक्ष मे निवास किया तो तुम्हारे शरीर से धूल उडी और लगा कि तुम नाच रहे हो।

7 देवताओ! तुम विश्व पर घटाओ की भॉति छा गये और समुद्र के गर्भ स सूर्य को उत्पन्न किया

8 अदिति के शरीर से आठ पुत्र पैदा हुए। उसने सात को देवताओं को भेट कर दिया और (अष्टम पुत्र) मार्तण्ड को उच्च स्थान पर आसीन किया।

9 सात पुत्रों के साथ अदिति पूर्व पीढी के देवताओ के पास चली गयी। उसने मार्तण्ड को मानव–उत्पत्ति के निमित्त धारण किया।

विश्व–रचना के सम्बन्ध मे ऋग्वेद के दोनो सिद्धान्त और वर्णन भिन्न हे। पुरुष सूक्त के अनुसार विश्वोत्पत्ति पुरुष से हुई जबकि उपर्युक्त वर्णन के आधार पर शून्य से। यहॉ यह प्रश्न उठता है कि एक ही ग्रन्थ मे विश्वोत्पत्ति के दो परस्पर विरोधी वर्णन क्यो दिये गये हे? पुरुष सूक्त के रचनाकार ने सृष्टि–सृजन का आधार पुरुष को क्यो बनाया?

पुरुष सूक्त के अध्ययन से हम यह जान पाते हैं कि उसका प्रारम्भ न गधे घोडे, बकरी आदि की रचना से होता है। मानव–उत्पत्ति का कोई उल्लेख उसमे नही मिलता। जबकि ऐसा वर्णन स्वाभाविक होता। इसके विपरीत, पुरुष सूक्त का रचनाकार क्रम भग कर आर्य समाज मे वर्णो की उत्पत्ति की विवेचना करने लगता है। इसस ऐसा आभास होता है कि पुरुष सूक्त का मूल ध्येय ही वर्ण–भेद की व्याख्या का वर्णन मात्र रहा है। ऐसा करने से पुरुष सूक्त का ऋग्वेद के अन्य भागो से पूर्णत विरोध प्रकट होता है।

किसी भी धर्म विजय ने समाज की श्रेणियो की उत्पत्ति–वर्णन को अपना ध्येय नही बनाया। बाइबिल के प्रथम अध्याय, जो गन्तव्य ओर आशय मे पुरुष सूक्त के समान है, मे मानव–उत्पत्ति का वर्णन है। इसका अर्थ यह नहीं कि प्राचीन काल मे यहूदियो में वर्ग नही थे। श्रेणियो का अस्तित्व सभी समाजो मे था। भारतीय आर्य इसका अपवाद न थे। किसी भी धर्म–विजय ने जन–श्रेणियो की उत्पत्ति की व्याख्या करना आवश्यक नहीं समझा। अस्तु, यह विचारणीय प्रश्न है कि पुरुष सूक्त ने धर्म रचना के प्रादुर्भाव को ही अपना प्राथमिक ध्येय क्यो बनाया?

ऋग्वेद में पुरुष सूक्त के अतिरिक्त अन्य स्थलो पर भी वर्णो की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। देखिये :–

ऋग्वेद (i 96 2) "प्रथम निविड और आयु के ज्ञान से उस (अग्नि) ने मानव–सतति को उत्पन्न किया। उस (अग्नि) ने अपने प्रकाश से पृथ्वी और सागर का सृजन किया। देवताओं ने अग्नि को धन का दाता बताया।"

इस मत्र में जन– श्रेणियो के प्रथक सृजन का कोई प्रसंग नहीं है। यद्यपि (यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि) ऋग्वैदिक काल मे ही भारतीय आर्य समाज का वर्गीकरण हो चुका था। तदपि ऋग्वेद का यह मंत्र वर्ग–रचना की उपेक्षा कर

मानव–रचना की बात कहता है। फिर क्या कारण है कि पुरुष सूक्त ने मानव–उत्पत्ति स ऊपर उठकर वर्ग–रचना के वर्णन को महत्त्व दिया है।

पुरुष सूक्त और ऋग्वेद मे एक और विरोधाभास है। वह यह कि ऋग्वेद भारतीय आर्यों की उत्पत्ति के विषय मे निष्पक्ष मत प्रतिपादित करता है। देखे –

(1) (I 80 6) . अथर्वन, पिता मनु और दध्याच ने एक उत्सव सम्पन्न कर इन्द्र की अभ्यर्थना–वंदना की।

(2) ऋग्वेद (II 114.2) हे इन्द्र! पिता मनु ने यज्ञ से जो सम्पदा–शक्ति प्राप्त की, तेरे मार्गदर्शन में हम सब उसका उपभोग करे।

(3) ऋग्वेद (III 33 13) हे मारुतो! मै पिता मनु द्वारा चयन किये गये आपके शुद्ध, पवित्र और फलदायी निदान तथा रूद्र के आशीर्वाद शक्ति की कामना करता हूँ।

(4) ऋग्वेद (IV 52 1) प्राचीन मित्र (रूद्र) बलशाली देवताओ की शक्ति से सम्पन्न रहा है। पिता मनु ने देवो तक पहुँचने के माध्यम स्वरूप स्त्रोत्र तैयार किये।

(5) ऋग्वेद (V.356) अग्नि देवजनो एव मानुष–सतति के साथ यज्ञ कर रहे हैं।

(6) ऋग्वेद (VI 370) हे देवगण! वाजस और रिभक्षण आकाश–मार्ग से हमारे यज्ञ मे उपस्थित होवो ताकि शुभ मुहूर्त मे मानुषों मे यज्ञ हो सके।

(7) ऋग्वेद (VII 14 2) मानुष यज्ञ मे अग्नि की स्तुति कर रहे है।"

ऋग्वेद के मत्रों के रचयिता ऋषियो ने मनु को भारतीय आर्यो का जनक बताया है। यह उपरोक्त से स्पष्ट हो जाता है। यह सिद्धान्त इतना दृढ हो चुका था कि ब्राह्मण ग्रंथो और पुराणों तक ने इसकी पुनरावृत्ति करना आवश्यक समझा। ऐतिरेय ब्राह्मण, विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण मे इसकी पुनरोक्ति है। यद्यपि वे ब्रह्मा को मनु का जनक मानते हैं, तदपि उन्होने ऋग्वेद में प्रतिपादित मनु के पिता होने के सिद्धान्त मत को स्वीकार कर सुरक्षित रखा है। पुरुष सूक्त का रचनाकार इस तथ्य से पूर्णत्त अवगत है कि स्वयंभू मनु विरज (वीर्य) है और इस तथ्य को उसने अपने सूक्त के पॉचवे मंत्र मे व्यक्त भी किया है। तथापि उसने पुरुष सूक्त में मनु का कोई वर्णन नही किया। यह एक आश्चर्य की बात है।

पुरुष सूक्त द्वारा ऋग्वेद के अतिक्रमण की तीसरी घटना है। वैदिक आर्य सभ्यता के क्षेत्र मे यथेष्ट विकसित होने के साथ–साथ श्रम–विभाजन के सिद्धान्त

को मानते थे। उन्होंने आजीविका के लिये भिन्न–भिन्न साधन अपनाये हुए थे। इस बात का उन्हे पूरा ज्ञान था वह इस मत्र से जाहिर होता है–

ऋग्वेद (I 113 6) कुछ व्यक्ति शक्ति की खोज मे जाते हे, कुछ ख्याति की कुछ धन-सम्पत्ति की खोज मे जाते है और कुछ आजीविका की खोज मे। अपनी जीविका के निमित्त विशिष्ट और भिन्न साधन अपनाने का ज्ञान ऊपर के मनुष्यो को दिया।

पुरुष सूक्त का ऋग्वेद से भिन्न होने का एक कारण यह भी है कि ऋग्वेद केवल मानव की बात कहता है। वह पॉच जातियों के समन्वय से स्थापित आर्य जाति ओर राष्ट्र की बात कहता है। ये पॉच जातियॉ एक कैसे हुई वह इस मत्र से स्पष्ट होता है.

(1) ऋग्वेद (VI 11.4) पॉचो जातियॉ एक साथ अग्नि मे आहुति दे रही हैं, स्तुति कर रही हैं।

2 ऋग्वेद (VII 11 15 2) गृह का ज्ञानी और युवा स्वामी (अग्नि) पॉचो जातियो के पैरो मे विद्यमान है।

ये पॉच जातियॉ कौन सी है– इस पर मतभेद हैं। यास्क ने विनक्त में इनके नाम गधर्व, पितृस, देव, असुर ओर राक्षस बताये है। औपमन्यु के अनुसार ये जातियॉ (पुरुष सूक्त मे वर्णित) चार वर्ण और निषाद हैं। ये दोनो ही मत अस्वीकार्य है। प्रथमत तो इसलिये कि पॉचो जातियों की एक साथ प्रशसा की गयी है जो न्म्निाकित मत्र से स्पष्ट है

1	ऋग्वेद (II 210)	हमारा शौर्य पॉचो जातियो म स्वर्ग की भांति ज्योतिर्मय हो।
2	ऋग्वेद (VI 46.7)	हे इन्द्र! जो बल और पौरुष नहुष–वश और पॉचो जातियो मे हैं (हम सब को) प्रदान करो।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि शूद्र इन पॉंचो जातियो मे शामिल होते तो निश्चय ही एक साथ प्रशसा न की जाती। फिर 'वर्ण' शब्द का प्रयोग न कर 'जन' शब्द का प्रयोग किया गया है। और "जन" का अर्थ पॉचो जातियों के सम्मिलित रूप का पर्याय है, न कि चार वर्णों और निषाद का। एक नज़र डालिये ऋग्वेद (I 108 8)। हे इन्द्र! हे अग्नि! यदि तुम्हारा निवास यदु, तुर्वस, दुहयु, अनु और पुरु जातियो में है तो चतुर्दिक से आकर सोमरस का पान करो।"

इन्ही पॉच जातियो से आर्य जाति बनी यह अथर्ववेद के मत्र (III 24 2) से स्पष्ट है

"ये पाँच क्षेत्र, पाँच जातियाँ मनु से उत्पन्न हुई।"

मन्त्र–सृष्टा ऋषियों ने इस प्रकार का वर्णन एकता और समता की भावना स किया है। यहॉ तीन प्रश्न उठते है–

1 पुरुष सूक्त पॉचो जातियो की एकात्मकता को क्यो अमान्य करता है?

2 पुरुष सूक्त जातियो के श्रेणीकरण का पक्षपाती क्यो है?

3 पुरुष सूक्त द्वारा राष्ट्रीयता से अधिक साम्प्रदायिकता को दिये जाने के क्या कारण है?

ये पहेलिकाये पुरुष सूक्त और ऋग्वेद का तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रकाश मे आती हैं। कुछ और पहेलियॉ इसका सामाजिक दृष्टिकोण से अध्ययन–विश्लेषण करने पर प्रकट होती हैं।

आदर्शो का अस्तित्व नियमो के रूप मे आवश्यक हे। कोई भी समाज इनके बिना प्रगति नहीं कर सकता। इन नियमो मे समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होना चाहिये। अस्तु, समय–समय पर इनका पुनर्मूल्याकन आवश्यक है आर पुर्नमूल्यांकन तभी सभव है जब धार्मिक सस्थाओ को पवित्र घोषित किया न जाय। (तथाकथित) पवित्रता (स्थायित्व) पुनर्मूल्याकन मे बाधा उपस्थित करती है। एक बार की पवित्रता सदा–सर्वदा के लिये पवित्र (स्थायी) बन जाती है। पुरुष सूक्त ने इसी प्रकार चातुर्वर्ण की व्यवस्था को ईश्वरीय आदेश की सज्ञा से विभूषित करके स्थायित्व प्रदान किया है। चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था को श्लाध्य और अपरिवर्तनीय बना कर स्थायी क्यो बनाया गया, यह पुरुष सूक्त की प्रथम पहेली है।

चातुर्वर्ण का सिद्धान्त प्रतिपादित करने मे पुरुष सूक्त ने दोहरी चाल चली हैं। प्रारम्भ मे वह भारतीय आर्य समाज की वर्ण–व्यवस्था को आदर्श के रूप मे प्रस्तुत करता है। यह कपट–चाल है क्योकि यह आदर्श वास्तविकता से इतर नहीं है। वास्तविकता को आदर्श एव आदर्श को वास्तविकता के आवरण में प्रस्तुत करना पुरुष सूक्त की राजनैतिक कूटनीति है। इस प्रकार का छल, मेरा अपना विश्वास है, विश्व के किसी धर्म–ग्रथ मे नही है। यह छल–कपट के सिवाय और क्या है। अन्याय और असमानता से युक्त वास्तविकता को आदर्श का रूप देना। एक वर्ग विशेष की। स्वार्थ–सिद्धि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। जब किसी व्यक्ति को किसी बात में लाभ दिखाई देता है, वह उसे आदर्श का रूप देने का प्रयत्न करता है। यह वृत्ति अपराध–वृत्ति से कम नही है। इस प्रकार एक बार की निर्णीत असमानता सदा के लिये स्थायी हो जाती है। यह नैतिकता के विरुद्ध किया गया निर्णय है। किसी भी जाग्रत समाज ने इस प्रकार के किसी मत को न तो स्वीकार

किया है और न मान्यता ही प्रदान की है। इसके विपरीत, इतिहास साक्षी है कि आज तक व्यक्तियो के वर्गो के सम्बन्ध–सुधार मे जो प्रगति हुई है वह इस भौतिक सत्य के आधार पर ही सभव हो सकी है कि – "अनुचित ढंग से निर्णीत मूल्यो का पुनर्मूल्याकन कर उन्हे न्याय–सगत बनाया जाय।" पुरुष सूक्त का उद्देश्य एक वर्ग विशेष को अनुचित ढग से लाभ पहुँचाना और दूसरे को अन्यायपूर्ण एव अनुचित रूप से दबाना रहा है। अत इस दृष्टि से (पुरुष सूक्त का) सिद्धान्त आशय की दृष्टि से अपराध–वृत्ति का और परिणाम के रूप मे समाजविरोधी है। इस प्रपच का रहस्य क्या है? यह दूसरी पहेली ह।

पुरुष–सूक्त की पहेलियो मे अन्तिम और सबसे बडी पहेली शूद्रो की स्थिति के सम्बन्ध मे है। पुरुष सूक्त वर्णोत्पत्ति ईश्वर–कृत बताता है। ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित करना किसी भी धर्म–ग्रथ ने न्यायसगत नहीं माना। यह (पुरुष सूक्त का सिद्धान्त) विलक्षण है। भिन्न–भिन्न वर्णो की उत्पत्ति विधाता के भिन्न–भिन्न अगो से होना तो और भी आश्चर्यजनक है। शरीर के विभिन्न अगो से विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति का समीकरण सयोगमात्र नहीं है। यह जानबूझ कर किया गया है। इस समीकरण के गर्भ में छिपा मूल उद्देश्य, ऐसा प्रतीत होता है दो समस्याओ – एक–चारो वर्णो के कार्य (आजीविका के स्रोत) निश्चित करना, तथा दूसरा, पूर्वनिश्चित योजना के अन्तर्गत चारो वर्णो को श्रेणीबद्ध करने के लिये, एक सूत्र की खोज रहा है। विधाता के भिन्न–भिन्न अगो से भिन्न–भिन्न वर्णो की उत्पत्ति के सिद्धान्त को इस सूत्र से लाभ मिला है। शरीर का एक निश्चित भाग वर्ण की श्रेणी निश्चित करता है और श्रेणी उसका कार्य। ब्राह्मण की उत्पत्ति विधाता के मुख से बतायी गई है। चूँकि मुख शरीर का सर्वोत्तम अग है, अत ब्राह्मण चारो वर्णो में श्रेष्ठतम वर्ण है। इसके आधार पर उसे योग्यता और ज्ञान (पठन–पाठन) का सरक्षण सौंपा गया है। क्षत्रिय का जन्म विधाता की बाहो से हुआ कहा गया है। बाहे शरीर मे मुख से नीचे आती है। अस्तु क्षत्रिय को बुद्धि के बाद का काम युद्ध करना दिया गया है। वैश्य, ब्राह्मण और क्षत्रिय जघाओ से जन्म के कारण नीचा है अस्तु उसे कृषि और व्यवसाय के काम मे लगाया गया है। शूद्र की उत्पत्ति विधाता के पैरों से हुई है। पैर शरीर का निम्नतम अग है। अत: शूद्र का स्थान चारो वर्णो मे सबसे नीचे है और उसका काम दास–वृत्ति निश्चित किया गया है।

पुरुष–सूक्त ने चारों वर्णो की उत्पत्ति के लिये शरीर के अंगो का समीकरण ही क्यो चुना? उसने अन्य उदाहरण क्यों नहीं दिया? उत्पत्ति के निमित्त "पुरुष" ही एक मात्र उपमा नही है। छन्दोदय उपनिषद मे वेदों की उत्पत्ति की गाथा इस प्रकार है –

"प्रजापति ने ब्राह्मण्ड को गर्म करके उसका सार निकाला अर्थात् पृथ्वी से अग्नि, हवा से वायु, और आकाश से सूर्य का सृजन किया। उस (प्रजापति) ने फिर आराध्य देवो को गर्म किया जिसके सार–स्वरूप अग्नि से ऋग्वेद की ऋचाये, वायु से यजुर्वेद के मत्र और सूर्य से सामदेव की ऋचाय पैदा कीं। उसने इन तीनों (वेदो) को गर्म किया और इनसे 'भू', भुवे और "स्व" शब्दो की रचना की।"

इस प्रकार वेदो की उत्पत्ति विभिन्न आराध्य देवो से बतायी गई है। जहॉ तक भारतीय आर्यो का सम्बन्ध है, उनके देवी–देवताओ की सख्या किसी भी प्रकार कम न थी। वह संख्या तीस करोड थी। चार देवो से चार वर्णो की उत्पत्ति के आधार पर उन्हे जन्म से ही समानता और आदर मिलना चाहिये था। किन्तु, पुरुष सूक्त मे इस प्रकार की कोई व्याख्या–विवेचना नही है।

फिर पुरुष के विभिन्न मुखो से विभिन्न वर्णो की उत्पत्ति बताना पुरुष सूक्त के रचनाकार के लिये असभव न था। पुरुष के सहस्र सिर (मुख) होने के कारण उसके एक–एक मुख से एक–एक वर्ण की उत्पत्ति तो और भी सरलतापूर्वक दर्शायी जा सकती थी। रचनाकार व्याख्या के इस ढग से अनजान न था। इसका कारण यह है कि विष्णु–पुराण में वेदों की उत्पत्ति के लिये व्याख्या के इस ढग को प्रयोग मे लाया गया है। देखिये

"ब्रह्मा ने अपने पूर्व मुख से गायत्री, ऋग्वेद की ऋचाये, त्रिवृत्त, सामवेद के रथान्तर, और यज्ञ के लिये अग्नि स्त्रोत्र, दक्षिण मुख से यजुर्वेद के मत्र, त्रिष्टुश छन्द, पंचदश स्तोम, बृहत्साम, पश्चिम मुख से सामवेद के मत्र, जगती छन्द सप्तदश स्तोम, वैरूप और अतिरात्र तथा उत्तर मुख से एकविश, अथर्ववेद एव औष्टभ और विरज छन्दो के साथ अप्तोर्यमन की रचना की।"

हरिवश में वेदो की उत्पत्ति का कुछ और ही वर्णन है' "ईश्वर ने अपने नेत्रो से ऋग्वेद और यजुर्वेद, जिह्वा से सामवेद और ललाट से अथर्ववेद की रचना की।"

यदि हम यह मान ले कि रचनाकार के लिये कतिपय कारणो से विधाता के भिन्न–भिन्न अंगो से भिन्न–भिन्न वर्णों की उत्पत्ति दर्शाना आवश्यक ही था, तब यह प्रश्न उठता है कि पुरुष के विभिन्न अगो का विभिन्न वर्णो के सम्बन्ध में यह समीरण उसने क्यो अपनाया?

इस प्रश्न का महत्व उस समय और बढ जाता है जब यह पता चलता है कि विधाता के विभिन्न अंगों से विभिन्न वर्णो की उत्पत्ति का प्रमाण–साक्ष्य एकमात्र पुरुष–सूक्त ही नही है। वैशम्पायन ने यज्ञ कराने वाले पुरोहितो के नाना वर्णो की उत्पत्ति का वर्णन शरीर के भिन्न–भिन्न अंगो से किया है। दोनो मे कितना अंतर

है? हरिवंश मे वेशम्पायन की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की गई है:--

"इस प्रकार प्रतापी प्रभु नारायण हरि सम्पूर्ण जलो को अपनी शक्तिशाली बाहो के घेरे मे लेकर रजो के विस्तार, जो एक महासमुद्र के समान हो गया था के मध्यभूत, वर्तमान और भविष्य-- तीनो कालो से विभूषित होकर विरज-मुक्त हो सो गये। ब्राह्मण उनकी अनश्वरता से भिज्ञ हैं। पुरुषोत्तम (विष्णु) वह जो भी हो सर्वोच्च है पुरुष के नाम से ज्ञात सब यज्ञ है। ऋत्विज ब्राह्मण उसके अगो से यज्ञ--कार्य के लिये पैदा हुए। प्रभु ने अपने मुख से ब्राह्मण मुख्य पुरोहित, सामदव के मत्रो के उच्चाटा, उद्‌मातृ, बाहों से होतृ एवं अध्वर्यु की उत्पत्ति की। तदपुरात उसने प्रस्त्रोतृ, मैत्रवरण प्रतिष्ठात्, प्रतिहार्त, पोतृ, जंघाओ से अक्ष्वाक् और नेस्ति हाथो से अग्निघ्र और हौत्रिय ब्राह्मण, बाहो से ग्रवण तथा अग्नेत्रि उत्पन्न न किये। इस प्रकार ईश्वर स सोलह प्रवीण ऋत्विज पैदा किये।"

"इसलिये यज्ञकर चित पुरुष को वेद कहा जाता है। सभी वेद-वदागो की उपनिषदो और धार्मिक अनुष्ठानो (सस्कारो) की विरचना उसके सार से हुई हे।"

यज्ञ-कार्य के लिये कुल मिलाकर पुरोहितो की सत्रह श्रेणियाँ थीं। यदि कोई रचनाकार किसी पुरोहित की उत्पत्ति विधाता के एक अलग अग से बताने का प्रयास करता तो उसके लिये यह संभव न होता कि वह किसी पुरोहित की उत्पत्ति पुरुष के पैरों से न जोडता क्योकि पुरोहितो के वर्णो की सख्या पुरुष के अगो से अधिक है। वैशम्पायन ने क्या किया? उसने विधाता के एक ही अग से पुरोहितो के अनेक वर्णो की उत्पत्ति दर्शाने मे कोई विसगति नजर नहीं आयी। साथ ही किसी भी पुरोहित-वर्ग की उत्पत्ति को पैर से दिखाने के प्रश्न को वह बडी चतुरता से टाल गया है।

उत्पत्ति के विषय मे पुरुष सूक्त मे शूद्रो के साथ दिखाई गई अनादर की भावना की तुलना हरिवंश मे ब्राह्मणो को दिये गये आदर से करने पर पता चलता है कि पुरुष सूक्त मे शूद्रो के साथ कितना बडा षडयत्र रचा गया है? शूद्रो की पैरो से रचना बताकर पुरुष सूक्त ने शूद्रों के विरुद्ध द्वेष-प्रचार का, किसी नियोजित-निश्चित योजना के अधीन सौपा गया, अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया? अस्तु, अब देखना यह है कि इस द्वेष का कारण क्या था?

(4)

पुरुष सूक्त की सामाजिक दृष्टिकोण से विवेचना करने पर शूद्रो के सम्बन्ध में ऊपर वर्णित पहेलियों का महत्व समझ में आता है। शूद्रों की स्थिति के विषय मे कुछ और पहेलियाँ भी हैं जो चातुर्वर्ण के आदर्श के परिणामस्वरूप उत्पन्न

हुई। इन परिणामो के लिये सर्वप्रथम चातुर्वर्ण में हुए परिवर्तन का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। ये मुख्यत: दो हैं – पहला शूद्रों के नीचे एक और वर्ण बना और दूसरा यह कि शूद्र अन्य तीन वर्णो से अलग हो गये। इन परिवर्तनो का पुरुष सूक्त की मूल योजना से ऐसा एकीकरण हुआ कि उसने कुछ विशेष शब्दो और व्यवस्थाओ को जन्म दे डाला। ये है सवर्ण, अवर्ण, द्विज, अद्विज और त्रैवर्णिक। ये शब्द मूल चातुर्वर्ण के उप–विभाजन और उनके अलगाव को दर्शाते है। इन वर्णो के सापेक्षिक सम्बन्धो के विषय मे जानना आवश्यक है क्योकि इससे एक नई पहेली का जन्म होता है। विद्वान इस पहेली को न समझ पाये। इसके दो कारण सभवत यह है

1 विद्वानो ने इस ओर ध्यान नहा दिया कि वर्णो के ये नाम, मात्र नाम न होकर अधिकारो ओर विशेषाधिकारो के सूचक है।

2 विद्वानो ने यह जानने का प्रयास ही नही किया कि नाम की आड मे अधिकारो और विशेपाधिकारो के लिये किया गया यह वर्गीकरण न्याय–सगत और तर्क–सगत भी हे या नही।

अस्तु, अब हमें यह जानना है कि इन शब्दो के सही और वास्तविक अर्थ क्या है? सवर्ण शब्द प्रत्यक्षत अवर्ण का विलोम है। सवर्ण का अर्थ है कि चारो वर्णो मे से किसी एक वर्ण का होना। अवर्ण का अर्थ है कि चारो वर्णों की परिधि से परे होना। अत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सवर्ण है। अछूत और अतिशूद्र अवर्ण हैं। उसी प्रकार द्विज और अद्विज शब्द परस्पर विरोधी अर्थ रखते है। द्विज का अर्थ है दो जन्मो वाला और अद्विज का अर्थ है केवल एक जन्म वाला। यह अन्तर उपनयन के अधिकार पर आधारित है। उपनयन सस्कार को दूसरा जन्म माना गया है। जिन्हे जनेऊ धारण करने का अधिकार है वे द्विज कहलाते है। अस्तु, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वेश्य द्विज हैं। जनेऊ पहनने के अधिकार से शूद्र और अतिशूद्र वचित है, अत अद्विज है। इसी प्रकार त्रैवर्णिक शब्द भी शूद्र का विलोम है। किन्तु इसमे कुछ विशेष भेद–भाव नहीं है। यह भेद–भाव द्विज और अद्विज जैसा ही है सिवाय इसके कि यह अन्तर शूद्रो तक ही सीमित है। अतिशूद्र इससे परे है। संभवत यह शब्दावली अतिशूद्रो के वर्ण के अस्तित्व में आने से पूर्व ही अस्तित्व में आ गई थी।

इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए कि शूद्र और अतिशूद्र दोनो ही अद्विज है शूद्र सवर्ण क्यो है और अतिशूद्र अवर्ण क्यो है? शूद्र चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था के अन्तर्गत है और अतिशूद्र उससे बाहर क्यों हैं? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र सवर्ण होने के नाते चातुर्वर्ण की व्यवस्था के चार स्तम्भ माने जाते हैं तब फिर त्रैवर्णिको को प्राप्त अधिकारों से शूद्र वचित क्यो है?

शूद्रो की इस पहेली से भी बडी कोई और पहेली हो सकती है? निश्चय

ही नही। अस्तु, इसके लिये अनुसंधानपूर्ण विवेचना की आवश्यकता है कि शूद्र कौन थे और वे आर्यो के समाज के चौथा वर्ण कैसे बने?

2. शूद्रों की उत्पत्ति का ब्राह्मणी सिद्धान्त

शूद्रो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे ब्राह्मणी साहित्य मे क्या कहा गया है? ब्राह्मणी साहित्य निस्सदेह विश्वोत्पत्ति, मानव–उत्पत्ति और वर्णोत्पत्ति की दन्त–कथाओ से भरा पडा है। क्या इन दन्त–कथाओ मे शूद्रोत्पत्ति की ऐसी सहायक सामग्री उपलब्ध है जिसका शूद्रो की खोज की कहानी पूरी करने के लिये एक ग्रंथ मे सकलन किया जा सके? इसके निमित्त हमे ब्राह्मणी साहित्य का अलग से अध्ययन करना होगा और यह देखना होगा कि वे इस खोज मे कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकते है।

(1)

आइये, वेदो से प्रारम्भ करे। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे व्यक्त शूद्रोत्पत्ति के विषय में आप गत अध्याय मे पढ ही चुके है। अत अब हमें अन्य वेदों की किवदन्तियो–गाथाओ का अध्ययन करना है।

यजुर्वेद के दो सस्करण– शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद है। पहले शुक्ल यजुर्वेद को ही लेते हैं। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी सहिता मे दो मत मिलते है पहला तो पुरुष सूक्त की पुनरोक्ति मात्र है। अन्तर केवल इतना है कि इसमे पुरुष सूक्त के 22 मत्र दिये गये है जबकि ऋग्वेद के मूल पुरुष सूक्त मे केवल 16 मत्र हैं। ये अतिरिक्त मंत्र इस प्रकार है–

17 प्रारम्भ मे विश्वकर्मा ने उसे जलो और पृथ्वी के सार से उत्पन्न किया। त्वष्ठा ने उसे पुरुष का रूप प्रदान किया।

18 मै तम की परिधि से परे सूर्य–वर्ण महान् पुरुष को पहचानता हूँ। उसको जानने–पहचानने पर ही मृत्यु के बन्धन से छुटकारा मिलता है। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग है ही नही।

19 अजन्मा प्रजापति नाना रूपो में प्रकट होता है। विद्वान उसका माध्यम जानते है, विद्वान मारीचि के स्थान की कामना करते है।

20 जो देवताओ के लिये प्रकाश करता है, जो देवताओं का पुरोहित है, और जो देवताओ से पहले पैदा हुआ है, ब्रह्मा की उस तेजस्वी सतति को

नमस्कार

21 देवताओं ने ब्रह्मा की सतान–वृद्धि करते हुए प्रारम्भ मे ही व्यवस्था देदी "जो ब्राह्मण यह जानता है, देवजन उसके आधीन रहेगे।"

22 जिसकी श्री और लक्ष्मी पत्नियाँ, दिन और रात जिसके अग–रक्षक, तारागण जिसके आभूषण और अश्विनी के समान देदीप्यमान जिसका मुख है वह मेरी समस्त कामनाओ को पूरा करे मुझे सर्वस्व प्रदान करे।

वाजसनेयी सहिता (XIV 28) का दूसरा सिद्धान्त पुरुष सूक्त स बिलकुल ही भिन्न है

"उसने एक से स्तुति की, सब जीव पैदा हुए। उसन तीन से स्तुति की ब्राह्मण पैदा हुए और ब्राह्मणस्पति स्वामी हुए। उसने पॉच से स्तुति की, सम्पूर्ण पदार्थ बने भूतानामपति स्वामी हुए। उसने सात से स्तुति की, सप्तर्षि पैदा हुए, धातु स्वामी हुए। उसने नौ से स्तुति की, पितृ उत्पन्न हुए, अदिति स्वामी हुए। उसने ग्यारह से स्तुति की– ऋतुओ का जन्म हुआ ओर आर्तव स्वामी हुए। उसने तेरह से स्तुति की महीने बने और वर्ष स्वामी हुआ। उसने पन्द्रह से स्तुति की, क्षात्र का जन्म हुआ इन्द्र स्वामी हुए। उसने सत्रह से स्तुति की, पशु पैदा हुए, वृहस्पति स्वामी हुए। उसने उन्नीस से स्तुति की ' शूद्र और आर्य (वैश्य) पैदा हुए, दिन और रात स्वामी बने। उसने इक्कीस से स्तुति की, पूरे खुरवाले पशु पैदा हुए पुषान स्वामी हुए। उसने पच्चीस से स्तुति की, वन्य–पशु पैदा हुए व्यास स्वामी हुए। उसने सत्ताईस से स्तुति की, स्वर्ग (आकाश) और पृथ्वी अलग–अलग हुए और इसके उपरान्त स्वामी वसु रुद्र और आदित्य अलग–अलग हुए। उसने उनतीस से स्तुति की तो जीव उत्पन्न हुए मास के प्रथम और द्वितीय पक्ष स्वामी हुए। उसने इकतीस से स्तुति की तो सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न हुए, प्रजापति स्वामी हुए।"

अब कृष्ण यजुर्वेद को देखे। इसकी तैत्तिरेय सहिता मे कुल मिलाकर पॉच वर्णन उपलब्ध हैं। पहला (IV 3 10) वर्णन शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी सहिता (XIV 28) के अनुरूप है। शेष चार इस प्रकार है

तैत्तिरेय संहिता (II 4 13 1) देवगण राजन्य से, जब वह गर्भ मे था भयभीत थे। अत उसे गर्भ से ही बन्धन–युक्त किया गया। यदि वह बन्धनमुक्त जन्म धारण करता तो वह अपने शत्रुओ का विनाश कर देता। फलस्वरूप राजन्य बन्धन–युक्त ही पैदा हुआ। इस निमित्त इन्द्र और वृहस्पति की सहायता ली गई। यही कारण है कि राजन्य की प्रवृत्ति इन्द्र और वृहस्पति के समान हुई। राजन्य को दक्षिणा के माध्यम से ब्राह्मण ही बन्धन–मुक्त कर सकता है।

तैत्तिरेय सहिता (VII 1 14) प्रजापति ने सृजन की इच्छा व्यक्त की। उसने अपने मुख से त्रिवृत्ति की रचना की। इसके उपरान्त देवताओ में अग्नि, छन्दो मे गायत्री साम में रथान्तर, मानवो मे ब्राह्मण और पशुओ मे बकरा उत्पन्न किया; इनकी उत्पत्ति मुख से हुई है अस्तु ये प्रमुख है। उसने अपने वक्ष से और बाहुओ से पचदश की रचना की। इसके बाद देवो मे इन्द्र, छन्दो मे त्रिष्टुश, साम मे बृहत्, मानवो मे राजन्य और पशुओ मे भेड पैदा किये। ये शक्तिशाली अगो से पैदा होने के कारण बलशाली है। उसने अपने मध्य से सप्तदश की रचना की। इसके पश्चात् उसने देवो में विश्वदेव, छन्दो मे जगती, सामन मे वैरूप, मानवो मे वैश्य और पशुओ को जन्म दिया। ये उदर से उत्पन्न होने के कारण भोग्य है। इनके बहुसख्यक होने के कारण सप्तदश के बाद अनेक देवो को जन्म दिया गया। तदुपरान्त उसने अपने पैरो से एकविंश की रचना की।

जिससे अनुष्टुश छन्द, सामन मे वैराज, मानवो में शूद्र और पशुओ मे अश्व पैदा हुए। अत शूद्र और अश्व अन्य जीवों के वाहक है। एकविंश के पश्चात् किसी आराध्य को उत्पन्न नही किया गया। अत शूद्र को यक्ष के अधिकार के अयोग्य ठहराया गया है। दोनो– शूद्र और अश्व की उत्पत्ति पैर से हुई है, अस्तु दोनों का जीवन भी पैरो (दासता) में ही व्यतीत होता है।"

अथर्ववेद में चार वर्णन है। पहला (XIX 6) तो ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के समान है। दूसरे इस प्रकार है –

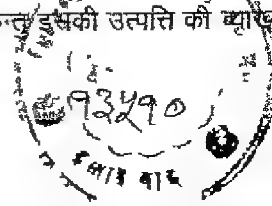
1 IV-6 1 "सर्वप्रथम ब्राह्मण का जन्म हुआ। उसके दस सिर और दस मुख थे। उसने सोमपान किया और विष को शक्ति–हीन बनाया।"

2 XV 8 1 "व्रात्य में काम जागा और राजन्य का जन्म हुआ।"

3 XV 9 1 ' "व्रात्य ने परिचित राजा के घर पर अतिथि के रूप मे आकर उस (राजा) को उसका (व्रात्य का) आदर करने को कहा। उस (व्रात्य) ने उस (राजा) को इसका कारण समझाया। राजा द्वारा सम्मानित होने पर उस (व्रात्य) ने उसका अहित नही किया। उससे ब्राह्मण और क्षत्रिय का उदय हुआ, इत्यादि . ."

(2)

अब ब्राह्मण–ग्रथो की ओर चलते हैं। सतपथ ब्राह्मण मे छ वर्णन मिलते हैं। इनमे से दो वर्णो की उत्पत्ति के विषय मे है। एक मत्र (IV, 4 2 23) में शूद्र वर्ण का उल्लेख एक बार अवश्य आया है किन्तु इसकी उत्पत्ति की व्याख्या या विवरण नहीं दिया गया।



तैत्तिरेय ब्राह्मण (।267) मे बताया गया है– "ब्राह्मण, देवताओ से और शूद्र, असुरो से पैदा हुए है।"

तेत्तिरेय ब्राह्मण के मन्त्र (॥ 239) के अनुसार "शूद्र शून्य से उत्पन्न हुआ।"

(3) उपरोक्त उद्धरणो में चातुर्वर्ण्य एव शूद्र वर्ण की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे ब्राह्मणी दन्तकथाओ या परिकल्पनाओ का सकलन है। प्राचीन काल के ब्राह्मण इस तथ्य से पूर्णत भिज्ञ थे कि चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था अस्वाभाविक और असामान्य तो है ही, उसमे शूद्रो को दिया गया स्थान तो और भी अप्राकृतिक और कृत्रिम है। इस कुटिल व्यवस्था को तर्कसम्मत सिद्ध करने के लिये ही समुचित अलौकिक परिकल्पनामय व्याख्याओ की आवश्यकता पडी, अन्यथा चातुर्वर्ण और शूद्रो की उत्पत्ति के विषय मे इतने अधिक व्याख्या – आख्यानो का वर्णन मिलना असभव ही होता।

इन आख्यानो के सम्बन्ध में क्या कहा जाय? सभी व्याख्याएँ भिन्नता लिये हुए है। चातुर्वर्ण की उत्पत्ति कोई पुरुष से बतलाता है तो कोई इसका श्रेय ब्रह्मा को देता है। कोई प्रजापति को सृष्टा कहता है तो कोई व्रात्य को। इतना ही नहीं एक ही स्रोत के अन्तर्गत दी गयी व्याख्याएँ तक भिन्न हैं। यथा, शुक्ल यजुर्वेद की दो व्याख्याएँ एक तो उत्पत्ति का स्रोत पुरुष को मानती हैं और दूसरी प्रजापति को। कृष्ण यजुर्वेद मे तीन वर्ण हे जिनमें दो के द्वारा प्रजापति को सृष्टा जाना गया है और एक मे सृजन–कर्ता ब्राह्मण हैं। अथर्ववेद मे चार आख्यान है। एक के द्वारा पुरुष को, दूसरे में ब्राह्मण को, तीसरे मे व्रात्य का उत्त्पत्ति का माध्यम कहा गया है। चौथी व्याख्या तो इन तीनो से ही भिन्न है। इसका मत समान होने पर भी विवरण भिन्न है। ब्रह्मा और प्रजापति के स्वरूप मे माध्यम से दी गयी व्याख्याएँ एकदम काल्पनिक है। मनु या कश्यप के माध्यम–स्वरूप मे की गई व्याख्याएँ मानवीय है। इनमें की गयी परिकल्पनाऐ उपद्रवजनक तो हैं ही, इनका न तो कोई ऐतिहासिक महत्व है और न कोई अर्थ ही। प्रो० मैक्समूलर ने अपनी कृति "प्राचीन सस्कृत साहित्य" में पृ० संख्या 200 पर ब्राह्मण ग्रंथों की विवेचना करते हुए कहा है –

"ब्राह्मण ग्रथ साहित्यिक दृष्टि से तुच्छ, पूर्वाग्रह–युक्त, भद्दी रचनाये है जिनमें तर्क–संगत विचार, स्वतंत्र अभिव्यक्ति और पुष्ट प्रमाण–साक्ष्य एवं स्वस्थ परम्पराओ का नितान्त अभाव है। इनका अध्ययन उसी प्रकार किया जाना चाहिये जिस प्रकार एक शरीर–विज्ञानी मूर्ख के प्रलाप तथा पागल की चिल्लाहट का करता है।"

चारों वर्णो विशेषकर शूद्र वर्ण की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ब्राह्मण–ग्रथो के

अध्ययन– विवेचन पर हमें प्रो० मैक्समूलर के ये शब्द बरबस याद आ जाते है। य परिकल्पनाये वास्तव मे ही पागलो का प्रलाप और विकृत मानसिकता के लोगो की चीखो भाति है। और मानवीय समस्याओ के विषय मे स्वाभाविक व्याख्याआ –विवरणो की खोज में रत इतिहास के विद्यार्थी के लिये तो यह साहित्य सचमुच किसी भी काम का नही है।

3. शूद्रों का स्तर : ब्राह्मणी सिद्धान्त

(I)

अब तक आपने शूद्रो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे पढा। आइये, अब इम सामाजिक स्तर और स्थिति पर चर्चा करे। ब्राह्मण, विधि–विधाताओं ने शूद्रों पर असख्या निषेध थोपकर उन्हे यातनाये और दण्ड देने के लिये अनेक वीभत्स ढग निश्चित किये है।

सहिताओ और ब्राह्मणों मे तो शूद्रो के लिये निर्धारित निषेध और दण्ड थोडे स ही हैं जैसे –

I कथक सहिता (XXXI 2) और मैत्रायणी सहिता (IV 1 3, I 8–3) मे कहा गया है जिस गाय के दूध का उपयोग अग्निहोत्र में होता हो, उसे दुहने की आज्ञा शूद्र को न दी जाय।"

II सतपथ ब्राह्मण (III 1 1 10) मैत्रावणी सहिता (VII 1 1 6) और पचविंश ब्राह्मण (VI 1 11) कहते हैं "यज्ञ करते समय न तो शूद्र से बात करनी चाहिये और न उसकी उपस्थिति मे यज्ञ ही करना चाहिये।"

III सतपथ ब्राह्मण (XIV 1 31) और कथक संहिता (XI 10) में प्रावधान है कि "शूद्र को सोम–पान में शामिल नहीं किया जाना चाहिये।"

IV एतिरेय ब्राह्मण (VII 29 4) और पचविश ब्राह्मण (VI 1.11) ने तो नीचता की हद ही कर दी है "शूद्र दूसरे का दास (सेवक) है (इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है)"

इन दण्ड–विधानो मे तूफान की गति से की गयी वृद्धि को साहित्य का रुप दे दिया गया। आपस्तम्ब और बोधायन आदि सूत्रकारो और मनु तथा अन्य सहिताकारो के उपरोक्त यातना–कानूनो से यह स्पष्ट है शूद्रो के लिये निर्धारित निषेध पागलपन की सीमा तक बढा दिये गये। वे दण्ड भयावह हैं और विश्वास से परे है। ये दण्ड–विधान अनेक हैं अतः इनका पूर्ण वर्णन यहाँ संभव नहीं है। फिर

भी जो लोग शूद्रो के लिये निश्चित दण्ड और यातनाओ से अनभिज्ञ है उनकी जानकारी के लिये विभिन्न सूत्रकारो और संहिताकारो के विधि–विधानो के कुछ उद्धरण यहॉ प्रस्तुत है-

II

(1)

अ. आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहता है·

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार जातियॉ है।

इनमे प्रत्येक पहली जाति जन्म से ही बाद की सभी जातियो से उत्तम है।

शूद्र और पतित को छोडकर सभी जातियो को उपनयन, वेदाध्ययन और यज्ञ का अधिकार है।"

ब. वशिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है :

"चार जातियॉ (वर्ण) है – ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

तीन जातियॉ– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज हैं। इनका पहला जन्म मॉ से और दूसरा उपनयन से होता है। दूसर जन्म मे मॉ और शिक्षक (गुरू) पिता होता है।

शिक्षक वेदो की शिक्षा देता है अत पिता माना गया है।

चारो जातियॉ जन्म और सस्कार के आधार पर भिन्न है।

वेद मे कहा गया है कि ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय बाहुओ से, वैश्य जांघों से और शूद्र पैर से पैदा हुआ है।

वेद मे यह भी प्रावधान है कि शूद्र उपनयन का अधिकारी नहीं है क्योंकि ब्राह्मण गायत्री छन्द के साथ, क्षत्रिय त्रिष्टुइ छन्द के साथ और वैश्य जाबती छन्द के साथ पैदा हुआ है किन्तु शूद्र के साथ किसी छन्द का जन्म नही हुआ।"

स. मनुस्मृति का मत इस प्रकार है:

"सृष्टा ने अपने मुख, भुजा जघा और पैरो से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की रचना की है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ओर द्विज है जबकि शूद्र का केवल एक ही जन्म होता है।"

(2)

अ. आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है :

"कोई भी त्रैवर्णिक श्मशान मे अथवा श्मशान से एक सम्य की दूरी के स्थान पर वेद–पाठ न करे।

यदि श्मशान पर गॉव बस गया है अथवा उस पर खेती प्रारम्भ हो गयी है तो वहॉ वेद–पाठ वर्जनीय नहीं है।

यदि स्थान श्मशान के नाम से ही प्रसिद्ध है तो वेद–पाठ के लिये वर्जित स्थान है।

शूद्र और पतित श्मशान में शामिल है।

कुछ विद्वानो का मत हे कि वे (शूद्र और पतित) जिस घर मे रहते है, वहॉ वेद–पाठ का निषेध है।

यदि वेद–पाठ करते समय वेद–पाठी शूद्र स्त्री को देख भर ले तो तुरन्त ही वेद–पाठ बन्द कर दे।

किसी द्विज द्वारा अशौच की स्थिति मे दिया गया भोजन यद्यपि अपवित्र हो जाता है, तदपि वह खाया जा सकता है।

शूद्र द्वारा खाया गया भोजन, भले ही अनछुआ ही क्यों न हो, घृणित और खाने के योग्य होता है।

यदि शूद्र किसी भोजन करने वाले का स्पर्श कर ले तो उस (भोजन करने वाले) को भोजन छोड देना चाहिये।"

ब. विष्णु स्मृति का कथन है : "द्विज के शव को शूद्र न ले जाय भले ही मृतक शूद्र का सम्बन्धी ही क्यों न हो।"

"द्विज शूद्र के शव को न ढोवे।"

"माता और पिता के शव उनके सजातीय पुत्रो द्वारा ही ले जाये जाये। लेकिन शूद्र द्विज के मृत शरीर को नहीं उठा सकता चाहे वह (मृतक) उसका पिता ही हो।"

वशिष्ठ धर्मसूत्र कहता है :

"अस्तु, अब हम यह निश्चय करेंगे कि क्या भक्ष्य है और क्या अभक्ष्य। भिषज, शिकारी, व्यभिचारिणी स्त्री, मदाचारी, चोर, अभिशप्त, नपुसक अथवा पतित

के द्वारा दिया गया भोजन अभक्ष्य होता है।

कजूस, श्रोत–होत, बन्दी, रोगी सोम–विक्रेता, बढई, रजक, मदिरा–बेचने वाले, गुप्तचर, ब्याज खाने वाले तथा मोची द्वारा किया गया भोजन खाने के योग्य नही होता।

शूद्र का भोजन भी नहीं खाना चाहिये।

कुछ विद्वान यह कहते है कि शूद्र शमशान –व्रत है अत उसकी उपस्थिति मे वेद–पाठ न किया जाय।

ये विद्वान यम के निम्नाकित वाक्यों का उल्लेख करते है

शूद्रो की दुष्ट जाति शमशान के तुल्य है उनके सम्मुख वेद नही पढना चाहिये।

कुछ शूद्र विद्याभ्यास एव तपस्या के बल पर दान ग्रहण करने के अधिकारी बन जाते हैं फिर भी वह ब्राह्मण, जिसके उदर मे शूद्र के अन्न का एक भी कण नहीं है, उस शूद्र से श्रेष्ठ है।

यदि कोई, ब्राह्मण शूद्र का भोजन खाकर मर जाय तो वह या तो उस शूद्र के परिवार मे जन्म लेगा या गॉव का शूकर बनेगा।

यदि कोई ब्राह्मण शूद्र के अन्न से पलता है तो वह नित्य वेद–पाठ, यक्ष और अर्चना–पूजा करने पर भी स्वर्ग का मार्ग न पा सकेगा।

ब्राह्मण यदि शूद्र का भोजन खाकर सजातीय पत्नी से सहवास करे तो उससे जनित पुत्र अन्नदाता शूद्र के परिवार के माने जायेगे और वह स्वर्ग–लाभ से वंचित रहेगा।"

द. मनुस्मृति में कहा गया है :

"वह ब्राह्मण न तो शूद्र की राजधानी मे रहे और न ऐसे स्थान पर रहे जहॉ दुष्ट लोग रहते हों। वह नीच और निम्नजातीय लोगो के नगर मे भी निवास न करे।

जो ब्राह्मण शूद्र को यज्ञ कराता है, उसको अन्य ब्राह्मणो के साथ श्राद्ध–भोजन पर आमत्रित न किया जाये क्योंकि इससे श्राद्ध–कर्म द्वारा उपर्जित पुण्य का क्षय होता है।

शूद्र का शव नगर के दक्षिणी द्वार से ले जाया जाय। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के शव क्रमश· पश्चिमी, उत्तरी और पूर्वी द्वार से ले जाने चाहिये।"

अ. आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है :

"ब्राह्मण कान तक, क्षत्रिय वक्ष तक और वैश्य कमर तक हाथ उठाकर प्रणाम करे लेकिन शूद्र नीचे की ओर झुककर दोनो हाथ जोडकर प्रणाम करें।

यदि किसी ब्राह्मण के घर पर शूद्र अतिथि आये तो सर्वप्रथम उससे कुछ काम ले तदुपरान्त भोजन दे। (बिना वृत्ति के भोजन देने का अर्थ है शूद्र का सम्मान।)

अन्यथा ब्राह्मण के सेवक राज्य–भण्डार से चावल लाकर उस शूद्र का सत्कार करे।"

ब. विष्णु स्मृति की व्यवस्था इस प्रकार है:

धार्मिक अनुष्ठान या देव–यज्ञ मे शूद्र को बुलाने या सम्मान करने का दण्ड एक सौ पण है।"

स. मनुस्मृति कैसे पीछे रहे :

"दस वर्ष की वय में ब्राह्मण और एक सौ साल के क्षत्रिय मे ब्राह्मण को पिता और क्षत्रिय को पुत्र समझा जाय।"

"द्विज का धन, सम्बन्ध, बय, जाति और विद्या से मान होता है। शूद्र प्रकाण्ड विद्वान तथा अतुल सम्पदा का स्वामी होने पर भी केवल सौ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर ही आदर का पात्र होता है, उससे पहले नहीं।

उम्र से, बाल पकने धन या जाति से श्रेष्ठता प्राप्त नहीं होती। जो वेदो का पूर्ण ज्ञाता है, वह ही सर्वश्रेष्ठ है।

ब्राह्मण का सम्मान विद्या, क्षत्रिय का सम्मान शौर्य, वैश्य का सम्मान धन–सम्पदा से होता है लेकिन शूद्र का सम्मा न वय – प्राप्त होने पर होता है।

केश धवल हो जाने से ही कोई वय–प्राप्त नहीं माना जा सकता। यदि किसी ने युवावस्था मे ही वेदों का सार जान लिया है, वह वय–वृद्ध होता है।

ब्राह्मण के घर पर कोई क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र अतिथि या मित्र नहीं हो सकता। ब्राह्मण के घर पर केवल ब्राह्मण ही अतिथि होने का अधिकारी होता है।

यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण का अतिथि बने, तो ब्राह्मण स्वय भोजन करने के उपरान्त उसे भोजन कराये।

यदि वैश्य या शूद्र अतिथि के रूप में आये तो ब्राह्मण दया–भाव से सेवको के हाथों भोजन दिलवा दे।"

(4)

अ. आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार :-

"क्षत्रिय का वध करने वाला व्यक्ति (प्रायश्चित करने के लिये) एक सहस्र गोऐ (ब्राह्मण को) दे।"

वैश्य की हत्या के लिये एक सौ गौऐ और शूद्र के वध के बदले केवल दस गौऐ दे।"

ब. गौतम धर्मसूत्र के अनुसार

"क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मण को गाली देने का दण्ड एक सौ कार्षापण है। यदि आक्रमण करे (मार–पीट करे) तो दण्ड दूना अर्थात् दो सौ कार्षापण होगा। यदि वैश्य ब्राह्मण को गाली दे तो उसे क्षत्रिय से डेढ गुना दण्ड देना पडेगा। किन्तु, ब्राह्मण क्षत्रिय को गाली देने पर पचास कार्षापण और वैश्य को गाली देने पर पच्चीस कार्षापण दण्ड देगा। शूद्र को गाली देने का कोई दण्ड नहीं है।"

स. वृहस्पति धर्मसूत्र में कहा गया है:-

"एक ब्राह्मण क्षत्रिय को गाली देने पर पचास, वैश्य को गाली देने पर पचीस और शूद्र को गाली देने पर साढे बारह पण दे।

यह दण्ड धार्मिक शूद्र (अर्थात् जिसने अपनी सामाजिक स्थिति और स्तर को स्वीकार कर लिया है और तदनुसार दास–वृत्ति मे रत है तथा निरपराध है) के लिये है। अधर्मी शूद्र को गाली देने पर ब्राह्मण दण्डनीय नहीं है।

वैश्य क्षत्रिय को गाली देने पर एक सौ पण और क्षत्रिय वैश्य को गाली देने पर पचास पण दे।

यदि क्षत्रिय शूद्र को गाली दे तो उसे बीस पण दण्ड देना पडेगा। और यदि वैश्य शूद्र को गाली देता है तो यह दण्ड चालीस पण होगा।

शूद्र यदि वैश्य को गाली दे तो पहला दण्ड, क्षत्रिय को गाली देने पर दूसरा दण्ड तथा ब्राह्मण को गाली देने पर उच्चतम दण्ड दे।"

द. मनुस्मृति का विधान इस प्रकार है:-

"ब्राह्मण का अपमान करने पर क्षत्रिय एक सौ पण दे, वैश्य डेढ या दो सौ पण दे। किन्तु शूद्र को ब्राह्मण का अपमान करने पर प्राण–दण्ड ही देना चाहिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय का अपमान करने पर पचास पण, वैश्य का अपमान करने पर पचीस पण और शूद्र का अपमान करने पर बारह पण दे।

क्षत्रिय की हत्या के लिये ब्राह्मण–हत्या का चतुर्थांश, वैश्य की हत्या के लिये अष्टम भाग और शूद्र की हत्या के लिये सोलहवा भाग प्रायश्चित करना उचित हैं।

यदि ब्राह्मण अनजाने मे क्षत्रिय की हत्या कर दे तो वह अपनी शुद्धि के निमित्त एक सहस्र गौऐ और एक बैल दे अथवा वह तीन वर्ष एक नगर से दूर वृक्ष के नीचे जटा बढाकर ब्रह्म–हत्या का प्रायश्चित करे।

वैश्य की हत्या के लिये ब्राह्मण एक वर्ष तक प्रायश्चित करे या एक सौ गौऐ और एक बैल दे।

ब्राह्मण शूद्र की हत्या के लिये छ मास तक प्रायश्चित करे अथवा पुरोहित को दस धवल गौऐ ओर एक बैल दे।"

इ विष्णु स्मृति के अनुसार :

"एक निम्नजातीय अपने जिस अग से अपने से उत्तम जाति के व्यक्ति का अपमान करे, राजा उसके उस अग को कटवा दे।

यदि एक निम्नजातीय अपने से उच्च वर्ण के व्यक्ति के बराबर आसन पर बैठ जाय तो उसको नितम्ब पर दाग कर देश से निकाल दिया जाय।

उच्च वर्णीय के ऊपर थूकने के अपराध मे उसके दोनो होठ काट डाले जाये। गाली देने पर उसकी जिह्वा काट दी जाय।

यदि निचली जाति मे जन्मा कोई व्यक्ति, उच्चजातीय को गर्व के साथ उसके कर्त्तव्य का बोध कराये तो राजा उसके मुँह मे गर्म खौलता तेल डालने का आदेश दे।

यदि शूद्र अपमानजनक भाषा मे किसी उच्चजातीय का नाम ले तो उसके मुँह मे दस इंच लम्बी गर्म लाल सलाख घुसेड दी जाय।"

5

अ. बृहस्पति स्मृति के अनुसार :-

"शूद्र धर्म की शिक्षा दे या वेद–वाक्यो का उच्चारण करे अथवा ब्राह्मण का अपमान करे तो उसकी जिह्वा ही काट देनी चाहिये।"

ब. गौतम धर्मसूत्र के अनुसार :

"यदि शूद्र जान–बूझकर वेद–पाठ का श्रवण कर ले तो उसके कानो मे

पिघलता हुआ लोहा या शीशा डाल देना चाहिये।

यदि वह वेद–पाठ करे तो जिह्वा ही काट देनी चाहिये।

यदि वह वेद–सूत्रो को याद कर ले तो उसके शरीर को टुकडे–टुकडे कर डालना चाहिये।"

स. मनुस्मृति के अनुसार '

"शूद्र का गुरु ब्राह्मण और उसका शिष्य देवो और पितरो के निमित्त किये जाने वाले कृत्यों – अनुष्ठानो मे आमन्त्रित करने के अयोग्य है।

कोई भी शूद्र को धर्म की शिक्षा या यज्ञ से बचा भोजन या घी ही उसे दे।

कोई शूद्र को वेद का सार न समझाये। एसा करने वाला शूद्र के साथ ही असम्वृत नर्क मे गिरता है।

कोई भी शूद्र की उपस्थिति में और रात्रि के अन्तिम पहर में वेद का पाठ न करे।"

6

मनुस्मृति में व्यवस्था दी गयी है कि – "सतुलित मस्तिष्क ब्राह्मण, शूद्र की सम्पत्ति पर अधिकार कर सकता है क्योकि शूद्र का अपना कहने को कुछ भी नही है। उसके पास जो भी कुछ है, वह उसके स्वामी द्वारा छीन लिया जाय।

योग्य होने पर भी शूद्र सम्पत्ति का सचय न करे क्योकि ऐसा करने से ब्राह्मण को ठेस पहुँचती है।"

7

जो जन्म से ब्राह्मण है अथवा अपने को ब्राह्मण कहता है, राजा को धर्म की शिक्षा दे सकता है लेकिन शूद्र को यह अधिकार नही है।

"जिस राज्य में अधिकांशत. शूद्र रहते हैं, नास्तिक प्रशासन चलाते हैं तथा जहाँ द्विजो का मूलोच्छेद हो गया है, वह शीघ्र ही अकाल तथा महामारी से नष्ट हो जाता है।"

8

अ. आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2, 10, 26, 14-16; 1, 1, 17, 18) कहता है:-

"विधि–सम्मत नियमो का पालन करने वाला ब्राह्मण, ब्राह्मण के चरण धोकर जीवन व्यतीत करने वाला शूद्र, अन्धा, गूँगा, बहरा और रोगी कर–मुक्त है।

शूद्र का धर्म अन्य तीन जातियो की सेवा करना है। शूद्र ऊँची जाति की जितनी सेवा करता है उतना ही पुण्य अर्जित करता है।"

ब मनुस्मृति (1, 87-91) में कहा गया है:-

"सृष्टि सृजन के लिये सृष्टा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजाओ से क्षत्रिय, जघाओ से वैश्य और पैरो से शूद्र की उत्पत्ति की। सृष्टि--पालन के निमित्त उसने इनके कार्य भी अलग--अलग तय किये।

ब्राह्मण का काम वेदो की शिक्षा देना, वेदाध्ययन, यज्ञ करना, दूसरों से यज्ञ कराना और दान लेना और देना ह।

क्षत्रिय का कार्य रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदाध्ययन करना और ससार से विरक्त रहना है।

वैश्य का काम पशु--पालन, दान करना, यज्ञ करना, वेदाध्ययन, व्यापार करना, ब्याज कमाना तथा कृषि करना है।

विधाता ने शूद्र का काम निष्ठापूर्वक अन्य जातियों की सेवा करना निश्चित किया है।"

9

अ. आपस्तम्ब (2, 10, 27, 89) कहता है:

"शूद्र स्त्री से व्यभिचार करने वाले द्विज को देश से निष्कासित कर दिया जाय और द्विज स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले शूद्र को प्राण--दण्ड दिया जाये।"

ब. गौतम धर्मसूत्र 12, 1-6 बतलाता है:

"किसी आर्य स्त्री से संभोग करने पर शूद्र का लिग काट दिया जाये तथा उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाये। स्त्री का संरक्षक न होने पर उसे उपर्युक्त दण्ड के साथ मृत्यु--दण्ड दिया जाये।"

स. मनुस्मृति 3, 2-19 कहती है:-

"ब्राह्मण कन्या से प्रेम करने पर शूद्र को प्राण--दण्ड देना चाहिये।

शूद्र से प्रेम करने या सम्बन्ध स्थापित करने पर द्विज स्त्री शुद्रत्व को प्राप्त हो जाती है साथ ही अपनी सम्पत्ति से भी वचित हो जाती है। द्विज सजातीय स्त्री से विवाह करें। काम--भोग के लिये वे शूद्र स्त्री का उपयोग करें, यह उचित है।

शूद्र स्त्री केवल शूद्र की ही पत्नी हो सकती है। शूद्र स्त्री और वैश्य--कुल की स्त्री वैश्य की वैध पत्नियाँ हैं क्षत्रिय अपने वर्ण की पत्नी के साथ वैश्य और

शूद्र पत्नियाँ रख सकता है। उसी प्रकार ब्राह्मण अपने वर्ण की पत्नी के अतिरिक्त अन्य तीनो वर्णो की पत्नियाँ रखने का अधिकारी है।

किसी ब्राह्मण ने दीनता की अवस्था मे भी शूद्र पत्नी रखी हो, ऐसा दृष्टान्त इतिहास मे उपलब्ध नहीं है।

कोई भी द्विजशूद्र स्त्री स सतान उत्पन्न करने पर सपरिवार शूद्रत्व को प्राप्त होता है।

शूद्र स्त्री से सहवास करने पर ब्राह्मण अपने स्थान से पतित हो जाता है। सतान उत्पन्न करन पर तो यह निश्चय ही ब्राह्मणत्व से वचित हो जाता है।

शूद्र स्त्री के अधर–पान और उससे सतान उत्पन्न करने का कोई प्रायश्चित नहीं है।"

10

अ. वशिष्ट धर्मसूत्र (6, 24) कहता है :

"द्वेष, मिथ्या भाषण ब्राह्मण–निन्दा, चुगलखोरी, और निर्दयता शूद्रो की पहचान है।"

ब. विष्णू स्मृति (27, 6-9) कहती है :

"नामकरण के समय ब्राह्मण का नाम मगल–सूचक रखे। क्षत्रिय का नाम शौर्य का प्रतीक रखा जाय। वैश्य का नाम धन–सूचक हो। किन्तु शूद्र का नाम घृणाजनक रखे।"

स. गौतम धर्मसूत्र (10, 50, 56, 59, 12, 1, 7) कहता है :-

"शूद्र चौथे वर्ण का है, अद्विज है। वह द्विजों की सेवा से आजीविका अर्जित करता है, उनके पुराने जूते पहनता है और उनकी जूठन खाता है। यदि वह किसी द्विज को गाली दे अथवा पीटे तो उसका अंग–भग कर दिया जाय। और यदि बैठने, लेटने, सोने, बातचीत मे या सडक पर चलने मे समता का दुस्साहस करे तो मृत्यु–दण्ड दे दिया जाये।"

द. मनुस्मृति की निराली व्यवस्था भी देखिये:-

"ब्राह्मण शासक बनने पर किसी भी द्विज को दास वृत्ति के लिये बाध्य कर सकता है। अवज्ञा का दण्ड छ सौ पण है।

शूद्र, क्रीत को या अक्रीत, दास–वृत्ति के लिये ही है। उसका जन्म ब्राह्मण की सेवा के लिये ही हुआ है।"

स्वामी द्वारा मुक्त कर दिये जाने पर भी शूद्र दासता से मुक्त नहीं होता क्योकि शूद्र और दासता एक-दूसरे का पर्याय है। निरपराध और निष्कलंक जीवन जीने वाला शूद्र स्वर्ग प्राप्त करेगा।

शूद्रो का पवित्रतम कर्त्तव्य वेदो के ज्ञाता ब्राह्मणा की आज्ञा का पालन करना है। उच्च वर्णो का आज्ञाकारी, मृदु भाषी, अद्वेषी ब्राह्मण के प्रति निष्ठावान शूद्र अगले जन्म से ऊँचे कुल मे जन्म लेता है।

शूद्र सुरक्षा के लिये क्षत्रिय और आजीविका के लिये वैश्य की दासता करे। किन्तु सुरक्षा, आजीविका और स्वर्ग-प्राप्ति के लिये ब्राह्मण की दासता स्वीकार करे।

ब्राह्मण की सेवा ही शूद्र का पुनीत कर्तव्य है। ब्राह्मण ही उसकी योग्यता, चतुराई और धन के बल पर उसकी रक्षा करने में सक्षम है,

बचा हुआ भोजन, पुराने वस्त्र, गला अन्न और अन्य पुरानी वस्तुएँ शूद्र को दें।

ब्राह्मण का नाम मगल का सूचक, क्षत्रिय का नाम शौर्य का सूचक और वैश्य का नाम धन-सूचक रखे। किन्तु शूद्र का नाम घृणित रखे।

ब्राह्मण की योग्यता समृद्धि से, क्षत्रिय की सुरक्षा-बल से, वैश्य की धन से और शूद्र की सेवा-वृत्ति से ऑकी जाती है।

निम्नतम वर्ण मे जन्म लेने के कारण शूद यदि किसी द्विज को गाली दे तो उसकी जिह्वा काट दी जाये।

द्विज-वर्णीय के लिये अपमानजनक भाषा का प्रयोग करने पर शूद्र के मुँह मे दस अगुल लम्बी गर्म सलाख घोप दी जाये।

शूद्र द्वारा किसी पुरोहित को उसके कर्त्तव्य का स्मरण कराने पर उसके मुँह और कानो मे गर्म खौलता हुआ तेल डाल दिया जाय। ब्राह्मण को घायल करने पर शद्र का वध कर दिया जाय। यह मनु का आदेश है।

ब्राह्मण पर हाथ उठाने पर हाथ, पद-प्रहार पर पैर काट दिये जाय।

ब्राह्मण के ऊपर थूकने पर दोनो होठ, पेशाब करने पर लिंग, और दुर्गंध छोड़ने पर गुदा काट दी जाये।

ब्राह्मण को बन्दी बनाने पर शूद्र के हाथ या पैर या ठोडी या अंडकोष या गला काट दे।

किसी उच्चवर्णीय के बराबर बैठने पर राजा शूद्र के नितम्ब पर दागकर

देश से निकाल दे या उसका पृष्ठभाग काट दे।

द स्मृति 8, 412, -414 कहती है:

"द्विज आर्यो पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले शूद्रो की जिह्वा राजा कटवा दे या अपने कर्मचारियों के द्वारा शूली दे दे।

द्विज का अपमान करने पर शूद्र की जुबान काट दे।

किसी द्विज का तिरष्कारपूर्ण भाषा मे नाम लेने पर उसके मुँह मे दस अंगुल लम्बी गर्म लाल सलाख घुसेड दे।

ब्राह्मण को उसके कर्त्तव्य का बोध कराने पर उसके मुँह और कानो मे खौलता हुआ गर्म तेल डलवा दे।

निम्नवर्णीय द्वारा उच्चवर्णीय पर घात करने का उचित दण्ड यही है कि वह जिस अग से घात करता है उसके उस अंग का ही उच्छेद कर दिया जाय।

निम्नवर्णीय यदि अपने से उत्तमवर्ण के व्यक्ति की बराबरी बैठने मे करे तो राजा का कर्त्तव्य है कि वह या तो उसे नितम्ब पर दागकर देश से निकाल दे या उसका पृष्ठभाग कटवा दे।

यदि वह क्रोधवश अपने से उत्तम वर्ण के ऊपर थूके या पेशाब कर दे या दुर्गन्ध छोडे तो राजा क्रमश उसके होंठ, लिंग या गुदा कटवा दे।"

III

ब्राह्मण विधि–विधाताओ ने शूद्रों के लिये ऐसे काननू बनाये है। इनका संक्षिप्त वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :–

1 शूद्रों का समाज की व्यवस्था में चौथा और अन्तिम स्थान है।

2 शूद्र अपात्र है। उसकी उपस्थिति मे या उसके सुनने तक की सीमा में कोई भी धार्मिक अनुष्ठान या कृत्य नहीं किया जा सकता।

3 शूद्र अन्य तीन वर्णो की भाँति सम्मानित नही है।

4 शूद्र के जीवन का कोई मूल्य नहीं है कोई भी उसकी हत्या कर सकता है। उसका हत्या का कोई दण्ड या प्रायश्चित नहीं है। यदि दण्ड भरना भी पडा तो नगण्य है।

5 शूद्र ज्ञान अर्जित नहीं कर सकता। उसको शिक्षा देना पाप और अपराध है।

6 शूद्र को सम्पत्ति–संचय का अधिकार नही है। और यदि वह ऐसा करता है

तो ब्राह्मण को उसकी सम्पति के हरण का पूरा हक है।

7 शूद्र किसी राज–प्रतिष्ठा के पद को प्राप्त नही कर सकता।

8 शूद्र का कर्त्तव्य और मुक्ति उच्च जातियो की सेवा मे है।

9 द्विज, शूद्र स्त्री से विवाह नहीं कर सकते किन्तु काम–भोग के लिये उसे रखैल के रूप मे उपयोग कर सकते है।

10. शूद्र का जन्म दासता के लिये होता है अत उसे आजीवन दास बनाये रखा जाय।

उपरोक्त के अध्ययन से दो बाते स्पष्ट होती है। एक तो यह कि ब्राह्मण विधि–निर्माताओं ने विधि–रचना के लिये शूद्र को ही अपना आखेट बनाया है। यह आश्चर्य का विषय है। यह आश्चर्य उस समय ओर भी धनीभूत हो उठता है जब वह जान लेते हैं कि प्राचीन आर्यसमाज मे वैश्य उत्पीडित था न कि शूद्र। और प्राचीन ब्राह्मण साहित्य का ऐतिरेय ब्राह्मण इसमे वर्णित राजा विश्वामित्र और रूयापर्ण ब्राह्मण की कथा इसका ज्वलन्त प्रमाण है। फिर क्या कारण है कि ब्राह्मणों की घृणा का निशाना वैश्यों से शूद्र बन गये। अथवा कोई अन्य विशेष कारण हैं जिनकी वजह से ब्राह्मण शूद्रों को अपना परम शत्रु मानते है।

यहॉ यह महत्वपूर्ण और विचारणीय प्रश्न है कि शूद्रो के लिये निश्चित निषेध–प्रतिबन्धो के विषय मे साधारण ब्राह्मणो की क्या राय है? क्या एक ब्राह्मण इस बात को स्वीकार करेगा कि ब्राह्मणो को शूद्रो के साथ घृणा का व्यवहार असाधारण और लज्जास्पद है। कभी नही। ब्राह्मण पर इसका कोई प्रभाव तक न पडेगा। प्रथम तो इसलिये कि समय और परम्परा ने उसके मस्तिष्क को इतना कुण्ठित कर डाला है कि उसने इस दिशा मे सोचना ही छोड़ दिया है। उसे इसकी चिन्ता ही नहीं रही कि शूद्रों के लिये ये प्रतिबन्ध–निषेध क्यो और कैसे बने। दूसरे जो इस तथ्य से अवगत हैं उनकी दृष्टि मे ऐसे निषेध अन्य देशो मे भी विशेष जातियों पर लगाये गये है। अत. इनमे असाधारणता या लज्जा की कोई बात नहीं है। इसे–दूसरे मत का स्पष्टीकरण होना चाहिये।

शूद्रो के निमित्त निर्धारित विशेष–प्रतिबन्धो का साम्य विश्व मे अन्यत्र सुलभ नहीं है। अस्तु, इस आधार पर ब्राह्मण विधि–विधान की तुलना विश्व की किसी भी वैधानिक प्रणाली से असमव है। तदपि हम रोमन लॉ का उदाहरण दे सकते हैं।

ब्राह्मणी साहित्य और रोमन लॉ के तुलनात्मक अध्ययन–विवेचन के लिये यह आवश्यक है कि हम पहले यह जान ले कि वहॉ किन–किन जातियो को विशेष अधिकार प्राप्त थे और किन–किन जातियो पर प्रतिबन्ध थे।

रोग का समाज पाँच वर्गों मे विभाजित था

1 पैट्रीशियन और प्लीबियन

2 फ्रीमैन और दास

3 नागरिक और विदेशी

4 सुइ जूरिस और अलीनी जूरिस

5 इसाई और पगान

फ्रीमैन को सामाजिक और राजनेतिक अधिकार प्राप्त थे लेकिन दास इससे वचित थे और इसका कारण यह था कि दास अपने स्वामी का सेवक होता था।

नागरिकों को सभी प्रकार के अधिकार थे किन्तु विदेशी इन से वचित थे क्योकि वे विदेशी थे और अधिकार रोम की नागरिकता से सम्बद्ध थे। किसी भी विदेशी को रोम मे सरक्षण तभी मिल सकता था जब कोई नागरिक उसका दायित्व ले लेता था।

अलीनी ज्यूरिस और सुइ ज्यूरिस मे भी यही अन्तर था।

जहाँ तक ईसाई और पागानो का सम्बन्ध है दोनो के पूजा–अर्चना के स्थान समान थे और धर्म सामाजिक अधिकारो मे बाधक न था। ईसाई सम्राटो के समय मे पागान, यहूदी आदि पर कुछ अवश्य लगाये गये थे।

अधिकारो और निषेधो के इस सर्वेक्षण से ब्राह्मणी विधान को यह बल मिला है कि हिन्दुओ के इस मत की पुष्टि होती है कि एकमात्र ब्राह्मणी व्यवस्था ही ऐसा नहीं थी जिसने कुछ विशेष जातियो पर प्रतिबन्ध लगाये थे। यद्यपि रोमन लॉ के अन्तर्गत निषेध ब्राह्मणी निषेधों की शाति निर्दय न थे।

रोमन लॉ के अन्तर्गत अधिकारों और निषेध–प्रतिबन्धो का आधार सामाजिक और राजनैतिक था। सामाजिक अधिकारो मे स्वतंत्रता, नागरिकता और परिवार आते थे और इन्हीं के बल पर राजनैतिक अधिकारों का प्रयोग–उपयोग सभव था। वह सामाजिक स्तर तीन परिस्थितियों मे बदल जाता था

1 एक रोमन नागरिक युद्ध–बन्दी बना लिया जाता अथवा किसी अपराध मे दण्डित किया जाता। इस स्थिति मे वह स्वतत्रता, नागरिकता और परिवार से वचित हो जाता था'

2 दूसरे राज्य का नागरिक बनने पर नागरिकता और परिवार के अधिकार से

वचित कर दिया जाता था। ऐसा होने पर उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता कायम बनी रहती थी।

3 परिवार से सम्बन्ध टूट जाने पर।

नागरिकता से वचित होने के तीन कारण थे–

1 स्वतत्रता खो देना,

2. अपराध के लिये दण्डित होना

3 किसी अन्य राज्य का नागरिक बन जाना।

राजनेतिक अधिकारो का उपभोग करने वाला कोई भी व्यक्ति इनसे वंचित हो जाता था यदि

1 उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाय,

2 उसे किसी अपराध के लिये दण्डित किया जाता।

रोमन लॉ के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति कानून की दृष्टि से सम्माननीय माना जाने पर सामाजिक और राजनैतिक अधिकारो का साथ–साथ उपभोग कर सकता था। रोमन लॉ के प्रावधान सब के लिये समान थे। सामाजिक और राजनैतिक–दोनो वर्गो के लिये अधिकार थे, दोनो के लिये निशेध थे। यह व्यवस्था एक सामान्य नियम–परम्परा के अधीन थी, किसी के लिये कोई अन्तर न था।

इसके विपरीत, ब्राह्मणी विधान के अन्तर्गत अधिकार और निषेध–प्रतिबन्ध जातीयता पर आधारित हैं। प्रथम तीन वर्णो के लिये जहॉ अधिकार सुरक्षित रखे गये हैं, सारे निषेध शूद्रो पर लाद दिये गये है। ब्राह्मण विधि–निर्माता यहाँ यह तर्क दे सकते हैं कि उनका सिद्धान्त तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर रोमन लॉ के समान है। वह यह भी कहेगे कि रोमन लॉ के अनुसार जातीयता के आधार पर अधिकारो और प्रतिबन्धो का विभाजन नहीं किया गया। यह सत्य है। पैट्रीशियनो और प्लीवियनों मे वह जातीय आधार पर था। लेकिन इस सम्बन्ध में हमे यह नहीं भूल जाना चाहिये कि :–

1 प्लीवियन दास नही थे। इन्हे सम्पत्ति अर्जित करने, उपभोग करने और खरीदने–बेचने का पूरा–पूरा अधिकार था। उन्हे सामाजिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त न थे।

2 उन पर लागू निषेध स्थायी न थे।

प्लीवियनों पर दो प्रतिबन्ध थे। पहला तो यह वे पैट्रीशियनों से अन्तर्जातीय

विवाह न कर सकते थे। लेकिन यह प्रतिबन्ध सन् 445 ईस्वी पूर्व मे हटा लिया गया था और अन्तर्जातीय विवाह–सम्बन्धो को वैधानिक करार दे दिया गया।

2 रोम के सार्वजनिक मन्दिरो मे पौण्टिफ और औमुरस, प्लीवियन नही बन सकते थे। सन् 300 ईस्वी पूर्व के कानून द्वारा यह प्रतिबन्ध भी समाप्त कर दिया गया।

अब राजनैतिक अधिकारों की बात लेते है। रोम के छठे सम्राट सेरवियस तुलियस के समय में प्लीवियनों को वहॉ की विधान सभा के लिये मतदान का अधिकार प्राप्त हो चुका था। फिर भी वे पद प्राप्त करने से वचित थे यह प्रतिबन्ध भी सन् 287 ईस्वी पूर्व तक पूर्णत समाप्त हो गया। कथन का आशय यह कि समय के साथ दोनो का भेद मूलत समाप्त हो गया।

यह सत्य है कि रोमन लॉ के अनुसार अधिकार और प्रतिबन्ध का भेद–भाव जातीय आधार पर था। फिर भी ये प्रतिबन्ध स्थायी नहीं थे। समय और परिस्थिति बदल जाने पर ये निषेध उठा लिय जाते थे

रोमन लॉ के उदाहरण से प्रभावित होकर ब्राह्मण विधान–निर्माता त्रैवर्णिक और शूद्रों के मध्य के भेद–भाव को समाप्त क्यो नहीं कर देते। इसका उत्तर केवल यही है कि रोमन लॉ के अधिकार और निषेध ब्राह्मणी विधान की भॉति जातीयता पर आधारित न होकर जाति विशेष की अवस्था के परिचायिक थे और स्थायी नही थे। विशेष स्थिति समाप्त होने पर प्रतिबन्ध भी स्वत समाप्त हो जाते थे।

रोमन लॉ और ब्राह्मणी विधि–विधान मे यही नही, दो और अन्तर भी हैं। रोमन लॉ के अन्तर्गत सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों मे समान होने पर भी अपराध–दण्ड के लिये पैट्रीशियन और प्लीवियन मे कोई भेद न था। एक समान अपराध होने पर दोनो जातियो के लोगो को एक जैसा ही दण्ड दिया जाता था। लेकिन धर्म सूत्रो और स्मृतियों में सर्वथा विपरीत सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। एक जैसे अभियोग के लिए अभियोजक और अभियुक्त की जातीय स्थिति के आधार पर दण्ड–विधान निश्चित किये गये हैं। यदि अभियोजक एक शूद्र है और अभियुक्त त्रैवर्णिक है तो दण्ड नगण्य होगा। यदि अभियोजक त्रैवर्णिक है और अभियुक्त शूद्र हो तो दण्ड कठोरतम होगा। यह बर्बरता रोमन लॉ ब्राह्मण विधान का दूसरा अन्तर है।

रोमन लॉ और ब्राह्मण–विधान का दूसरा अन्तर विशेषकर ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि रोमन लॉ के प्रतिबन्ध स्थायी न थे और परिस्थिति और कारण समाप्त होने पर प्लीवियनो, दासो, विदेशियो और पागानों के प्रतिबन्ध समाप्त कर दिये जाते थे।

उक्त दोनो के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म सूत्रों और स्मृतियो मे शूद्रो पर प्रतिबन्ध लगाने मे कितनी चालबाजी की है। यदि यह निषेध और प्रतिबन्ध परिस्थितिजन्य होते तो इतने क्रूर और अत्याचार मूलक न होते। ब्राह्मण विधान–निर्माताओ ने शद्रो पर निषेध तो थोप ही रखे हें, उन प्रतिबन्धों का उल्लघन करने वालों और समाप्त करने वालो के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था भी की है। इस प्रकार प्रतिबन्धों को स्थायित्व प्रदान किया गया है। इसके लिये एक उदाहरण पर्याप्त होगा। वह यह कि शूद्र वेद–मत्रो की पुनरावृत्ति मे अयोग्य होने के कारण यज्ञ नही कर सकता, प्रत्येक व्यक्ति इस मत से सहमति प्रकट कर देगा। लेकिन धर्म सूत्र यही पर विराम नहीं लेते और व्यवस्था देते है कि – "वेद–पाठ और वेद–श्रवण के अपराध मे शूद्र की जिह्वा काट दी जाए अथवा उसके मुँह मे लोहे की गर्म लाल सलाख ठूँस दी जाय।" इससे अधिक बर्बरता और क्या हो सकती है?

इन निषेध–प्रतिबन्धों का स्पष्टीकरण क्या है और ब्राह्मण–विधि–विधाताओं ने शूद्रो के प्रति इतना निर्दय रख क्यो अपनाया। ब्राह्मण विधानो मे केवल निषेधो का वर्णन है। वे कहते हें कि शूद्र को उपनयन का अधिकार नहीं है, शूद्र सम्पत्ति का संचय और उपभोग नही कर सकता, शूद्र राज–पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, इत्यादि–इत्यादि ।" इसके साथ ही वे इन प्रतिबन्धो के मूल कारणो के विषय मे सर्वथा मौन है। शूद्र को केवल शूद्र होने के कारण ही दण्डित किया जाता है यह एक रहस्यमयी गुत्थी है जिसको सुलझाना आवश्यक है। ब्राह्मण विधानो मे इस सम्बन्ध मे कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है अत. वे शूद्रो की खोज मे हमारी सहायता नहीं कर सकते। अस्तु, आइये इस समस्या का समाधान नहीं अन्यत्र ही खोजे।

4. शूद्र और आर्य

ब्राह्मण सूत्रकारो की कृतियो से हम यह नहीं जान पाते कि शूद्र कौन थे और आर्यो का चौथा वर्ण कैसे बने। अस्तु, एतदर्थ पाश्चात्य विद्वानो द्वारा शूद्रो के उद्‌भव के सम्बन्ध मे प्रतिपादित मत का अवलोकन आवश्यक है। यद्यपि सभी विद्वान एकमत नहीं है, तदपि निम्नलिखित बातो पर सहमत हैं–

1 आर्यों द्वारा वैदिक साहित्य की रचना की गयी।

2 आर्य जाति बाहर से आयी जिसने भारत का अतिक्रमण किया।

3 भारत के मूल निवासी दास और दस्यु थे जो आर्य जाति से भिन्न थे।

4 आर्य गौरांग थे और दास तथा दस्यु श्यामलांग।

5 आर्यो ने दास आर दस्युआ को विजित किया।

6 दास और दस्यु पराजित हान पर दास बना लिय गय आर वे शूद्र कहलाये।

7 कायिक रंग के पक्षपाती आर्यो ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जन्म देकर गौरांग और श्यालाग जातियो को सदा सर्वदा के लिये अलग–अलग कर दिया।

भारतीय आर्य समाज मे शूद्रो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो का यह मत कितना सटीक है, यह एक अलग बात है। किन्तु यह निश्चयात्मक रूप से अवश्य कहा जा सकता है कि ब्राह्मणी सिद्धान्तो की सामाजिक स्थिति को दैवीय आदेश स विभूषित गूढ और रहस्यमयी व्याख्याओ के अध्ययन के उपरान्त एक ऐसे सिद्धान्त–मत की आवश्यकता होगी जो इस विषय मे तर्कसंगत और स्वाभाविक व्याख्या प्रस्तुत कर सके। ब्राह्मणी सिद्धान्त तर्कहीन मत हैं और कुछ नही। अन्यथा वे समस्याओ को ज्यों का त्यो न छोड देते। कम से कम पश्चिमी विद्वानो के मत ऐसे नही है।

किसी भी सिद्धान्त की सत्यता की जॉच उसके तर्कसगत साक्ष्य–प्रमाणा से पुष्ट अंशों से होती है। पाश्चात्य विद्वानो के सिद्धान्तो का मुख्य आधार "आर्य" नामक जाति है। अत सर्वप्रथम इसको ही लेते हैं। आर्य जाति कौन थी? इससे पूर्व "आर्य" शब्द का अर्थ जान लेना जरूरी है। "जाति उस जन–समुदाय को कहते है जिसमे जन्म–परम्परानुगत विशेष लक्षण पाये जाते है।" एक समय था जब निम्नांकित लक्षणो को जाति–पहचान मानते थे –

(1) सिर की बनावट (2) बालो और ऑखो का रग

(3) त्वचा का रंग, और (4) आकार

आधुनिक युग मे यह सिद्ध हो गया कि जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति के आधार पर भिन्न–भिन्न स्थानों पर शरीर का आकार भिन्न–भिन्न होता है। अत इसके माध्यम से किसी जाति विशेष की पहचान असंभव है।

मानव–शरीर–रचना शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित प्रो० रिप्ले ने यूरोपियनों को तीन भिन्न जातियो मे विभाजित किया है:–

1 टयूटोनिक	–	लम्बा सिर, लम्बा चेहरा, हल्के रंग के बाल नीली ऑखे, ऊँचा कद और पतली नाक।
2 अल्पाइन	–	गोल सिर, चौडा चेहरा, बालों और ऑखो का भूरा रग, दरम्याना कद और चौडी नाक।

3 मैडिटेरियन — लम्बा सिर लम्बा चेहरा गहरे भूरे या काले बाल, काली आँखें, पतला मुकोला कद और कुछ चौडी नाक।

उपरोक्त शारीरिक वनावट के आधार पर इनमे आर्यो का कोई स्थान है, इस विषय में दो मत है। एक मत इसके पक्ष मे है, उसके अनुसार आर्यों के लक्षण इस प्रकार हे "लम्बा सिर, सीधी पतनी नाक, लम्बा चेहरा, तीखे नक्श, लम्बा छरहरा कद और सुगठित बलिष्ठ शरीर।

दूसरा मत प्रो० मैक्समूलर का है - अर और अरा प्राचीन शब्द हैं जिनका अर्थ जोती हुइ भूमि है। ये शब्द संस्कृत भाषा से लुप्त हो गये है किन्तु ग्रीक भाषा मे "एरा" के रूप मे आज भी सुरक्षित हैं। अत. आर्य का वास्तविक अर्थ ग्रहस्थ कृषक हो सकता है। वैश्य शब्द की उत्पत्ति गृहस्थ के पर्याय "विश" से है। मनु–पुत्री इड़ा का अर्थ भी जोती या खोदी हुई भूमि है और सभवत यह "अरा" का परिवर्तित स्वरूप ही है।

आर्य का अर्थ है भूमि को जोतने वाला। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यो ने अपने लिये इस नाम का चयन किया होगा। अश्व की भाँति त्वरा मति से घुमक्कड जाति तूरानी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आर्य शब्द का उपयोग समस्त वैश्य (कृषक) जाति के लिये किया गया हे।

आर्य शब्द का चौथा अर्थ "श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न" भी होता है। अस्तु, प्रो० मैक्समूलर के अनुसार आर्य कोई जाति नहीं वरन् एक भाषा है।

इम प्रकार हमारे सामने दो मत स्पष्ट हुए

1 आर्य जाति का अस्तित्व शरीर–रचना के आधार पर, तथा

2 एक भाषा–भाषी जन–समुदाय के रूप में आर्य जाति।

मतो के विरोधाभास की समाप्ति के निमित्त वैदिक साहित्य में क्या साक्ष्य उपलब्ध है?

ऋग्वेद में "अर्य" और "आर्य" दोनो शब्दो का प्रयोग किया गया है। अर्य का प्रयोग 88 बार चार अर्थो – 1 शत्रु, 2 सम्भ्रान्त नागरिक, 3 भारत देश का नाम और 4 स्वामी, वैश्य अथवा नागरिक– मे किया गया है।

"आर्य" शब्द का प्रयोग 31 बार आया है किन्तु कहीं भी जाति के अर्थ मे इसको प्रयुक्त नही किया गया।

4 आर्य गौराग थे और दास तथा दस्यु श्यामलाग।

5 आर्यो ने दास और दस्युओ को विजित किया।

6 दास और दस्यु पराजित होने पर दास बना लिये गये और वे शूद्र कहलाये।

7 कायिक रंग के पक्षपाती आर्यो ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जन्म देकर गौराग और श्यालाग जातियो को सदा सर्वदा के लिये अलग–अलग कर दिया।

भारतीय आर्य समाज मे शूद्रो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानो का यह मत कितना सटीक है, यह एक अलग बात है। किन्तु यह निश्चयात्मक रूप से अवश्य कहा जा सकता है कि ब्राह्मणी सिद्धान्तो की सामाजिक स्थिति को देवीय आदेश से विभूषित गूढ और रहस्यमयी व्याख्याओ के अध्ययन के उपरान्त एक ऐसे सिद्धान्त–मत की आवश्यकता होगी जो इस विषय मे तर्कसगत और स्वाभाविक व्याख्या प्रस्तुत कर सके। ब्राह्मणी सिद्धान्त तर्कहीन मत हैं और कुछ नही। अन्यथा वे समस्याओ को ज्यों का त्यो न छोड देते। कम से कम पश्चिमी विद्वानो के मत ऐसे नही है।

किसी भी सिद्धान्त की सत्यता की जॉच उसके तर्कसगत साक्ष्य–प्रमाणा से पुष्ट अंशों से होती है। पाश्चात्य विद्वानो के सिद्धान्तो का मुख्य आधार "आर्य" नामक जाति है। अत सर्वप्रथम इसको ही लेते हैं। आर्य जाति कौन थी? इससे पूर्व "आर्य" शब्द का अर्थ जान लेना जरूरी है। "जाति उस जन–समुदाय को कहते हैं जिसमें जन्म–परम्परानुगत विशेष लक्षण पाये जाते है।" एक समय था जब निम्नांकित लक्षणों को जाति–पहचान मानते थे –

(1) सिर की बनावट (2) बालो और ऑखो का रग

(3) त्वचा का रंग, और (4) आकार

आधुनिक युग मे यह सिद्ध हो गया कि जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति के आधार पर भिन्न–भिन्न स्थानों पर शरीर का आकार भिन्न–भिन्न होता है। अत इसके माध्यम से किसी जाति विशेष की पहचान असंभव है।

मानव–शरीर–रचना शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित प्रो० रिप्ले ने यूरोपियनो को तीन भिन्न जातियो मे विभाजित किया है –

1 टयूटोनिक	—	लम्बा सिर, लम्बा चेहरा, हल्के रग के बाल, नीली ऑखे, ऊँचा कद और पतली नाक।
2 अल्पाइन	—	गोल सिर, चौडा चेहरा, बालों और ऑखो का भूरा रंग, दरम्याना कद और चौडी नाक।

3 मैडिटेरियन	लम्बा सिर लम्बा चेहरा गहरे भूरे या काले बाल, काली ऑखें पतला मुकोला कद और कुछ चौडी नाक।

उपरोक्त शारीरिक बनावट के आधार पर इनमें आर्यो का कोई स्थान है, इस विषय में दो मत है। एक मत इसके पक्ष मे है, उसके अनुसार आर्यो के लक्षण इस प्रकार है "लम्बा सिर, सीधी पतनी नाक, लम्बा चेहरा, तीखे नक्श, लम्बा छरहरा कद और सुगठित बलिष्ठ शरीर।

दूसरा मत प्रो० मैक्समूलर का है . अर और अरा प्राचीन शब्द है जिनका अर्थ जोती हुइ भूमि है। ये शब्द संस्कृत भाषा से लुप्त हो गये है किन्तु ग्रीक भाषा मे "एरा" के रूप में आज भी सुरक्षित है। अत. आर्य का वास्तविक अर्थ ग्रहस्थ कृषक हो सकता है। वैश्य शब्द की उत्पत्ति गृहस्थ के पर्याय "विश" से है। मनु–पुत्री इडा का अर्थ भी जोती या खोदी हुई भूमि है और सभवत. यह "अरा" का परिवर्तित स्वरूप ही है।

आर्य का अर्थ है भूमि को जोतने वाला। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यो ने अपने लिये इस नाम का चयन किया होगा। अश्व की भॉति त्वरा मति से घुमक्कड जाति तूरानी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आर्य शब्द का उपयोग समस्त वैश्य (कृषक) जाति के लिये किया गया है।

आर्य शब्द का चौथा अर्थ "श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न" भी होता है। अस्तु, प्रो० मैक्समूलर के अनुसार आर्य कोई जाति नहीं वरन् एक भाषा है।

इस प्रकार हमारे सामने दो मत स्पष्ट हुए·

1 आर्य जाति का अस्तित्व शरीर–रचना के आधार पर, तथा

2 एक भाषा–भाषी जन–समुदाय के रूप में आर्य जाति।

मतो के विरोधाभास की समाप्ति के निमित्त वैदिक साहित्य में क्या साक्ष्य उपलब्ध है?

ऋग्वेद मे "अर्य" और "आर्य" दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। अर्य का प्रयोग 88 बार चार अर्थो – 1 शत्रु, 2 सम्भ्रान्त नागरिक, 3 भारत देश का नाम और 4 स्वामी, वैश्य अथवा नागरिक– में किया गया है।

"आर्य" शब्द का प्रयोग 31 बार आया है किन्तु कहीं भी जाति के अर्थ मे इसको प्रयुक्त नही किया गया।

उपरोक्त से यह सिद्ध होता है कि अर्य या आर्य शब्द का उल्लेख जाति के अर्थ मे कहीं भी तो नही किया गया। अस्तु आर्य या वर्य का अर्थ किसी जाति विशेष का नाम या सम्बोधन नही है।

यहाॅ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि मानव–शरीर–रचना शास्त्र का साक्ष्य क्या है। आर्य जाति की पहचान के लिये केवल लम्बे सिर का होना ही पर्याप्त नही। प्रो० डिप्ले ने लम्बे सिरवाली दो जातियो का जिक्र किया है। अत' यह प्रश्न अभी अनुत्तरित ही है।

2

पहले हम यह ले कि आर्य बाहर से आये, उन्होने भारत का अतिक्रमण किया और यहाॅ के मूल निवासियो को जीत लिया। श्रेष्ठ यह रहेगा कि हम इन प्रश्नो पर अलग–अलग विचार करे।

आर्य भारत मे कहाॅ से आये इस प्रश्न पर मतभेद है। बेनफ्रे महोदय के अनुसार यह स्थान काला सागर के उत्तर मे है, मेजर साहब के अनुसार मध्य और पश्चिमी जर्मनी में। कुछ विद्वान कालेशस को आर्यो का मूल देश बतलाते है। प्रो० डिप्ले का विचार इसके विपरीत है। लोकमान्य तिलक ने मत व्यक्त किया है कि वेदो मे वर्णित प्राकृतिक चित्र और कथाओ तथा उत्तरी ध्रुव के वातावरण मे एकरूपता है समानता है। अत आर्कटिक क्षेत्र ही उनका मूल देश होगा।

यह एक सर्वथा मौलिक मत है। किन्तु इसमे एक तथ्य अनदेखा कर दिया गया है। और वह यह कि वैदिक आर्यो के जीवन मे और धार्मिक कृत्यो मे अश्व का एक विशिष्ट स्थान रहा है। अस्तु, प्रश्न उठता है कि क्या आर्कटिक क्षेत्र मे अश्व पाया जाता था। इसका उत्तर न में मिलेगा अत आर्यो का मूल देश आर्कटिक होने की कहानी तर्क–सगत नही है।

3

जहाॅ तक आर्य जाति के बाहर से आने और यहाॅ के मूल निवासियों को जीतने का सम्बन्ध है, ऋग्वेद मे एक भी प्रसंग ऐसा नहीं है जो इसकी पुष्टि करता हो। वैदिक साहित्य इस मत के विपरीत है कि आर्य बाहर से आये। इस सदर्भ मे ऋग्वेद के मत्र X 75 5 में सात नदियो का प्रसग महत्वपूर्ण है। प्रो० डी० एस० द्विवेदी के अनुसार – "नदियो का सम्बोधन "मेरी गंगा", "मेरी जमुना" और मेरी सरस्वती" कहकर किया गया है। कोई भी विदेशी ऐसा सम्बोधन क्यों करेगा। ऐसा सम्बोधन वही कर सकता है जिसका इनसे निकट का भावनात्मक सम्बन्ध रहा हो।"

विजय–पराजय के प्रश्न का उत्तर वेदा मे सुलभ है। दास और दस्यु आर्यो के रूप मे दर्शाय गये हैं। इनके वध और उच्छेद के लिये अनेक बार देवो का आवाहन किया गया है। किन्तु आर्यो की विजय के विषय मे कोई करने से पहले निम्नलिखित बातो पर विचार करना आवश्यक है

ऋग्वेद में आर्यो और दास तथा दस्युओ मे युद्ध के प्रसगों की कोई विशेष कथा नहीं मिलती। केवल छोटे–छोटे झगडो का उल्लेख भर मिलता है। यह निश्चयात्मक रूप से जय–परायज का साक्ष्य नही हो सकता।

दासो–दस्युओ और आर्यो में भले ही सघर्ष की स्थिति रही हो, दोनों मे शान्ति बनाये रखने के लिये। सम्मानजनक समझौते हुए है। ऋग्वेद के मंत्र VI 33, VII 83 1, VIII 51 9, X 102 3 में स्पष्टत· कहा गया है कि आर्य और दास एव दस्युओं ने सयुक्त रूप से शत्रु से युद्ध किया।

आर्य और दास–दस्युओ में विरोध रहा है। किन्तु जाति–गत विरोध नहीं रहा। ऋग्वेद इसका प्रमाण है। ऋग्वेद में दस्युओ को 1.51.8 9, 1 132 4, IV 42 2, VI 14 3 के अनुसार अव्रत, V 43 2 अपव्रत, VIII 59 11 और X 22 8 में अन्यव्रत, V 189 3 मे अनग्निव्रत, 1 31 44, 133 4 और VII 59 11 में अयाज्य, IV 15 9 और X 105 8 मे ब्राह्मण पुरोहित – विहीन V 42 9 में ब्राह्मण द्वेषी, 1,133.1, V 2 3, VII 1866, X.27 6 और X 48 7 में अनेन्द्र बताया गया है।

ऋग्वेद के मत्र X 22 8 में कहा गया है : "हम दस्यु जातियों के मध्य रहते न तो यज्ञ करते है और न किसी की भक्ति। उनके सस्कार–अनुष्ठान भी है। अत वे मनुष्य कहलाने योग्य नही है। हे शत्रु– विनाशक, दासो का करो।"

इस विवेचन से इस मत का कि आर्य बाहर से आये और उन्होंने यहॉ के वासियो दास–दस्यु जातियो को जीता– खडन हो जाता है।

4

यह तो हुई आर्यो के बाहर से आने, दासो और दस्युओ को जीतने की अब तक इस पर आर्य दृष्टिकोण से विचार किया गया है। आइये अब इस न और दस्युओ के दृष्टिकोण से विचार करे। दास और दस्युओ के नाम पर क्या जाति सूचक रहा है? जो इस का समर्थन करते है वे इन साक्ष्यो का देते हैं

1 ऋग्वेद मे प्रयुक्त मृधावक और अनास दस्युओं के लक्षण–युग बताये गये है,

2 ऋग्वेद से दास श्यामलाग कहे गये है।

ऋग्वेद मे मृधावक शब्द 1 174 2, V 32 8, VII 6 3 तथा VII 18 3 मत्रा मे किया गया है।

मृधावक का अर्थ है वह व्यक्ति जो गॅवारू, अपरिष्कृत भाषा का प्रयोग करता है। क्या भाषा का गॅवारू या अपरिष्कृत होना जाति–भिन्नता का साक्ष्य माना जा सकता है? नहीं। इसे साक्ष्य के रूप मे ग्रहण करना बचकानापन ही कह जायेगा।

ऋग्वेद V–29.10 मे अनास का तात्पर्य क्या है? इसकी दो व्याख्याये या अर्थ मिलते हैं। प्रो० मैक्समूलर के अनुसार अनास का अर्थ "बिना नाकवाला" या "चपटी नाक वाला" है। सायनाचार्य ने इसका अर्थ बिना मुॅह वाला" अर्थात् "अमृदुभाषी" बताया है। सायणाचार्य का पाठन सत्य प्रतीत होता है। इसके पक्ष मे दो बाते प्रमुख हैं– एक तो यह कि शब्द के अर्थ का अनर्थ नहीं किया गया और दूसरी यह कि दस्यूओं को कही भी बिना नाक वाला नही बताया गया।

अस्तु, ऐसा कोई साक्ष्य सुलभ नहीं जो इस मत की पुष्टि करे कि दस्यु एक भिन्न जाति थे।

अब दासों को ले। यह सच है कि ऋग्वेद VI 47.21 में दासो को कृशाग बताया गया है। फिर भी इस मत को स्वीकार करने से पूर्व निम्नांकित पहलुओ पर विचार करना आवश्यक है

1 ऋग्वेद मे दासों को केवल एक बार श्यामलाग कहा गया है।

2 यह स्पष्ट नही है कि यह अलकारिक भाषा के कारण है अथवा आकृति का घोतक है।

3 यह वास्तविक उल्लेख है अथवा घृणा का प्रदर्शन।

जब तक इन प्रश्नों का समुचित उत्तर न मिले, दासों को श्यामलाग कहे जाने मात्र के आधार पर श्यामलागी जाति माना नही जा सकता। देखिये ऋग्वेद के निम्नाकित मत्र

VI. 22 10 = हे वज्रि, तुमने दासो को आर्य बनाया है, अपनी शक्ति से बुरे को अच्छा बनाया है। हमे भी वही शक्ति दो जिससे हम शत्रुओ पर विजय पा सके

X 4७3 (इन्द्र कहते है) मैंने दस्युओं को "आर्य" सम्बोधन से वचित कर दिया है।

1 151 8 हे इन्द्र, यह मालूम करो कि आर्य कौन है और दस्यु कौन? इनको प्रथक करो।

उक्त मत्रो से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों और दासों– दस्युओं में कायिक रग के आधार पर जातीय भेद–भाव न था और दास तथा दस्यु आर्य बन सकते थे। और यही कारण था कि इन्द्र को दास और दस्युओ को आर्यो से अलग करने का दायित्व सौंपा गया।

5

पाश्चात्य विद्वानो द्वारा आर्य जाति के सम्बन्ध मे प्रतिपादित मत स्वत ही धराशायी हो जाता है क्योकि इससे कोई तर्कसगत तथ्य प्रकट नही होता। इसके विपरीत पूर्व प्रतिपादित मत को सिद्ध करने के लिये वैदिक साहित्य से जहॉ–तहॉं से असगत तथ्यों के सकलन का निष्फल प्रयास किया गया है।

आर्य जाति की कथा एक मनगढन्त कथा भर है और इसका आधार डॉ० बाप्प की कृति "कम्पैरेटिव ग्रामर" है। उक्त पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि योरोपीय और ऐशियायी भाषाओं का जन्म एक ही भाषा से हुआ है और उक्त भाषा–भाषी लोग इंडो–जर्मन या आर्य है। इस मत से दो निष्कर्ष निकले– एक तो यह कि जाति एक थी और दूसरा यह कि वह जाति आर्य जाति थी। इस तर्क के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि आर्य भाषा–भाषी आर्य थे और उनका निवास भी एक ही भूमि थी।

आर्यों के अतिक्रमण की कहानी एक नई खोज है और इस कहानी की खोज की आवश्यकता पश्चिमी विद्वानों को इस तथ्य को सिद्ध करने के लिये पड़ी कि इडो–जर्मन ही वर्तमान मे मूल आर्यो के मूल रक्त हैं। यहॉ यह प्रश्न उठता है कि आर्य भाषा भारत मे कैसे पहुॅची और उसका उत्तर यही होगा कि आर्य बाहर से आये।

तीसरी बात एक और भी है कि आर्य एक उत्तम जाति के थे। इस मत के मूल मे यह विश्वास है कि आर्य योरोपीय जाति के थे और योरोपीय होने के नाते वे एशियायी जातियों से उत्तम हैं। श्रेष्ठता की इस परिकल्पना को यथार्थ सिद्ध करने के लिये भी इस कहानी के गढने की आवश्यकता थी।

चौथा तर्क यह है कि गौराग होने के कारण योरोपीय जातियॉ एशियायी

जातियों से घृणा करती हैं क्योकि वे श्यामलागी होती है। आर्यो को योरोपीय मान लेने से उनकी रग–भेद की नीति मे विश्वास आवश्यक हो जाता है और उसका साक्ष्य वे चातुर्वर्णीय व्यवस्था मे खोजते हैं। पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार वर्ण–व्यवस्था रग–भेद का पर्याय है।

इन परिकल्पनाओ मे कुछ भी तथ्य–सगत नही है। आर्य जाति की शारीरिक बनावट और मात्र एक भाषा होने की बात जचती नहीं है और उनके गौराग होने की बात तो और भी अटपटी लगती हे। जहाँ तक आर्यो के बाहर से आने और दासो–दस्युओ के भारत के मूल वासी होने की बात है, वह भी असत्य है। तदपि चातुर्वर्ण्यीय व्यवस्था मे रग–भेद का वर्चस्व स्पष्ट होता है। यदि हम रग–भेद को वर्गीकरण का आधार मान ले तो वर्ण चार होने चाहिय। किसी ने इन वर्णो का न तो विवरण दिया है और न ही यह स्पष्ट किया है कि चातुर्वणर्यीय व्यवस्था को अगीकार करने वाली चार जातियॉ कौन–कौन थीं।

आर्य जाति के अभ्युदय–सिद्धान्त के प्रतिपादक अपने मत की पुष्टि मे इतने उत्कंठित है कि वह यह भी भूल बैठे है कि उनकी कहानी में कितने छेद हैं। वे केवल उत्पत्ति को सिद्ध करना चाहते है और एतदर्थ उन्होने वेदो से जो कुछ उन्हें अच्छा लगा सिद्धि–साक्ष्य के रूप मे प्रस्तुत किया है।

आर्य जाति की उत्पत्ति का सिद्धान्त भ्रामक है। इसका अन्त बहुत समय पहले हो जाना चाहिये था। किन्तु इसके विपरीत इसका जनसाधारण पर प्रभाव दृढ हुआ है। इसके दो कारण रहे है –

1 ब्राह्मण विद्वानो को हिन्दू होने के नाते पाश्चात्य विद्वानो के इस मत को अमान्य करना चाहिये था कि योरोपीय जाति होने के कारण वे एशियायी जातियो से उत्तम है। किन्तु वे इसका समर्थन करते हैं। इसका एक विचित्र कारण है कि ब्राह्मण दो–राष्ट्र के सिद्धान्त में विश्वास रखता है। वह स्वय को आर्यो का प्रतिनिधि मानता है और शेष हिन्दुओ को अनार्य जातियो का वंशज। उक्त सिद्धान्त से उसके उत्तम होने के अहं की पूर्ति होती है। वह आर्यो के बाहर से आने तथा अनार्य जातियो को विजित करने के सिद्धान्त का समर्थन इसलिये करता है कि इससे उसे अ–ब्राह्मणो पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के औचित्य को सिद्ध करने मे सहायता मिलती है।

2 पाश्चात्य विद्वानो के "वर्ण का अर्थ रग" अधिकतर ब्राह्मण विद्वानो ने स्वीकार कर लिया है। वास्तव में आर्य सिद्धान्त का मूल आधार यही है। जब तक "वर्ण" की यह व्याख्या मानी जाती रहेगी, आर्य–सिद्धान्त जीवित रहेगा। अस्तु आर्य सिद्धान्त का यह अश महत्वपूर्ण है और इसकी विस्तृत विवेचना

जरूरी है। यह तीन प्रकार हो सकती है '

अ योरोपीय जातियाँ गौरांग थी या कि श्यामलाग?

ब भारतीय आर्य गौराग थे?

स वर्ण का वास्तविक अर्थ क्या है?

प्रो० रिप्ले कहते हैं-- "अब तक की खोज से हमारे इस मत की पुष्टि हुई है कि योरोपीय केवल लम्बोतरे सिर वाले ही न थे बल्कि वे कृष्ण वर्णीय भी थे। हमने दक्षिण फ्रास मे प्रागैतिहासिक जाति क्रो--मगनोन का अस्तित्व सिद्ध किया है। जिनके केश काले और ऑखें आकर्षक है। इतना ही नही, गर्फाग्नाना मे जहॉ उत्तरी इटली की प्राचीन लिगूरियन जाति के वश मिलते हैं, मानव सामान्यत कृष्णागी है। अतः सामान्य सिद्धान्तों और स्थानीय विवरण के प्रकाश मे यह स्पष्ट है कि योरोप की पूर्ववर्ती जातियॉ निश्चय ही कृष्णागी थीं और ये मैडिटेरियन थी न कि स्केंडेवियन।" (योरोप की जातियाँ–पृ० संख्या 466)

अब वेदों की ओर चलते है, सभव है कोई ऐसा उदाहरण मिल जाये जो आर्यो की रंग–भेदनीति की ओर इगित करता हो।

ऋग्वेद (1 117 8) मे प्रसग है कि आश्विन ने श्याव्य और रूशति से विवाह किया। श्याव्य कृष्णागी थी और रूशति गौराग।

ऋग्वेद (1 117 5) में आश्विन की स्तुति पीतागी वन्दना के उद्धार के लिये की गयी है।

ऋग्वेद (ii 3 9) में एक आर्य ने गेहुएं रग के गुणी पुत्र के लिये देवताओं की आराधना की है।

इन उद्धरणो से यह सिद्ध होता है कि आर्य रग–भेद के पक्षधर न थे। उनकी अनेक जातियॉ थी जिनका कायिक रग भिन्न–भिन्न था जैसे ताम्रवर्णी, श्वेताग, श्यामल, आदि। दशरथ के पुत्र राम थे और यदु के वशज कृष्ण को श्यामलाग बताया जाता है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रो के सृष्टा ऋषि दीर्घात्तमा कृष्णाग थे। ऋग्वेद के मंत्र X.31.11 के अनुसार महान ऋषि कण्व भी श्यामलांग ही थे।

अब "वर्ण" शब्द के अर्थ को लेते हैं। सर्वप्रथम हम ये देखेगे कि ऋग्वेद मे इसका प्रयोग किस अर्थ में किया गया है। ऋग्वेद मे "वर्ण" शब्द 22 बार आया है। इसका प्रयोग उषा, अग्नि, सेम, आदि आराध्यो के रूप–स्वरूप या रग के अर्थो मे सत्रह बार किया गया है। देव–आराध्यो के लिये प्रयुक्त "वर्ण" शब्द का अर्थ

ऋग्वेद में प्राणियो के लिये प्रयुक्त "वर्ण" से लगाना उचित न होगा। ऋग्वेद में चार–पॉच बार इसका प्रयोग प्राणियों के लिये किया गया है। देखिये –

I 104 2, I 179,6, II 12 4, III 34 5 और IX 71 2 मंत्र।

इन मे यह प्रकट नहीं होता कि कायिक रग के लिये ऋग्वेद मे वर्ण शब्द का प्रयोग किया गया है।

ऋग्वेद का मत्र III 34 5 सशय उत्पन्न करता है। इसका व्याख्या–विन्यास "शुक्ल वर्ण की वृद्धि" द्विअर्थक है। एक अर्थ तो यह है कि इन्द्र ने उमा को अपने प्रकाश से शुक्ल रग की वृद्धि अर्थात् प्रकाश की वृद्धि के लिये आदेश दिया और दूसरा अर्थ यह होता है कि "शुक्लांगो की सख्या मे वृद्धि हुई।"

ऋग्वेद के मंत्र IX 21 2 की व्याख्या भी "असुर वर्ण को छोडकर" अपने आप मे स्पष्ट नही है। सूक्त सोम पावमना से सम्बन्धित है। यहॉ वर्ण का अर्थ रूप है। पद का दूसरा भाग कहता है– "उसने अपने श्यामल या काले आवरण को उतार फेका और आकर्षक आवरण धारण किया।" यहॉ वर्ण का अर्थ कालापन होता है।

ऋग्वेद (1 179 6) बहुत ही सहायक है। इसके अनुसार ऋषि अगस्त्य ने प्रजा, संतति और बल प्राप्त करने के लिये लोपमुद्रा से सहवास किया और उससे दो वर्ण उत्पन्न हुए। यद्यपि इस पद से यह स्पष्ट नही हो पाया कि वे दो वर्ण कौन थे फिर भी यह कहा जा सकता है कि दो वर्णो से अर्थ आर्यो और दासो से है। यदि ऐसा ही मान लिया जाय, तब निस्सदेह ही वर्ग का अर्थ वर्ण होता है न कि कायिक रग।

ऋग्वेद के मत्र I 104.2 और II 12.4 मे दासो के लिये वर्ण शब्द का प्रयोग किया गया है। क्या इसका यह अर्थ लिया जाय कि दास सावले रग के थे अथवा उनका अपना अलग वर्ग था। दोनों मे कौन सा अर्थ सत्य है यह हम नही जान पाते। अत किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का कोई मार्ग ही नहीं है।

ऋग्वेद का साक्ष्य स्पष्ट नही है। इस सम्बन्ध मे भारतीय ईरानी साहित्य मे वर्ण शब्द की गवेषणा सहायक सिद्ध हो सकती है। सौभाग्यवश जेडा अवेस्ता मे यह "वरणा" या "वरेणा" के रूप में उपलब्ध है। इसका निर्दिष्ट अर्थ "मत, धार्मिक विश्वास का आस्था", विश्वास और मत है। वरणा या वरेणा शब्द का प्रयोग गाथाओ मे इसी अर्थ में छ. बार किया गया है।

गाथा अहुनावैति यासना हा 30 पद 2, यासना हा 31 पद 11 गाथा उष्टावेति यासना हा 45 पद 1 और 2, गाथा स्पेटमैन्यु यासना हा 48 पद 4, यासना हा 49 पद 3 मे वरणा या वेरणा शब्द का प्रयोग स्पष्टत धर्म के लिये किया गया

है। यासना हा 16 मे एक दिलचस्प प्रसग है जिसमे हम जराष्ठष्ट के धर्म की पूजा करते है "कहा गया है। जडा अवेस्ता का यह साक्ष्य निस्सदेह इस मत की पुष्टि करता है कि प्राचीन काल मे एक विशेष धर्म–अहूलियन धर्म– को मानने वाली एक जाति थी और उसका रग या आकृति से कोई सम्बन्ध न था।

पाश्चात्य विद्वानो के सिद्धान्तो–मतो का अध्ययन करने पर निम्नाकित निष्कर्ष स्पष्ट होते है

1 वेदो मे आर्य जाति के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है।

2 वेदो म एसा कोई प्रसग–उल्लेख नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि आर्यो ने भारत पर आक्रमण कर यहाँ के मूलवासी दासो–दस्युओ को विजय किया।

3 आर्य, दास और दस्यु जातियो के अलगाव को सिद्ध करने के लिये कोई साक्ष्य वेदो मे उपलब्ध नहीं है।

4 वेदो मे इस मत की पुष्टि नही की गयी कि आर्य, दासो और दस्युओ से भिन्न रग थे।

5. आर्यो के विरुद्ध आर्य

पाश्चात्य विद्वानो द्वारा आर्य जाति के सम्बन्ध मे सिद्धान्त गढने तथा ब्राह्मणो द्वारा उसे स्वीकार करने के विषय मे बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस सिद्धान्त–मत का लोगो पर इतना अधिक प्रभाव है कि इसके विरोध में कुछ भी कहना हलकी चोट से अधिक न होगा। अस्तु, इस भयावहता को स्पष्ट करने के लिये पाश्चात्य सिद्धान्त–मत का अन्वेषण आवश्यक है।

आर्यो के बाहर से आने और दास तथा दस्यु जातियो को विजित करने के सिद्धान्त का समर्थन करने वाले ऋग्वेद के निम्नाकित मत्रो को अनदेखा करते हैं–

1	ऋग्वेद (VI 23 3)	हे इन्द्र, तूने हमारे दोनों विरोधियों दासों और आर्यों को मार डाला।
2.	(VI 60 3)	धर्म और न्याय के रक्षक इन्द्र और अग्नि हमे दुख पहुँचाने वाले दासों और दस्युओ का दमन करे।
3	(viii,24 27)	हे इन्द्र तुमने राक्षसों और सिन्धु के तटवर्ती क्षेत्रो में निवास करने वाले आर्यो से हमारी रक्षा की है।

अब तुम दासो को भी शस्त्र हीन बनाओ।

4	(vii 81 1)	इन्द्र और वरूण ने दासो और आर्यो का सहार कर सदास की रक्षा की।
5	(x 38 3)	हे आदरणीय इन्द्र, दास और आर्य विधर्मी हे हमारे शत्रु है। उन्हे दबाने के लिये हमे अपना आशीर्वाद दो। तुम्हारी सहायता से हम उन्हे मार डालेगे।
6	(x 86 19)	हे मामेयु, अपने आराधको को शक्ति दो। तुम्हारी सहायता से हम अपने शत्रु आर्यो और दासो का विनाश करेगे।

इन मंत्रो में निहित साक्ष्य पाश्चात्य मत की परिकल्पना को मिथ्या सिद्ध करता है। साथ ही स्पष्ट करता है कि आर्यो की दो जन–श्रेणियॉ थीं जो भिन्न–भिन्न थीं। तथा एक–दूसरे से वेर–भाव रखती थीं। दो आर्य जातियो के अस्तित्व की बात केवल कल्पित नहीं है, वास्तविकता है। इसके पक्ष मे पर्याप्त साक्ष्य भी उपलब्ध हैं।

पहला साक्ष्य तो भिन्न–भिन्न वेदो की मान्यता है। वेद–ज्ञाता जानते है कि वेद केवल दो हैं– ऋग्वेद और अथर्व वेद। सामवेद और यजुर्वेद तो ऋग्वेद के भिन्न स्वरूप मात्र हैं। यह सर्वविदित सत्य है कि दीर्घ काल तक ब्राह्मण अथर्ववेद को ऋग्वेद के समान पवित्र नही मानते थे। ऐसा क्यो था? ऋग्वेद को पवित्र और अथर्व वेद को अपवित्र क्यों माना गया? इसका उत्तर यह हे कि दोनो वेद आर्यो की दो भिन्न–भिन्न जातियों द्वारा रचे गये थे। कालान्तर में जब दोनो जातियॉ एक हो गयी तो अथर्ववेद को ऋग्वेद के समान पवित्र मान लिया गया।

इसके अतिरिक्त समस्त ब्राह्मणी साहित्य में भिन्न विचारधाराओ की दो भिन्न आर्य जातियो के अस्तित्व के सम्बन्ध मे पर्याप्त साक्ष्य बिखरे पडे है। सृष्टि–सृजन की भिन्नता दो वर्गो या जातियो की ओर इंगित करती है। इनमें से एक का वर्णन अध्याय दो मे किया जा चुका है। केवल दूसरी विचारधारा का वर्णन शेष है। इसके लिये हम वेदो से प्रारम्भ करते है। तैत्तिरीय सहिता मे निम्नाकित वर्णन है

"पुत्रो की कामना से अदिति ने देवों और साध्यो के लिये ब्रह्मोदन तैयार किया। उन्होने उसका शेष उसे दिया जिसे उसने खाया। उसे गर्भाधान हुआ और चार आदित्य जन्में। उसने दूसरा ब्रह्मोदन तैयार किया और सोचा कि जूठन से मेरे चार पुत्र पैदा हुए हैं और यदि मै पहले ही खा लूँ तो अत्यन्त प्रतिभावान पुत्र

गे। ऐसा सोचकर उसने ब्रह्मोदन का पहले ही भक्षण कर लिया। उसे गर्भाधान गैर उससे एक अपूर्ण अडे का जन्म हुआ। उसने आदित्या के लिये तीसरा नेयार किया जिससे आदित्य वैवस्वत का प्रादुर्भाव हुआ।"

(तैत्तिरीय सहिता 6561)

अब शतपथ ब्राह्मण की सृजन–कथाओ को देख

सतपथ ब्राह्मण (1811) के अनुसार हाथ धोते समय मनु को एक मछली मिली। मछली ने मनु से कहा– "मुझे बचा लो, मै समय आने पर तुम्हारी रक्षा करूगी।" मनु ने पूछा– "तुम मुझको किससे बचाओगी। तुम्हारी रक्षा का उपाय क्या है।" मछली ने उत्तर दिया– "जब तक मै छोटी हूँ खतरे मे हूँ। मै जब बृहत् आकार ग्रहण कर लूँ आप मुझे सागर में छोड दे। मै सकट से परे हो जाऊँगी और निकट भविष्य मे प्रलय से तुम्हारी रक्षा करूगी।" मनु ने वैसा की किया और मत्स्य के बड़ा आकार प्राप्त करने पर उसे समुद्र में पहुँचा दिया। मनु ने मत्स्य के परामर्श के आधार पर एक मजबूत जलपोत (नाव) तैयार किया और सप्तर्षियो के साथ जल–प्लावन क समय सागर–तट पर जा पहुँचे। मत्स्य उनके पास आया। मनु ने तीव्रता की और नाव की रस्सी मत्स्य के सीग से बांध दी। मत्स्य उन्हे उत्तर के पर्वतो पर ले पहुँचा। वे जल–प्लावन के कम होने पर नीचे उतरे। बाढ के प्रकोप से सभी जीव और पदार्थ नष्ट हो गये थे। अकेले बचे थे केवल मनु। उन्होने सन्तति की कामना से यज्ञ प्रारम्भ किया और एतदर्थ वे घृत, दूध दही को जल मे डालते चले गये। एक साल के उपरान्त इडा नाम की एक स्त्री प्रकट हुई और इडा से विश्वोत्पत्ति हुई।

सतपथ ब्राह्मण (61211) के "प्रजापति ने धरा पर जीवा की उत्पत्ति की। ऊपर के वायु से देवताओ और नीचे के वायु से राक्षसो को उत्पन्न किया। प्रजापति ने जैसे चाहा रचना की। प्रजापति ने विश्व–रचना की।

सतपथ ब्राह्मण (7526) प्रारम्भ में प्रजापति अकेले थे। उन्होंने विश्वोत्पत्ति की कामना की। अपने श्वास से पशु, आत्मा से मानव, ऑखो से अश्व, श्वास से बैल, कान से भेड, और स्वर से बकरी को पैदा किया।

सतपथ ब्राह्मण (10131) प्रजापति ने जीव रचना की। अपने शरीर के ऊर्ध्व वायु से देवगण और निम्नाग–वायु से प्राणियो की रचना की। तदुपरान्त मृत्यु को जन्म दिया.

सतपथ ब्राह्मण (14421) प्रारम्भ मे पुरुष के रूप में आत्मा नितान्त

अकेली थी। उसके अकेलेपन से डर कर अपने लिये साथी की कामना की और एतदर्थ उसने स्वयं को दो भागों मे विभाजित किया। परिणामस्वरूप पति–पत्नी का जन्म हुआ। दोनो के सहवास से मानव पैदा हुए। पत्नी यह सोचकर कि "पुरुष ने उसे पैदा किया है अत उसके साथ रमण कैसा" गायब हो गयी। उसने गाय का रूप धारण कर लिया। पुरुष बैल बन गया और सहवास कर गौओं को जन्म दिया। स्त्री घोडी बनी, पुरुष घोडा बना। स्त्री गधी बनी, पुरुष गधा बना। इनके सहवास से फटे खुरवाले पशु पैदा हुए। तदुपरान्त स्त्री बकरी बनी, पुरुष बकरा बना, स्त्री भेड बनी और पुरुष दुम्भा बना। इस प्रकार चीटी से लेकर सभी प्रकार के नर और मादा पैदा हुए।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (2 2 9 1) के अनुसार– "प्रारम्भ मे कुछ भी नही था। न आकाश था, न पृथ्वी और न वायु। ब्रह्म ने उत्पत्ति की इच्छा प्रकट की और एक शक्ति का जन्म हुआ। शक्ति से धुआँ, अग्नि, प्रकाश, ज्वाला, किरण वायु, बादल और सागर आदि का जन्म हुआ। इस प्रकार प्रजापति दासहोत का प्रादुर्भाव हुआ। प्रजापति ने विचार किया कि वह क्यो पैदा हुए और रोने लगे। उनके ऑसुओ का जो भाग जल में गिरा पृथ्वी बन गया। जो अश उड़ गया वायु और आकाश बना। प्रजापति ने तपस्या की और अपने उदर से असुरो को जन्म दिया। इससे सर्वत्र अधकार व्याप्त हो गया। उन्हे सृजन की पुन इच्छा हुई अत योनि से जीवो को उत्पन्न किया। उन्होने प्रजा के लिये काष्ठ–भाण्ड में दूध निकाला और अपने शरीर का अन्त कर डाला। इससे चॉदनी की उत्पत्ति हुई। सृजन की पुनरेच्छा पर उन्होने हथेलियो से ऋतुओ को जन्म दिया। इनके लिये रजत–पात्र मे दूध निकाला और अपने शरीर का अन्त कर दिया। इससे सध्या की उत्पत्ति हुई। बाद मे अपने मुख से देवताओ की रचना की। उनके लिये सोने के पात्र मे दूध निकाला और अपने तन का अन्त कर दिया। इससे दिन की रचना हुई। शून्य से आत्मा (मस्तिष्क या मानस) का सृजन किया। मानस से प्रजापति की और प्रजापति से विश्वोत्पत्ति हुई।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण (2 3.8 1) प्रजापति ने सृष्टि–सृजन की इच्छा से तपस्या की। श्वांस के जीवन्त होने पर उसने असुरो, पितृस, मानव और देवगण पैदा किये। इन चारों में जल वायु के समान है।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण (3 2 3 9) · शूद्र शून्य से पैदा हुआ।

तैत्तिरेय आरण्यक (1.12 3 1) में उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है "सर्वत्र

जल ही जल था। कमल पर प्रजापति की उत्पत्ति हुई। प्रजापति के मन मे सृजन की इच्छा हुई। उन्होने तपस्या की और तपश्चर्या से शरीर धारण किया। उनके शरीर के मॉस से अरुण, केतु और वातरसन ऋषियो का जन्म हुआ। नाखूनो से वैखानस और बालो से बलखिल्य पैदा हुए। रक्त ने जल के मध्य विचरण करते हुए कच्छप का स्वरूप ग्रहण किया। प्रजापति ने कच्छप से कहा– "तुम मेरे मॉस और चर्म से जन्मे हो।" कच्छप ने कहा– "नही, मै तो पहले भी था।" तब सहस्र मुख, सहस्र क्षेत्र और सहस्र पैरो वाले पुरुष का जन्म हुआ। प्रजापति ने कहा– "आप मुझ से पहले पैदा हुए है अत आप सृष्टि की रचना करे। "पुरुष ने अजुलि मे जल लेकर पूर्व की ओर फेका और कहा– "तुम सूर्य बन जाओ।" उस दिशा से सूर्य पैदा हुआ और वह पूर्व दिशा कहलाई। तत्पश्चात अरुण केतु ने जल को मध्य मे रखकर पुषान को जन्म दिया। अरुण केतु ने दक्षिण दिशा से दिशा ओर अग्नि को पैदा किया। जल को ऊपर रखकर उसने देव, मानव, पितृस, गन्धर्व और अप्सराओ की रचना की। ऊपर से गिरी जल की बूँदो से असुर, राक्षस और पिशाच पैदा हुए। सक्षेप में जल से स्वयम्भू ब्रह्मा प्रजापति और प्रजापति से समस्त सृष्टि की उत्पत्ति हुई।"

महाभारत के वनपर्व में सृष्टि का मूल मनु को बताया गया है :

"वैवस्वत मनु के पुत्र मनु, प्रजापति के समान तेजस्वी ऋषि थे। उन्होने जल के मध्य एक पॉव पर खडे हो, ऊपर हाथ उठाकर, सिर झुकाकर निरन्तर दस हजार वर्ष तक तपस्या की। चिरणी नदी के तट पर एक मछली उनके निकट आई और बोली – "प्रभो, बडी मछलियो से रक्षा करो, मै इसका प्रतिकार करूगी।" दयार्द्र मनु ने मछली को जल से निकाल कर एक पात्र में रख लिया। आकार बढने पर वे उसे क्रमश पोखर और गंगा मे ले गये। लेकिन मछली का आकार बढता ही रहा। मनु उसे सागर के जल मे छोडने गये। समुद्र के जल का स्पर्श होते ही मत्स्य ने मानव की भाषा में मनु से कहा– "आपने मेरी हर तरह रक्षा की है। अस्तु, मैं आपको बताना चाहती हूँ कि समस्त सृष्टि पर सकट छा रहा है। निकट भविष्य में सभी चर–अचर जीव–पदार्थो का अन्त होने वाला है। आप शीघ्र एक मजबूत नाव बनाकर सप्तर्षियो के साथ सभी प्रकार के बीज लेकर सागर–तट पर आकर मेरी प्रतीक्षा करे। आप मुझको मेरे सींग से पहचान लेंगे। जाइये और जल्दी कीजिये।" इतना कहकर मत्स्य जल में विलीन हो गया। मनु लौटे और शीघ्र ही एक सुन्दर और मजबूत जल पोत मे सप्तर्षियो और समस्त बीज–पदार्थो के साथ सागर के किनारे जा पहुँचे। मत्स्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। मनु ने तीव्रता के साथ जलपोत की रस्सी मत्स्य के सीग से बांध दी। मत्स्य त्वरा गति से गरजते, उमड़ते समुद्र की लहरों पर नाव को खीचता चल दिया। वायु और आकाश के अतिरिक्त सर्वत्र जल ही जल था और उस जल मे सप्तर्षियो सहित मनु और मत्स्य थे। अनेक वर्षो के अनथक प्रयास से

मत्स्य उनको हिमवत पर्वत की उच्चतम चोटी तक ले आया और ऋषियो से नाव को आज के नौ बन्धन शिखर से बॉधने को कहा– नाव के रुकने पर मित्र मत्स्य न ऋषियों का सम्बोधित करते हुए कहा– "मै ब्रह्म प्रजापति हूॅ। तुम्हे जल से उबार लाया हूॅ। अब मुन सभी जीवो, पदार्थो, देवजनो, असुरो, मानवो और चर–अचर पदार्थो की रचना करेगे।" यह कहकर मत्स्य अन्तर्ध्यान हो गया। मनु ने तपोबल से अन्तर्दृष्टि प्राप्त की और सृजन का कार्य प्रारम्भ किया।"

महाभारत के आदि पर्व मे सृजन–कथा एकदम ही भिन्न है

"वैशम्पायन ने कहा– मै स्वयम्भू प्रजापति द्वारा देवताओ और अन्य जीव–पदार्थो के सृजन और विनाश की कथा सुनाता हूॅ। ब्रह्मा के मारीची, अत्रि अगिरा, पुलत्सम, पुलह और कृतु छ पुत्र हुए। मारीची के पुत्र कश्यप से सभी जीव पैदा हुए। दक्ष प्रजापति की अदिति, दिति, दनु, कला, दनयु, सिमुक, क्रोधा, पृथा विश्वा, विनता, कपिला, मुनी और कद्रु तेरह कन्याये थी। इनके असख्य पुत्र और पौत्र हुए।

ब्रह्मा के सीधे हाथ के अगूठे से महर्षि दक्ष और बाये अगूठे से उनकी पत्नी पेदा हुई। महर्षि को पत्नी से पचास कन्या रत्न प्राप्त हुए। इनमे से दस धर्म को सत्ताईस इन्दु (सोम) को और तेरह कश्यम को प्राप्त हुई। पितामह प्रजापति के उत्तराधिकारी मनु उसके (यह स्पष्ट नही किया गया कि किस के) पुत्र थे। मनु के पुत्र आठ बसु थे। ब्रह्मा के दक्षिण वक्ष से धर्म ने जन्म ग्रहण किया। धर्म के तीन पुत्र हुए सोम, काम और हर्ष। . भृगु–पुत्र च्यवन की पत्नी मनु की पुत्री आरुशि थी। ब्रह्मा के दो अन्य पुत्र धातृ और विधातृ मनु के साथी थे। कमलवासिनी परमसुन्दरी लक्ष्मी उनकी बहन थी। भूख मे जीवो द्वारा एक–दूसरे को आहार बना लेने के कारण अधर्म का जन्म हुआ। निऋृति उसकी पत्नी थी। निऋति के नाम पर ही राक्षस नैऋत कहलाये। निऋति ने तीन दुष्कर्मी पुत्रो भय, महाभय और मृत्यु को जन्म दिया। मृत्यु के पत्नी या पुत्र नहीं थे क्योकि वह तो स्वय ही सबका अन्त करने वाला था।

प्राचेतस के दस ऋषि पुत्रो से दक्षप्राचेतस का जन्म हुआ और दक्ष से समस्त जीवो का। विरणी से सहवास करने पर दक्ष को अपने समान एक सहस्र पुत्र प्राप्त हुए। देवर्षि नारद ने उनको मुक्ति, साख्य का उपदेश दिया। सन्तति के इच्छुक दक्ष प्रजापति ने पचास कन्याओ को जन्म दिया। इनमे से दस धर्म को, तेरह कश्यप को और सत्ताईस इन्दु (सोम) को मिली। मारीची–पुत्र कश्यप ने अपनी तेरह पत्नियां मे दक्षयानी से इन्द्र, आदित्य और वैवस्वत को उत्पन्न किया। वैवस्वत के पुत्र यम वैवस्वत हुए। मार्तण्ड (सूर्य, वैवस्वत) से मनु को जन्म हुआ। मनु ने ब्राह्मण

ओर क्षत्रिय पैदा हुए। ब्राह्मण वेद–वेदागो के ज्ञाता हुए। मनु के दस पुत्र वेण, धृष्णु नरिश्यान्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, करुण, शर्याति, इला, प्रणादृ ओर नाभागारिष्ट हुए। मनु क पचास पुत्र आर भी थे जो सदैव आपस में लडते–झगडते रहते थे। बाद मे इला के पुत्र पुरुरवा हुए।"

5

रामायण के द्वितीय काण्ड मे सृष्टि–रचना का वर्णन इस प्रकार दिया गया है

'वशिष्ठ ने राम को वताया – "विश्व के विनाश और पुनर्रचना के मूल को जाबाली भी जानती है। तदपि विश्वोत्पत्ति के सम्बन्ध में आप मुझसे सुने। प्रारम्भ मे सर्वत्र जल ही जल था। जल से पृथ्वी बनी। तदुपरान्त आराध्यो के साथ स्वयभू ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होने पृथ्वी को ऊपर उठाया और अपने सन्त पुत्रों के साथ विश्व–रचना की। ब्रह्मा से मारीचि ओर मारीचि से कश्यप का जन्म हुआ। कश्यप के पुत्र वैवस्वत से मनु का जन्न हुआ। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हुए। इक्ष्वाकु अयोध्या के पहले राजा थे।"

विश्वोत्पत्ति की एक अन्य कथा बीसवे काण्ड मे है'

"राम के शब्द सुनकर जटायु ने अपनी, अपनी जाति और समस्त जीव–पदार्थो की उत्पत्ति बताई– "सुनो मैं प्रजापतियों के आविर्भाव का वृत्तान्त सुनाता हूँ। कर्दम प्रथम प्रजापति थे। उनके बाद निकृत, शेष समसाय, बाहुपुत्र स्थाणु, मारीचि, अत्रि, कृतु, पुलत्स्य अगिरा, प्राचेतस, पुलहु, दक्ष, वैवस्वत ओर अरिष्टनेमि हुए। अन्तिम प्रजापति यशस्वी कश्यप हुए। दक्ष प्रजापति की साठ पुत्रियाँ थीं। कश्यप ने अदिति, दिति, दानु, कलका, ताम्र, क्रोधवासा, मनु, और अबला नामक आठ कन्याओ से विवाह किया और त्रिभुवन की वृद्धि के लिये अपने समान पुत्रो के जन्म की याचना की। अदिति, दिति दान और कलका के अतिरिक्त सबने असहमति प्रकट की। अदिति से तेतीस देवता, आदित्य, वसु, रूद्र और दो अश्विनी कुमार पैदा हुए। कश्यप की पत्नी मनु ने अपने मुख से ब्राह्मण, वक्ष से क्षत्रिय और जंघाओ से वैश्य और पैरो से शूद्रों को जन्म दिया। ऐसा वेद (ऋग्वेद) में बताया गया है।

अनला से वनस्पति और फल पैदा हुए।"

6

अब पुराणों को देखते है। विष्णु पुराण में लिखा है

"आदि मे हिरण्य गर्भ ब्रह्मा थे। उनके दाँये अंगूठे से दक्ष प्रजापति का जन्म

हुआ। दक्ष की एक पुत्री थी अदिति। अदिति ने वैवस्वत को जन्म दिया। वैवस्वत से मनु हुए। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु, नृग, धीष्ट, शर्याति, नरिश्यान्त, प्राशु, नाभागानेदिष्ट और प्रशाधृ हुए। पुत्रोत्पत्ति की कामना से मनु ने मैत्र और वरुण के निमित्त यज्ञ किया। किन्तु यज्ञ पुरोहित की त्रुटि से इला नामक कन्या उत्पन्न हुई। मैत्र और वरूण की कृपा से इला मनु के पुत्र सुदयुम्न के रूप में आ गई। कालान्तर मे वह ईश्वर (महादेव) के कोप से पुन स्त्री बनी और सोम–पुत्र बुध के आश्रम मे रहने लगी। बुध उस पर आसक्त हुआ और उसके साथ सहवास कर पुरूरवा को जन्म दिया। ऋषियो के अनुरोध पर यक्ष–देवता ने इला को फिर से सुदयुम्न बना दिया।

विष्णु पुराण मे मनु के पुत्रो का विवरण निम्न प्रकार हे

अ गुरु की गाय के वध क कारण प्रशाधृ शूद्र हो गया।

ब करूष से क्षत्रिय पैदा हुए।

स नाभाग–पुत्र देदिष्ट वैश्य हुआ।

यह सूर्य वंश की कहानी हे। विष्णु पुराण मे एक अन्य सामानातर कथा भी मिलती है जिसके अनुसार चन्द्र वश का उदय अत्रि से बताया जाता हे –

"अत्रि ब्रह्मा के पुत्र और सोम के पिता थे। ब्रह्मा ने सोम (चन्द्रमा) को वनस्पति, ब्राह्मण और तारागण का साम्राज्य सौपा। राजसूय यज्ञ के उपरान्त सोम ने गर्वान्वित हो देव–पुरोहित बृहस्पति की पत्नी तारा का हरण कर लिया। ब्रह्मा ऋषिगण और देवताओ के समझाने पर भी वह उसे लौटाने को सहमत न हुआ। उसानस ने सोम का पक्ष लिया और अंगिरा के शिष्य रूद्र ने बृहस्पति का। देवो और दैत्यो की सहायता से दोनो पक्षो मे भीषण युद्ध हुआ। ब्रह्मा ने मध्यस्थता की और सोम को तारा को बृहस्पति को लौटाने को बाध्य किया। तारा लोटाई गई लेकिन वह तब तक गर्भ धारण कर चुकी थी। उसने बुध को जन्म दिया। पूछताछ करने पर उसने सोम को बुध का पिता स्वीकार किया। मनु–पुत्री इला को इसी बुध से पुरूरवा नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। पुरूरवा के छ पुत्र हुए जिनमे आयुस ज्येष्ठ थे। आयुस के पॉच पुत्र नहुष, क्षात्रवृद्ध रम्भा, राजी और अनेनस हुए। क्षात्रवृद्ध के पुत्र समाहोतृ, समाहोतृ के कास, लेस और ग्रीत्समद तीन पुत्र हुए। ग्रीतसमद के पुत्र चातुवर्ण के शिल्पी शोनक हुए। कास के पुत्र काशीराज हुए। उनके पुत्र दीर्घत्त्मा और दीमुर्घत्तमा के पुत्र धन्वन्तरि हुए।"

विश्वोत्पत्ति की इन कथाओं की तुलना द्वितीय अध्याय में चर्चित वर्णन–विवरण से करने पर निम्नाकित दो मत स्पष्ट होते हैं :–

अ एक वृतान्त सासारिक है और दूसरा नैसर्गिक ।

ब एक कहता है कि मनु मनुष्य थे और उन्से सभी प्राणी पैदा हुए और दूसरा देव ब्रह्मा या प्रजापति द्वारा सृष्टि–रचना मानता है।

स एक ऐतिहासिक सत्य है और दूसरा दैविक।

द एक मे प्रलय का वर्णन है किन्तु दूसरा इस विषय मे मौन है।

इ एक का लक्ष्य चातुवर्ण का वर्णन है तो दूसरे का लक्ष्य समाज के आदि की व्याख्या है।

ये आधारभूत विभिन्नताये हैं विशेषकर चातुर्वण्य के सम्बन्ध मे। सांसारिक मत चातुर्वण्य को दैवीय मानता है जबकि नैसर्गिक मत इसके प्रतिकूल है। यह सत्य है कि रामायण और पुराणो मे इन दो भिन्न विचारधाराओ को मिलाकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मनु से ही चातुर्वण्थीय व्यवस्था का जन्म हुआ। यह प्रयास समझबूझ कर किया गया है और पूर्व प्रतिपादित मत पर आधारित है। इस प्रयास के उपरान्त भी दोनो मत अलग–अलग स्पष्ट हैं। इसमे हमारे समक्ष दो चातुर्वण्य.

1 "पुरुष" कृत

2 मनु के पुत्रो मे विकसित

स्पष्ट होते है। खेद का विषय है कि शोधकर्ताओ का ब्राह्मण साहित्य में वर्णित इन दो परस्पर विरोधी विचार–मतो पर ध्यान नही गया। फिर भी इनके अस्तित्व और वास्तविकता के महत्व की अवहेलना नही की जा सकती। इन दो विरोधी विचार–मतो की भिन्नता का अर्थ है दो भिन्न आर्य जन श्रेणियॉ–एक चातुर्वण्य को मानती थी और दूसरी इस व्यवस्था से विमुख थी। कालान्तर मे दोनो मिलकर एक हो गयीं।

7

तीसरा साक्ष्य सर हरबर्ट रिस्ले द्वारा भारतवासियों का वर्ष 1901 में किया गया सर्वेक्षण है। इस के अनुसार भारतीय आर्य द्रविड, मगोल और स्काइथियन नामक चार जातियो के मिश्रण हैं। डॉ० गुहा ने इस का परीक्षण सन् 1936 में किया। डॉ० गुहा के अनुसार भारतीय लम्बे सिर वाली और छोटे सिर वाली दो जातियो के मिश्रण हैं। लम्बे सिर वाली जाति देश में मध्यवर्ती भाग तथा छोटे सिरवाली जाति सीमावर्ती क्षेत्रो मे निवास करती थी। इस मत की पुष्टि भारत के विभिन्न भागो से प्राप्त मानव–खोपडियाँ करती हैं। डॉ० गुहा कहते है .

... ...ईसा से चार करोड़ वर्ष पहले भारत के उत्तर–पश्चिम में लम्बे

सिर और लम्बी नाक वाली जाति का अधिकार था। इसके साथ ही लम्बोत्तरे चेहरे तथा चौडी नाक वाली एक अन्य बलिष्ठ मानव जाति के अस्तित्व का भी पता चलता है।"

हडप्पा में मिली मानव–खोपडियो से एक तीसरी चौडे सिर की मानव–जाति के अस्तित्व के साक्ष्य मिले है।

सक्षेप मे भारतीय लम्बोतरे सिरवाली जाति "मैडिटेरियन" और छोटे सिर वाली जाति "अल्पाइन" के वशज है।

मेडिटेरियन जाति के विषय में कहा जाता है कि यह योरोप से भारत मे आई और आर्य भाषा–भाषी थी। इनके स्थानीयकरण से यह स्पष्ट हो जाता है। कि यह निश्चय ही अल्पाइन जाति के पश्चात् भारत मे आई होगी।

अल्पाइन जाति के सम्बन्ध मे तथ्य एकत्रित करना शेष है। प्रथम तो यह कि अल्पाइन जाति का मूल निवास कहॉ था और द्वितीय यह कि वह किस भाषा का प्रयोग करती थी। प्रो० रिप्ले के अनुसार यह स्थान एशिया मे हिमालय के आस–पास ही कही था

" जब हम लम्बे सिर की जाति के अभ्युदय की खोज में बढते है तो हमारी दृष्टि बरबस की पूर्व की ओर मुड जाती है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य हमे भारतीय मूल के स्रोत का इंगित इस दिशा में करता है, पश्चिम की ओर नहीं। इसका कारण यह है कि अटलाटिक के तटीय क्षेत्रो तक पहुँचते–पहुँचते लम्बे सिर की जाति के चिन्ह् तक मिट जाते हैं। और अल्पाइन जाति? सिर की बनावट, बालो के रंग और शारीरिक गठन के रूप मे यह अटलाटिक क्षेत्रो मे बहुलता से मिलती है। केवल अफ्रीकी नीग्रो जाति के रूप में लम्बे सिर की जाति के दर्शन हमे होते है। इन तथ्यों के आधार पर अल्पाइन जाति का मूलस्थान पूर्व मे और मेडिटेरियन जाति का मूल प्रदेश दक्षिण में सिद्ध होता है।

प्राय इस बात पर मतैक्य नहीं है कि योरूप मे आर्य भाषा का प्रचलन नौर्डिक्स। (इण्डो–जर्मन) अथवा अल्पाइन जाति द्वारा किया गया। किन्तु सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि अल्पाइन लोगो की भाषा "आर्य" थी। अत अल्पाइन आर्य थे।

8

उपरोक्त तथ्य ऋग्वेद के इस मत की पुष्टि करते है कि भारत मे आर्यो की दो जन–श्रेणियॉ थीं न कि एक। वहॉ इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि ऋग्वेद के प्रमाण–साक्ष्य और पाश्चात्य मत मे विरोधाभास है। क्योकि

सिद्धान्त एक आर्य जाति की बात कहता है जबकि ऋग्वेद मे दो भिन्न आर्य जातियो का वर्णन है। ऋग्वेद इस विषय मे सर्वोतम साक्ष्य है। अस्तु इसके प्रतिकूल किसी भी मत को स्वीकार नही किया जा सकता।

यह विरोधाभास 'अतिक्रमण' और 'विजय' के सम्बन्ध मे भी मत भेद को जन्म देता है। हम नहीं जानते कि आर्यो की किस जाति का आगमन भारत मे पहले हुआ। किन्तु, यदि हिमालय के निकटस्थ क्षेत्रो के निवास करने वाली अल्पाइन जाति पहले आयी थी तो आर्यो के बाहर से आने, अतिक्रमण करने का सिद्धान्त ही मिथ्या सिद्ध हो जाता है। जहॉ तक भारत के मूल निवासियो को विजित करने का सम्बन्ध है यह प्रश्न इतना सरल नही है जितना पाश्चात्य विद्वान समझ बैठे है। प्राय यह सभावना व्यक्त की जाती है कि दास और दस्यु भारत के मूल निवासी थे ओर आर्यो से भिन्न जाति थे। आर्यो ने उन्हे पराजित किया। यह तो कल्पना का एक पक्ष मात्र है। यह भी तो सभव है कि आर्यो ने आर्यो को ही विजित किया हो। अत इस सदर्भ में किस आर्य जाति ने किस आर्य जाति को विजित किया, विवेचना आवश्यक है।

पाश्चात्य सिद्धान्त–मत, जैसा कि स्पष्ट है, तथ्यों के अपर्याप्त अन्वेषण से उतावली मे निकाले गये परिणाम–निष्कर्ष पर आधारित है। प्राचीन आर्यो की अनुमानित मान्यताओ एव उनकी तथाकथित वशज भारतीय–जर्मन जातियो की मान्यताओ–धारणाओ मे समानता–एकरूपता के पूर्वस्थापित मत के आधार पर इस को सत्य मान लिया गया है। यह सिद्धान्त–मत केवल कुछ चुने हुए तथ्यो को अन्तिम साक्ष्य मान कर स्थापित किया गया है। वास्तव मे गंभीर चिन्तको–शोधकर्ताओ के लिये असुरक्षित आधार पर प्रतिपादित यह पाश्चात्य सिद्धान्त दीर्घकाल तक मान्य रहा है, यह असाधारण है। इस अध्याय मे चर्चित नवीन तथ्य–साक्ष्यप्रमाणो के समक्ष तो यह टिक ही नही सकती। अत अमान्य है।

6. शूद्र और दास

यह तो आप पढ ही चुके हैं कि आर्यो के विषय में पाश्चात्य विद्वानो द्वारा प्रतिपादित मत निराधार ही नहीं अविश्वसनीय भी है, अत' अमान्य है। अब हमारे समक्ष विचारणीय प्रश्न यह है कि शूद्र कौन है? श्री ए० सी० दास कहते हैं

"दास और दस्यु या तो असभ्य जगली जातियॉ थीं या अवैदिक आर्य। उनमे से जो पराजित होने पर बन्दी बना लिये गये, कालान्तर मे सभवत वह शूद्र कहलाये।"

मत के समर्थक और वैदिक शोधकर्ता श्री कणे के अनुसार

"दास का अर्थ है गुलाम। ऋग्वेद मे चर्चित आर्यो की विरोधी "दास" जातियो को पराजित कर उन्हे गुलाम बना लिया गया और दास–वृत्ति मे नियुक्त किया गया। मनुस्मृति (VIII 413) मे ईश्वर ने शूद्र को "ब्राह्मण की सेवा के लिये उत्पन्न किया" बताया गया है। तैत्तिरेय ब्राह्मण, तैत्तिरेय सहिता तथा अन्य ब्राह्मणो मे शूद्र की लगभग वही स्थिति बताई गयी है जैसी कि स्मृतियो मे मिलती हैं। अस्तु यह तर्कसगत प्रतीत होता है कि आर्यो द्वारा विजित "दास" और "दस्यु" शनै शनै शूद्रो मे परिणित हो गये।"

उपरोक्त मत से निम्नाकित निष्कर्ष निकले

अ दास और दस्यु एवं शूद्र एक हैं,

ब शूद्र भारत के मूल निवासी थे और अनार्य थे, तथा

द शूद्र असभ्य और जंगली थे।

दास और दस्यु एक है, इसमें सदेह है। ऋग्वेद मे कही–कही ऐसे प्रसग हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि दास और दस्यु एक है और उनमे कोई अन्तर नही है। शम्बर, शरना, वृत्र और पिपु दास और दस्यु कहे गये है। दासो और दस्युओ को इन्द्र और देवजनो विशेषकर अश्विनीकुमारो का शत्रु बताया गया है। इतना ही नहीं दासो और दस्युओं के नगरो को इन्द्र और अन्य देवताओ द्वारा ध्वस किये जाने का वर्णन भी मिलता है।

उक्त प्रसंग दासो और दस्युओं को एक जाति बतलाते है। तदपि कुछ अन्य प्रसग भी हैं जिनसे इन दोनो का अस्तित्व अलग–अलग स्पष्ट होता है। ऋग्वेद में दासो का 54 स्थानो पर और दस्युओ का 78 स्थानो पर अलग–अलग वर्णन मिलता हैं। यदि दोनो एक होते तो क्या वे अलग–अलग चित्रित किये जाते?

उपरोक्त परिपेक्ष्य मे यह तर्क निराधार ठहरता है कि शूद्र ही दास और दस्यु हैं।

शूद्रों, दासो और दस्युओं को एक जाति सिद्ध करने के निमित्त "शूद्र" शब्द का आश्रय लिया गया है। "शूद्र" शब्द की उत्पत्ति "शूक्" (दु ख) तथा "द्र" (वेधित) से बताई जाती है। इसका अर्थ हुआ "दु ख से वेधित"। वेदान्त सूत्र (1 3 34) मे दुख से वेधित जनश्रुति के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। विष्णु पुराण भी यही शब्दार्थ प्रस्तुत करता है।

यह शब्दार्थ कितना सत्य है? यह कहना भूल होगी कि शूद्र नाम नहीं वरन् शब्दार्थ है। ब्राह्मण साहित्यकार शब्दों के विच्छेद या सधि से अर्थ स्पष्ट करने मे निष्णात रहे हैं उपनिषदों में व्यक्त शब्द विन्यास पर टिप्पणी करते हुए

मैक्समूलर कहते है –

'ये व्याख्यायें इतनी दक्षतापूर्ण हैं कि ब्राह्मण साहित्यकारो का शब्द–चातुर्य वास्तविक अर्थ को प्रकट नहीं कर पाता। हम यह तो भली भांति जानते ही हैं कि अल्पशिक्षित व्यक्ति शब्दार्थ पर आधारित किसी भी सिद्धान्त को स्वीकार कर लेते हैं। आरण्यको के अनेको सिद्धान्त शब्दार्थो पर आधारित है जिनका सत्यार्थ शब्दार्थ की जादूगरी म स्पष्ट नही हो पाता।"

अत वेदान्त सूत्र की यह चेतावनी भी कि "शूद्र" "दुख से वेधित व्यक्ति" के लिये प्रयुक्त शब्द मात्र है, अन्यथा नही, स्वीकारणीय नही है।

अब हम इस पक्ष मे साक्ष्य प्रस्तुत करेगे कि शूद्र दुखी व्यक्ति न होकर एक जाति का नाम था।

इतिहासकारो के अनुसार सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत मे अनेक गणतत्र, स्वतत्र एव स्वायत्तशासी राज्यो का अस्तित्व था। ये राज्य भिन्न–भिन्न जातियो के थे ओर उसी जाति विशेष के नाम से पुकारे जाते थे। इन्ही मे से एक जाति सोदरी थी जिसे सिकन्दर के हाथों पराजय उठानी पडी। लेसन ने इस जाति को शूद्र बताया है। पतजलि अपने महाभाषय (1.2.3) में शूद्रो का सम्बन्ध आभीरस से जोडते हैं। महाभारत (सभा पर्व, अध्याय 22) मे शूद्रो के गणतत्र का वर्णन है। वायुपुराण मार्कण्डेय पुराण और ब्रह्मपुराण शूद्रो का अनेक जातियो मे एक जाति बताते हुए उनका निवास विध्याचल के पश्चिम मे बताते है।

2

दूसरे सिद्धान्त के दो भाग है– प्रथम क्या दास और दस्यु शब्दो का प्रयोग उनकी अनार्यजातियो का बोधक है? तथा द्वितीय, क्या वे भारत के मूल निवासी थे? जब तक इन दोनो प्रश्नों का उत्तर हॉ मे न मिले, दास और दस्युओ को शूद्र नही माना जा सकता।

ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिलता जो यह सिद्ध कर सके कि दस्यु अनार्य जाति थे। इसके विपरीत, प्रत्यक्ष प्रमाण है कि "दस्यु" शब्द का प्रयोग 'आर्य' धर्म को न मानने वालो के लिये किया जाता था। इस सदर्भ में महाभारत (शान्ति पर्व, अध्याय 65 श्लोक 23) को देखें :–

दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः।
लिगान्तरे वर्तमाना आश्रमेषुतुर्ष्वपि।।

(सभी वर्गो और आश्रमों में दस्युओं का अस्तितव है।)

दस्यु शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, यह कहना कठिन है। इतिहास गवाह है कि भारतीय आर्य और भारतीय ईरानी सदा सघर्ष मे रत रहे है। अस्तु, यह सभव है कि भारतीय आर्यो ने अपने परम शत्रु भारतीय ईरानियो का घृणावश यह नाम रखा होगा। यदि इस मत को स्वीकार कर लिया जाए तो दस्युओं को भारत का मूल निवासी नही माना जा सकता।

"दास" शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जेण्ड अवेस्ता के शब्द आजी दाहक पर विचार किया जाए। आजी दाहक एक सयुक्त नाम है। आजी का अर्थ है अजगर और दाहाक का अर्थ है काटना या हानि पहुँचाना। अत अर्थ हुआ "काटने वाला अजगर" भारतीय ईरानियो की परम्परा के अनुसार यह जोहक का दूसरा नाम है। जोहक का वर्णन याष्ट साहित्य मे अनेक बार आता है। आजी दाहक बेबीलोन मे रहता था जहाँ उसने एक दुर्ग और वेधशाला बनवा रखी थी। दैत्य अग्रमैन्यू ने शक्तिशाली दैत्य अजी दाह की उत्पत्ति धर्म के ध्वस के लिये की थी। इसने भारतीय ईरानियो के विख्यात सम्राट यिमा को युद्ध मे परास्त कर मार डाला था।

क्या जेण्डा अवेस्ता का दाहक और ऋग्वेद का दास एक ही है। यदि नामो की एकरूपता की समानता मान ली जाय तो दोनो एक ही व्यक्ति के है। जेण्डा अवेस्ता के दाह का "द" ऋग्वेद के दास के "स" मे स्वाभाविक रूप मे परिणित हो जाता हैं। ऋग्वेद के दास और जेण्डा अवेस्ता के दाह मे समानता और एकरूपता सयोगमात्र ही नही है। कुछ साक्ष्य भी है जो इसकी सत्यता को प्रमाणित करते हैं। उदाहरणार्थ, यासना हा 9 मे आजी का कायिक वर्णन ऋग्वेद (10 99.6) के दास के समान है। दास के तीन सिर और छ नेत्र बताये गये है। अस्तु, दास और दाहक को एक मान लेने पर यह सिद्ध होता है कि दास भारतीय मूल नहीं थे।

क्या वे असभ्य थे? दास और दस्यु सभ्य थे और आर्यो से अधिक शक्तिशाली थे। ऋग्वेद इसका स्वय साक्ष्य है। श्री आयगर कहते हैं –

"दस्यु नगरो में रहते थे (ऋग्वेद 1 53 8) तथा उनके पास अश्वो और रथो के रूप में प्रचुर द्रव्य था (ऋग्वेद 8 40 63, 11 15 4) जो सौ द्वारो के नगरो (ऋग्वेद 10.99 3) मे रखी जाती थी। इन्द्र ने यह सब छीन कर अपने भक्त आर्यो को दे दिया। (ऋग्वेद 1 176 4)। दस्यु धनवान थे (ऋग्वेद 1 33 4) और उनकी सम्पदा मैदानो से पर्वत तक फैली पडी थी (10 99 6)। वे अपने वस्त्र स्वर्ण–रत्नो से सजाते थे (ऋग्वेद 1 33.8)। उनके अनेक दुर्ग थे (ऋग्वेद 1 33 13, 8 17 14)। दैत्य, दस्यु और आर्य देव स्वर्ण, रजत, और लोहे के हर्म्यों मे निवास करते थे (ऋ० 11 20 8, अथर्ववेद 5.28 9)। इन्द्र ने अपने भक्त दिवोदास की अभ्यर्थना पर दस्युओं के एक सौ पत्थर के हर्म्यो को जीत लिया (ऋग्वेद 4 30.20)। आर्यों की

पूजा से प्रसन्न होकर अग्नि ने दस्युओ के नगरो को जलाकर भस्म कर डाला (ऋग्वेद 7 5 3)। पत्थर के कारागारों, जिनमें आर्यो के अपहृत पशु रखे जाते थे, वृहस्पति ने ध्वस कर डाले (ऋ० 67.3)। दस्यु आर्यो के समान ही युद्ध में रथों और आग्नेय आयुधो का प्रयोग करते थे। (ऋ० 8 24 27, 3 50 5, 2 15 4)।

दास और दस्यु शूद्रो के समान थे, यह एक काल्पनिक अनुमान मात्र है' सम्भ्रान्त गवेषको द्वारा प्रतिपादित होने के कारण इस मत को मान्यता तो मिल गई ह लेकिन इसमे प्रामाणिकता का कण मात्र भी नही है। इसके समर्थन मे प्रस्तुत करने के निमित्त कुछ भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। यह तो बताया ही जा चुका है कि ऋग्वेद मे "दास" शब्द 54 बार तथा "दस्यु" शब्द 78 बार आया हे। अनेक स्थानो पर दास ओर दस्यु साथ-साथ आते हैं। "शूद्र" शब्द का उल्लेख मात्र एक बार आता है और वह भी तब जब "दास" या "दस्यु" शब्द का कोई उल्लेख नही है। अस्तु, दासो और दस्युओ को शूद्रो के समान बताना बुद्धिमत्ता नही कही जा सकती। इस सदर्भ मे यह सत्य भी अनदेखा न कर देना चाहिये कि बाद के वैदिक साहित्य मे "दास" और "दस्यु" शब्द पूर्णत लुप्त हो गये है। इसका अर्थ यह हुआ कि "दास" और "दस्यु" कालान्तर मे वैदिक आर्यो का एक अभिन्न अंग बन गये। लेकिन शूद्रो के विषय मे यह नहीं हुआ। पूर्व का वैदिक साहित्य यद्यपि शूद्रो के विषय मे मौन है, किन्तु बाद का वेदिक साहित्य शूद्रो से भरा पड़ा है। इससे यही सिद्ध होता है कि शूद्र, दास और दस्युओ से भिन्न थे।

क्या शूद्र अनार्य थे, इस विषय में कणे महोदय कहते है –

"ब्राह्मणो और धर्म ग्रन्थों के रचना–काल मे आर्य और शूद्र मे स्पष्ट भेद रखा गया है। ताण्डय् ब्राह्मण मे शूद्रो और आर्यो के मध्य युद्ध का वर्णन है। उसका वर्णन कुछ इस प्रकार है कि आर्य जाति ही विजयी हो। यह वर्णन बनावटी है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (1.1 340 41) में कहा गया है कि यदि ब्रह्मचारी भिक्षाटन मे प्राप्त खाद्य सामग्री स्वय न खा सके तो उसे किसी आर्य के समीप रख दे अथवा अपने गुरु के सेवक "दास" दास को दे दे। इसी प्रकार गौतम धर्मसूत्र (10 69) मे शूद्र को अनार्य बताया गया है।

शूद्रो और आर्यो के मध्य अलगाव का सूक्ष्म विवेचन आवश्यक है। "शूद्र अनार्य थे" के पक्ष मे निम्नाकित साक्ष्य देखे –

अथर्ववेद (4 20.4) सहस्र नेत्र देव इस "बूटी" को मेरे दाहिने हाथ पर रखे जिससे में शूद्र और आर्य को समान देखूँ।

कथक सहिता (34 5) शूद्र और आर्य प्रायः त्वचा (त्वचा के रंग) के लिये

झगड़ते है। देवो और दानवो मे युद्ध हुआ और देवों ने दानवो को पराजित कर सूर्य को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार आर्य जाति को विजय मिली। इस विजय के फलस्वरूप आर्यों को यज्ञ का अधिकार प्राप्त हो गया है और शूद्र यज्ञ से 'वंचित हो गये है। सूर्य को प्राप्त करने के कारण आर्य गौराग होंगे।

वाजसेनयी साहेता (23 30–31) - जिस प्रकार हरिण के खेत चर जाने से कृषक प्रसन्न नहीं होता ठीक उसी प्रकार शूद्र से प्रेम करने पर आर्य समृद्ध नहीं हो सकता।

हरिण के खेत चरने से जिस प्रकार कृषक प्रमुदित नही हो सकता ठीक उसी प्रकार जिस आर्य स्त्री का प्रेमी शूद्र हो, उसका पति समृद्ध नहीं हो सकेगा।"

इन पदो के आधार पर यह नही कहा जा सकता कि शूद्र पृथक है और शूद्रो के अनार्य होने का आधार असत्य है। यह मत उतावले पन का परिचायक होगा। कोई भी मत निश्चित करने के पूर्व यह अवश्य ध्यान रखा जाए कि ऋग्वेद मे आर्यो की दो जनश्रेणियों– वैदिक और अवैदिक– का स्पष्ट वर्णन है। अत यह स्वाभाविक है कि आर्यो की एक जनश्रेणी घृणावश दूसरी श्रेणी को पृथक बताये, अस्तु, यह नही माना जा सकता कि शूद्र अनार्य थे। इसके विपरीत शूद्र आर्य थे और भिन्न वर्ग थे। देखे :–

अथर्ववेद (19 32 8)	हे दूर्बा, मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, आर्य और अन्य देखने वाले सभी प्राणियो का प्रिय बना दे।"
(19 62 1)	"मुझे देवो, राजाओं, शूद्रो, आर्यो और अन्य देखने वाले जीवो का प्रिय बना दे।"
वाजसनेयी सहिता (18 48)	"हे अग्नि, मुझे ब्राह्मणो, राजाओ, शूद्रों, और वैश्यो में तेजस्वी बनाओ, मुझे तेज पर तेज दो।"
(15.17)	'हम दोनो (याजक और उसकी पत्नी) ने जानबूझकर जो भी अपराध शूद्रो के साथ गॉव, जंगल और समाज में किया है उसे नष्ट करो।"
(18 48)	"मैं सभी लोगों –•ब्राह्मणो, क्षत्रियो, शूद्रो और आर्यो तथा अपने शत्रुओं को आशीर्वाद देता हूँ। मेरी कामना है कि मैं देवो और दक्षिणा देने वालो का प्रिय मित्र बनूँ तथा शत्रु मेरे अधीन रहें।

इन ऋचाओं से क्या सिद्ध होता है? पहली, ब्राह्मणो और आर्यो मे भिन्नता

बताती है। अतः क्या कहा जा सकता है कि, ब्राह्मण अनार्य है? अन्य चार मे शूद्रो के प्रति प्रेम और शुभकामना व्यक्त की गयी है। यदि शूद्र अनार्य होते तो क्या यह सभव था? अस्तु, यह सिद्ध नहीं हो पता कि शूद्र अनार्य है।"

धर्मसूत्रो ने शूद्रों को अनार्य कहे जाने पर और वाजसनेयी सहिता मे शूद्र स्त्रियो के प्रति अनादर की भावना व्यक्त किये जाने का कोई अर्थ नहीं है। इसका कारण यह है कि धर्मसूत्र तथा अन्य ग्रथ शूद्रो के विरोधियो/शत्रुओ द्वारा रचे गये है तथा उनमे दिया गया साक्ष्य ऋग्वेद के साक्ष्य से भिन्न है।

धर्मसूत्रो मे शूद्र को उपनयन तथा यज्ञोपवीत से वंचित कहा गया है जबकि सस्कार गणपति मे शूद्र को उपनयन का पूर्ण अधिकार बताया गया है।

धर्मसूत्रो के अनुसार शूद्र वेद–पाठ नहीं कर सकता। छान्दोग्य उपनिषद (4 1–2) मे वर्णित कथा के अनुसार शूद्र जनश्रुति ने रैक्व को वेद पढाया था। ऐलुष शूद्र ऋषि थे जिन्होने ऋग्वेद के (दसवे भाग) के अनेक मन्त्रो की रचना की थी।

धर्मसूत्रो मे शूद्र के लिये यज्ञ करना–कराना वर्जित है। पूर्व मीमासा के रचयिता जेमिनी ने एक प्राचीन विद्वान् के मत से सहमति प्रकट करते हुए मत निश्चित किया हे कि शूद्र को यज्ञ का अधिकार है। भारद्वाज श्रौत सूत्र (5 28) में बताया गया है कि शूद्र यज्ञ मे केवल तीन अग्नि जला सकता हे। कात्यायन श्रौत सूत्र (1 4 16) के अनुसार अनेक वैदिक ग्रंथों मे इस प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध है कि शूद्र को यज्ञ का अधिकार है।

धर्मसूत्रों के अनुसार सोम–पान से शूद्र वचित हैं। इसके विपरीत आश्विन की कथा मे शूद्रों को सोम–पान के अधिकार के स्पष्ट साक्ष्य–प्रमाण मिलते है। एक कथा के अनुसार –

"परमसुन्दरी युवा सुकन्या का विवाह अतिवृद्ध ऋषि च्यवन से हुआ था। एक बार सद्यस्नात नग्न सुकन्या पर अश्विनी कुमारो की दृष्टि पड़ी और वे उस पर मोहित हो गये। वे दोनो सुकन्या के पास पहुँचे और कहने लगे– "देवी, तुम्हारे पति अति वृद्ध है ओर किसी भी क्षण शरीर त्याग सकते हैं। तुम युवा हो, सुन्दर हो। उनके लिये तुम अपने जीवन को नष्ट न करो। हम दोनो युवा हैं, सुन्दर हैं– किसी एक को अपना पति चुन लो और ससार के सुख का भोग कर जीवन को सफल बनाओ।" सुकन्या ने उत्तर दिया– "यह असभव है, मै पतिव्रता हूँ।" अश्विनीकुमार हताश न हुए। उन्होने एक प्रयास और किया– "देवी, हम देवताओं के वैध अश्विनी कुमार हैं। यदि तुम हम मे से किसी एक की पत्नी बनना स्वीकार कर लो तो हम तुम्हारे वृद्ध पति को आकर्षक और युवा बना देगे।" सुकन्या ने अश्विनी कुमार की

बात और शर्त च्यवन ऋषि को बतायी और च्यवन ने सुकन्या को उनकी बात मान लेन के लिये प्रेरित किया। शर्त के अनुसार च्यवन को युवा बना दिया गया। कालान्तर मे यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि क्या अश्विनी कुमार सोमपान मे सम्मिलित किये जा सकते है। इन्द्र के मतानुसार अश्विनी शूद्र होने के कारण सोमपान मे शामिल नही किये जा सकते थे। अश्विनी कुमारो की कृपा से प्राप्त युवावस्था के धनी च्यवन ने इस का विरोध किया और इन्द्र को अश्विनी कुमारो को सोमपान मे शामिल करने की सलाह दी। और अश्विनी सोमपान मे शामिल किये गये।"

'शूद्र आर्य है या अनार्य" इसके सदर्भ मे मनुस्मृति के निम्नाकित श्लोकों का साक्ष्य देखे –

"यदि शूद्र स्त्री ब्राह्मण से कन्या को जन्म दे और वह कन्या तथा उसकी सतति उच्चतम जाति से सतान पैदा करती रहे तो सातवीं पीढ़ी मे ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार एक शूद्र ब्राह्मणत्व को और एक ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त होता है। यह नियम क्षत्रिय और वैश्य जातियो की संतति पर भी समान रूप से लागू होता है।

मनुस्मृति का 64वा श्लोक गौतम धर्मसूत्र मे भी मिलता है लेकिन इसकी व्याख्या मे विरोधाभास है। बुहलर कहते है –

" . यदि ब्राह्मण पिता और शूद्र माता की सतान श्रेष्ठ जाति के पुरुष से सतान उत्पन्न करे तो निम्न जाति भी सातवी पीढी मे ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाती है।"

व्याख्या किसी भी प्रकार क्यो न की जाय, सत्य और तथ्य यह है कि एक शूद्र निश्चित परिस्थितियो मे सातवीं पीढी में ब्राह्मण बन सकता था। यदि शूद्र अनार्य होते तो यह सभव न होता।

"शूद्र अनार्य है" मत अर्थशास्त्र के विपरीत हैं। इस संदर्भ मे कौटिल्य का मत अमूल्य है। वह कहते हैं –

"जो जन्मना दास नहीं है और अवयस्क है, किन्तु जन्म से आर्य है, ऐसे शूद्र को बेचने या गिरवी रखने वाले सम्बन्धी को 12 पण का दण्ड दिया जायेगा।

छल से दास के धन का हरण करने अथवा आर्य होने के विशेषाधिकारों से वचित करने का दण्ड एक आर्य का वध करने के दण्ड का आधा होगा।

मुक्ति की धन राशि प्राप्त करने पर दास को मुक्त न करने का दण्ड

12 पण है। बिना कारण दास को बन्दी बनाने का दण्ड भी 12 पण ही होगा। स्वय को दास क रूप में बेचने वाले व्यक्ति की सतान आर्य होगी।

एक दास अपने स्वामी के कार्य को बिना क्षति पहुँचाये, अपने द्वारा उपार्जित धन–सम्पत्ति के साथ–साथ पैतृक सम्पदा का भी अधिकारी होगा।"

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि कौटिल्य ने प्रभावी एवं निश्चित शब्दो म शूद्र को आर्य बताया है।

5

अन्तिम प्रश्न है कि शूद्र गुलाम बना लिये गये। यह असत्य और निरथक है। यह मत निम्नाकित दो कारणों पर आधारित है –

1. ऋग्वेद मे दासो को गुलाम बताया गया है, तथा
2. दास और शूद्र एक या समान हैं।

यह सच है कि ऋग्वेद मे दासो के प्रति सेवक या गुलाम शब्द का उपयोग किया गया है। ऐसा वर्णन केवल पॉच बार है। पॉच से अधिक बार दासो के लिये सेवक या गुलाम शब्द का प्रयोग किया जाता तो क्या इससे यह सिद्ध हो जाता हे कि शूद्र गुलाम बना लिये गये? जब तक यह सिद्ध नही हो जाता कि दास ओर शूद्र एक थे, यह मत न केवल निराधार होगा बल्कि तथ्यो के प्रतिकूल भी होगा।

राजाओ के राज्याभिषेक में शूद्र भी भाग लेते थे। उत्तर वैदिक युग मे प्रजा के प्रतिनिधि, जो रत्नी कहलाते थे, राजा की खोज मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। राजा प्रभुता के चिन्ह "रत्न" इन्हीं रत्नियों से प्राप्त करता था। यहॉ यह ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन रत्नियो मे एक शूद्र अवश्य होता था। राज्यारोहण के पश्चात राजा प्रत्येक रत्नी के निवास पर जाता था और उन्हे विशेष उपहार भेट करता था (Jayasswal , Hindu Polity - Pages 200-201)

नीतिमयूख के रचनाकार नीलकण्ठ ने कालान्तर के एक राज्याभिषेक का वर्णन इस प्रकार किया हैं–

"चार प्रमुख मत्री– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र– नये राजा का अभिषेक करते थे। तदुपरान्त प्रत्येक वर्ग के अग्रणीय जन राजा पर पवित्र जल के छींटे मारते थे। और अन्त मे द्विज आशीर्वचनो का उच्चारण करते थे।" (Jayasswal, Hindu Polity , Pages - 223)

महाभारत के सभा पर्व (अध्याय 33, श्लोक 41–42) के अनुसार पाण्डवो

के ज्येष्ठ युधिष्टिर के राज्याभिषेक मे ब्राह्मणों के साथ शूद्रो को भी आमन्त्रित किया गया था।

प्राचीन काल मे जनपद और पौर नामक दो राजनैतिक सभाये होती थी और शूद्र उनके सदस्य होते थे। इन सभाओ के सदस्य होने के नाते शूद्र को ब्राह्मण तक से विशेष सम्मान प्राप्त होता था,

यह तथ्य मनुस्मृति (VI- 61) तथा विष्णु स्मृति (XXI 64) के अनुरूप है। अन्यथा मनु के इस कथन "ब्राह्मण को शूद्र राजा के राज्य मे नहीं रहना चाहिये" का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। परोक्ष क्यों स्पष्टत: इसका अर्थ यह होता है कि शूद्र भी राजा थे।

महाभारत के शान्तिपर्व मे भीष्म युधिष्ठिर को राजनीति की शिक्षा देते हुए कहते है–

" . बताता हूँ तुम्हे कैसे मन्त्री नियुक्त करने चाहिये। वेदो के ज्ञाता तेजस्वी व्यवहार कुशल स्नातक चार ब्राह्मण, शस्त्र–चालन मे दक्ष बलिष्ठ आठ क्षत्रिय, ऐश्वर्यवान इक्कीस वैश्य, नम्र और चरित्रवान तीन शूद्र, पुराणविद् एक सूत तथा आठ अन्य गौरवशाली श्रेष्ठ व्यक्ति तुम्हारे मंत्री होने चाहिये।"

उपरोक्त से यह सिद्ध होता है कि शूद्र मन्त्री भी होते थे और उनकी सख्या लगभग ब्राह्मणों के समान होती थी।

मैत्रायणी संहिता (IV 2 7 10) तथा पचविश ब्राह्मण (VI 1 11) के साक्ष्य के अनुसार शूद्र धनिक थे।

"शूद्र अनार्य है" प्रश्न के दो पहलू और भी है। यदि हम यह सच मान भी ले कि शूद्र अनार्य थे और आर्यों ने उन्हें दास (गुलाम) बना लिया, तब यह प्रश्न उठता है कि शूद्रो को दास (गुलाम) बनाये जाने का महत्व क्या हो सकता है? महत्व होता यदि आर्य दास–प्रथा से अनभिज्ञ होते। वे इस प्रथा से भली भाति अवगत थे और आर्यो को सेवक या दास बनाने मे उन्हे किसी प्रकार की आपत्ति भी न थी। और यह सत्य ऋग्वेद (VII 86 7, VIII 19 36 तथा VIII 5 6 3 से प्रकट है। यहाँ एक प्रश्न फिर उठता है – यदि आर्य दास प्रथा के पोषक थे तब वे शूद्रों को ही दास (गुलाम) क्यों बनना चाहते है/थे? उन्होने केवल शूद्र दासो (गुलामो) के लिये ही अलग विधि–विधान की रचना क्यो की?

संक्षेप में, हमारे प्रश्न "शूद्र कौन थे और वे चौथा वर्ण कैसे बने" का उत्तर खोजने मे पाश्चात्य मत सहायक सिद्ध नही होता।

7. शूद्र क्षत्रिय है।

हमारे सामने अब यह प्रश्न है कि "शूद्र यदि अनार्य नहीं है तो क्या है। मेरे मतानुसार उत्तर निम्न प्रकार हैं –

1 शद्र आर्य है,

2 शूद्र क्षत्रिय है, तथा

3 शूद्र क्षत्रियो का उत्तम वर्ग है। प्राचीन आर्य समाज मे अनेक तेजस्वी और बलशाली राजा शूद्र थे।

शूद्रो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे यह रोमांचक तथ्य है। अधिकांश विद्वान इस मत का स्वीकार नहीं करेगे। किन्तु इसकी पुष्टि के निमित्त यथेष्ट साक्ष्य उपलब्ध है खेर, मै प्रमाण प्रस्तुत करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ और उसका निर्णय विज्ञ पाठकां के विवेक पर छोडता हूँ।

प्रथम साक्ष्य महाभारत के शान्तिपर्व (अध्याय 60 के श्लोक 38–40) का है

"हमने सुना है कि प्राचीन काल मे पेजवन यामक शूद्र राजा ने अपने यज्ञ मे ऐन्द्राग्नि के आदेशानुसार एक सहस्र पूर्णपात्र दक्षिण दी थी।"

इस उदाहरण से निम्नाकित तीन महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट हात है –

1 पैजवन शूद्र था,

2 शूद्र पैजवन ने यज्ञ किया, और

3 ब्राह्मणो ने पैजवन के निमित्त यज्ञ किया और दक्षिणा प्राप्त की।

यहॉ यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि महाभारत (अठारह पर्वों सहित) की पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है। पर्वो की अलग–अलग पाण्डुलिपियॉ मिलती हैं और उनमे विरोधाभास है। इसके अतिरिक्त आर्यावर्त और दक्षिणपथ के महाभारत भी भिन्न है।

महाभारत के शान्तिपर्व के अध्याय 60 के श्लोक 38 का नौ विभिन्न पाण्डुलिपियो में पाठान्तर इस प्रकार है :–

1 शूद्र पैजवनो नाम

2 शूद्र पैलवनो नाम

3 शूद्र मैलवनो नाम

4 शूद्र यैजवनो नान

5 शूद्रोपि यजने नाम

6 शूद्र पौजलक नाम

7 शूद्धो वैभवनो नाम

8 पुरा वैजवनो नाम

9. पुरा वैजननो नाम

इन नौ पाण्डुलिपियो में सख्या 1, 2, 3, 4 तथा 6 पर वर्णित दाक्षिण भारतीय है और सख्या 7 और 9 की उत्तर भारतीय। इनके अध्ययन से पता चलता है कि –

1 पैजवन के वर्णन में विरोधाभास है .

2 पैजवन के नाम–वर्णन मे भिन्नता है।

3 नौ पाण्डुलिपियों में से छ उसे "शूद्र" कहती हैं, एक "शूद्ध" कहती है, तथा दो ने उसकी जाति का उल्लेख न कर उसके समय का वर्णन करते हुए "पुरा" शब्द का प्रयोग किया है।

4 कोई भी दो पाण्डुलिपिया नाम के सम्बन्ध में एकमत नहीं है।

अस्तु, प्रश्न उठता है कि वास्तविक नाम क्या है? सही नाम पैजवन है। इसकी पुष्टि उत्तर और दक्षिण भारतीय पाण्डुलिपियो मे उल्लेखित पैजवन, पैलवन, यैलवन, यैजनन, वैभवन, वैजवन और वैजनन शब्दों से होती है। पाठान्तर केवल लेखक की मूल कृति को सही न पढ सकने तथा उसको इच्छानुसार मनचाहे ढंग से लिखने के कारण है।

जहॉ तक पैजवन के वर्णन का सम्बन्ध है, उसके नाम मे "शूद्र से पुरा" तक का परिवर्तन मात्र संयोग न होकर जानबूझकर किया गया मालूम होता है। इसकी पृष्ठभूमि मे क्या कारण थे, यह कहना कठिन है। फिर भी इससे दो बाते साफ हैं:–

1 यह परिवर्तन स्वाभाविक जैसा है, तथा

2 यह शूद्र पैजवन के विपरीत नहीं जाता।

उपरोक्त निष्कर्ष श्लोक 38–40 के पहले श्लोको के सदर्भ पर आधारित

है , देखिय

"स्वामी चाहे जिस सकट या विपत्ति मे हो, शूद्र को उसका साथ नही छोडना चाहिये। स्वामी के निर्धन होने पर शूद्र को उसकी सेवा और भी अधिक लगन से करनी चाहिये।

शूद्र की अपनी कोई सम्पत्ति नहीं होती। उसके पास जो कुछ भी है, उसके स्वामी का है।

यज्ञ अन्य तीन वर्णों के लिये विहित है। हे भारत! शूद्र भी यज्ञ कर सकता है लेकिन वह स्वाहा, स्वधा अथवा अन्य मन्त्रो का उच्चारण करने से वर्जित है। वह पाक यज्ञ से देव–पूजा कर सकता है और ऐसे यज्ञ की दक्षिणा पूर्ण पात्र है।"

पूर्ववर्ती श्लोको के संदर्भ मे श्लोक 38–40 का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि पूरा प्रसंग ही शूद्रो के विषय मे है। पैजवन की कथा तो मात्र एक दृष्टान्त है। अत पैजवन के नाम के पहले "शूद्र" शब्द का प्रयोग अनावश्यक है। इस प्रसग से विज्ञ रहकर ही लेखक ने "शूद्र" शब्द का प्रयोग नहीं किया और उसके प्राचीनकाल मे होने के कारण "पुरा" लिख दिया है। और यह स्वाभाविक भी है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि महाभारत के शान्ति पर्व मे चर्चित व्यक्ति पैजवन था और वह शूद्र था।

2

दूसरा प्रश्न यह है कि पैजवन कौन था?

निरूक्त (II . 4) में यक्ष कहता है–

"सब के मित्र ऋषि विश्वामित्र पैजवन के पुत्र सुदास के पुरोहित थे। सुदास महादानी था। पिजवन की गति अभिलाषणीय थी, उसकी चाल में अनूठापन था।"

इससे दो बाते स्पष्ट हुई :–

1 पैजवन पिजवन का पुत्र था।

2. सुदास पैजवन का पुत्र था।

यास्क की सहायत से हम स्पष्टत. यह कह सकते हैं कि महाभारत (शान्ति पर्व) में चर्चित पैजवन सुदास का दूसरा नाम मात्र है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सुदास कौन है और हम उसके विषय मे क्या

जानत है? ब्राह्मण साहित्य मे हमे सुदास नाम के तीन व्यक्तियो की जानकारी मिलती है।

एक सुदास का पारिवारिक विवरण ऋग्वेद मे इस प्रकार है –

1 VII 18.22 "हे अग्नि दो सौ गोओ का दान करने वाले, देवदत्त के पौत्र और पैजवन के पुत्र सुदास जिसके दो रथ और दो पत्नियाँ है, का यशगान करते हुए मै मुख्य पुरोहित के रूप मे तुम्हारी प्रदक्षिणा करता हूँ।"

2 VII 18.23 "स्वर्ग की जीन से सुसज्जित दुर्गम मार्गो पर त्वरा गति से चलने वाले उत्तम नस्ल के चार अश्व मुझे पैजवन के पुत्र सुदास ने उपहार मे दिये है। मुझे संतति और भोजन–लाभ दो।

3 VII 18 24 "सातो लोक सुदास की इन्द्र के समान स्तुति करते है। उसका यश पृथ्वी से स्वर्ग तक गूँज रहा है। प्रचुर धन के दानी सुदास के लिये बहती हुई नदियो ने युद्ध मे युध्यामधि का विनाश कर दिया है।"

4 VIII 18.25 हे मरुद्गण! जिस प्रकार आपने सुदास के पिता दिवोदास पर कृपा की है, उसी प्रकार युवराज सुदास पर भी करो। पैजवन के पुत्र की स्तुति से प्रसन्न हो उसके बल और शौर्य को अक्षुण रखो।"

सुदास नामक दो अन्य व्यक्तियो का विवरण विष्णु पुराण मे मिलता है। विष्णु पुराण के चतुर्थ अध्याय मे एक सुदास का विवरण राजा सगर के वशज के रूप मे मिलता है–

"राजा सगर की दो पत्नियाँ कश्यप की पुत्री सुमति तथा विदर्भराज की पुत्री केशिनी थीं। संततिहीन रहने पर राजा ने ऋषि और्व की सहायता माँगी। ऋषि ने वरदान दिया कि उसकी एक पत्नी एक पुत्र को जन्म देगी तथा दूसरी साठ हजार पुत्रो को। निर्णय राजा की पत्नियों पर छोड दिया गया। केशिनी ने एक पुत्र की इच्छा प्रकट की और सुमति ने अनेक की। केशिनी ने असमजस नामक पुत्र को जन्म दिया। असमजस से ही सगर वश चला। विनता की पुत्री सुमति ने साठ हजार पुत्रो को जन्म दिया। असमसज का पुत्र अंशुमत और अंशुमत का पुत्र दिलीप हुआ।

दिलीप के पुत्र का नाम भागीरथ था। यह गगा को स्वर्ग से धरती पर लाये। अत इनके नाम पर गगा भागीरथी कहलाई।

भागीरथ का पुत्र सुत, उसका पुत्र नाभाग, उसका पुत्र अम्बरीष और अम्बरीष का पुत्र सिधुदीप हुआ। सिधुदीप का पुत्र आयुत्स्व, आयुत्स्व का पुत्र प्रसिद्ध जुआरी नल का मित्र ऋतुपर्ण, ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम, सर्वकाम का पुत्र सुदास सुदास का पुत्र सौदास हुआ। सौदास को मित्रसाह भी कहा जाता है। (विल्सन विष्णु पुराण पृ० स० 377–380)

विष्णु पुराण के 19वे अध्याय में पुरु के वंशज एक अन्य सुदास का विवरण इस प्रकार है:–

"पुरु का पुत्र जनमेजय था। जनमेजय का पुत्र प्राचीनवत उसका पुत्र प्रवीर, उसका पुत्र मनस्यु, उसका पुत्र भयद, उसका पुत्र सुदयुम्न, उसका पुत्र बाहुगव, उसका पुत्र शम्याति, और शम्याति का पुत्र अहम्याति हुआ। अहम्याति के पुत्र रूद्राश्व के रीतेयु, काक्षेयु, स्थानदिलेयु, घृतेयु, जलेयु, स्थलेयु, शान्ततेयु, धनेयु वनेयु और वृतेयु दस पुत्र हुए। रीतेयु के पुत्र रतिनार के तीन पुत्र तनसु, अप्रतीर्थ और ध्रुव हुए। काक्षेयु के पुत्र कण्व से काण्वायन और ब्राह्मण पैदा हुए। तनसु के पुत्र अनल के चार पुत्र थे जिनमें दुष्यन्त ज्येष्ठ था। दुष्यन्त का पुत्र भरत चक्रवर्ती राजा हुआ।

भरत की पत्नियो ने 9 पुत्रों को जन्म दिया। किन्तु भरत के यह कहने पर कि वे उसके अंश से उत्पन्न नही है, सब के सब उनकी माताओं द्वारा मार डाले गये। कालान्तर में भरत ने मरूद्‌गण की स्तुति की। मरूद्‌गण ने प्रसन्न होकर उसे उताथ्य की पत्नी ममता के गर्भ से बृहस्पति द्वारा उत्पन्न पुत्र भारद्वाज दे दिया।

भारद्वाज का दूसरा नाम वितथ पडा। वितथ का पुत्र भवनमन्यु हुआ। उसके अनेक पुत्र हुए जिनमे ब्रहत्क्षात्र, महावीर्य, नार और गर्ग प्रमुख है। नार के पुत्र संस्कृति के रूचिराधि और रन्तिदेव पैदा हुए। गर्ग के पुत्र सिनि के वंशज गार्ग्य और सैन्य जन्म से क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण बन गये। महावीर्य–पुत्र उरुक्षय के तीन पुत्र त्राय्युर्ण पुश्करण और कपि थे। कपि ब्राह्मण बने। ब्रहत्क्षात्र के पुत्र सुहातृ थे और सुहातृ के पुत्र हस्तिन ने हस्तिनापुर नगर बसाया। हस्तिन के अजामेध, द्विमेध और पुरुमेध पुत्र हुए। अजामेध का एक पुत्र कण्व था। कण्व का पुत्र मेधामेध, उसका पुत्र ब्रहदादिथु, उसका पुत्र ब्रहदाश्व, उसका पुत्र ब्रहत्कर्मा, उसका पुत्र जयद्रथ, उसका पुत्र विश्वजीत, उसका पुत्र सेनजित और सेनजित के पुत्र रुचिराश्व के पुत्र काश्य, ध्रधाधनुष और वसाहन हुए रूचिराश्च के पुत्र पृथसेन के पार और पार के निप नामक पुत्र हुआ। निप के सौ पुत्र हुए जिनमें काम्पिल्य का शासक समर प्रमुख

था। समर के तीन पुत्र पार, सम्पार और सदाश्व थे। पार का पुत्र पृ
सुकीर्ति, उसका पुत्र विभातृ और विभातृ का पुत्र अनुह हुआ। अनुह
शुक की पुत्री कृत्वी से विवाह किया। उससे ब्रह्मदत्त पैदा हुआ।
विश्वकसेन, उसका पुत्र उदकसेन और उदकसेन का पुत्र भल्लात

अजामेध के एक अन्य पुत्र भी था जिसका नाम रिक्ष था। रिक्ष क
उसका पुत्र कुरू हुआ। कुरू के नाम पर कुरूक्षेत्र का नामकरण हुआ
परीक्षित तथा अनेक पुत्र हुए। सुधाशु का पुत्र सुहोतृ, उसका पुत्र च्य
पुत्र क्रितक और उसका पुत्र उपरिचर हुआ। उपरिचर (बसु) के ब
कुशम्भ, मावेल्स, मत्स्य आदि सात पुत्र हुए। ब्रहद्रथ का पुत्र कुसा
ऋषभ, उसका पुत्र पुष्पवत उसका पुत्र सत्यधृत, उसका पुत्र सुधन
पुत्र जान्तु हुआ। सुधन्वा के एक अन्य पुत्र भी था जो जरासिंधु के न
हुआ। जरासिंधु का पुत्र सहदेव, सहदेव का पुत्र सोमपाय और सो
सुतश्रवा हुआ। ये मगध के राजा थे।"

5.

सक्षेप मे तीनो सुदासो की वंशावली निम्न प्रकार है:–

ऋग्वेद मे सुदास			विष्णु पुराण में सुदास
vii 18.22 के अनुसार	vii 18.23 के अनुसार	vii 18.25 के अनुसार	सगर वश में सुदास
देवदत्त	*पिजवन*	*दिवोदास* *पिजवन*	*ऋतुपर्ण*
पिजवन			*सर्वकाम*
सुदास	*सुदास*	*सुदास*	*सुदास*
			सौदास= *मित्रसाह*

उपरोक्त तालिका से दो बाते स्पष्ट हैं :–

1 विष्णु पुराण के सुदास का ऋग्वेद के सुदास के कोई सम्बन

2 महाभारत मे चर्चित पैजवन का साम्य ऋग्वेद के सुदास स है। पिजवन का पुत्र होने के कारण सुदास को पैजवन भी कहा गया है। पिजवन का दूसरा नाम दिवोदास बताया गया है।

महाभारत के शान्तिपर्व के प्रासागिक श्लोकों पर टिप्पणी करत हुए प्रो० वेबर कहते है –

"पैजवन की एक महत्वपूर्ण कथा का वर्णन है। यज्ञ के लिये प्रसिद्ध पैजवन या सुदास ऋग्वेद में विश्वामित्र का सरक्षक बताया गया है। वह शूद्र था।"

सौभाग्य से महाभारत का पैजवन और ऋग्वेद का सुदास, दो अलग व्यक्ति न होकर, एक है।

3

सुदास या पैजवन के विषय में निम्नलिखित विवरण मिलता है –

(1) सुदास न तो दास था और न आर्य। दास और आर्य उसके शत्रु थे। (ऋग्वेद VII 83 1)

इसका अर्थ यह हुआ कि वह वैदिक आर्य था।

2 सुदास का पिता दिवोदास व्रधयाश्व का दत्तक पुत्र था (ऋग्वेद IX 61 2) राजा दिवोदास ने तुर्वस (ऋ० vi 61 1) यदु (viii 19 8), शम्बर (1 130 7), पारव (ऋ० 1 53 10), करॉज और गुगू से अनेक बार युद्ध किया (ऋग्वेद x 48), दिवोदास और तूर्यवन मे युद्ध हुआ और तूर्यवन विजयी हुआ (ऋग्वेद 1 53 8, vi 18 13)।

ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के समय इन्द्र दिवोदास के विरुद्ध था। सुदास ने अपने पुरोहित भारद्वाज को अनेक उपहार दिये थे। (ऋग्वेद 1 116 18, VI 16 5)। भारद्वाज ने छल किया और वह दिवोदास के शत्रु तूर्यवन से जा मिले (ऋग्वेद VI 18 13)

सुदास की माता के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता, किन्तु अश्विनी कुमारो की कृपा से प्राप्त उसकी पत्नी का नाम सुदेवी बताया गया है (ऋग्वेद – 1 112 19) (3) सुदास राजा था तथा उसका राज्याभिषेक ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने किया था।

राजाओ के महाभिषेक उत्सवो को सम्पन्न करने/कराने वाले पुरोहितों का वर्णन ऐतिरेय ब्राह्मण में इस प्रकार मिलता है –

"भृगु पुत्र च्यवन ने मनु के पुत्र शर्याति का अभिषेक किया। शर्याति पृथ्वी को जीतता चला गया और अश्वमेघ यज्ञ किया।

वाजरत्न के पुत्र सामसुषम का अभिषेक सत्रजित के पुत्र शान्तनिक ने किया। उसने पृथ्वी के अन्तिम छोर तक विजय प्राप्त की और अश्वमेघ यज्ञ किया।

पार्वत और नारद ने अम्बाष्ठ्य का अभिषेक किया। अम्बाष्ठ्य ने पृथ्वी पर सर्वत्र विजय पायी ओर अश्वमेघ यज्ञ यज्ञ किया।

पार्वत और नारद ने उग्रसेन के पुत्र युधामस्रोष्टि का अभिषेक किया जिसने समस्त पृथ्वी को जीतकर अश्वमेघ यज्ञ किया।

कश्यम ने भुवन के पुत्र विश्वकर्मा का अभिषेक किया। विश्वकर्मा ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीता और अश्वमेघ किया।

वशिष्ठ ने पैजवन के पुत्र सुदास का अभिषेक किया था। सुदास ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया और अश्वमेघ किया।

अगिरा के पुत्र सवर्त ने मारुत का अभिषेक किया था। मारुत ने समस्त भूमण्डल जीतकर अश्वमेघ यज्ञ किया।"

उपरोक्त तालिका में वशिष्ठ द्वारा सुदास के अभिषेक किये जाने का स्पष्ट वर्णन है।

सुदास प्रसिद्ध दसराज्ञ युद्ध का नायक था। इस युद्ध का वर्णन ऋग्वेद के सातवे मण्डल के अनेक सूत्रो में मिलता है।

सूक्त 83 में कहा गया है :-

4 "हे इन्द्र और वरुण, तुमने अपने घातक शस्त्रो के भेद से सुदास की रक्षा की। युद्ध के अवसर पर त्रित्सुओं की प्रार्थना सुनो जिससे मेरी सेवा फलवती हो सके।

6 "हे इन्द्र और वरूण, सुदास और त्रित्सु युद्ध द्वारा द्रव्य की प्राप्ति के लिये तुम्हारी शरण में गये। जब दस राजाओं ने उन पर आक्रमण किया, तुमने उनकी रक्षा की।"

7 "हे इन्द्र और वरूण, सगठित होने पर भी, दसवें अधार्मिक राजा, राजा सुदास के समक्ष टिक न सके।"

9 "हे इन्द्र और वरूण, तुम मे से एक युद्ध में शत्रुओ का सहार करता है तथा दूसरा धार्मिक अनुष्ठानों की रक्षा। हम स्तुति के माध्यम से तुम्हारा आवाहन करते हैं हम पर कृपा करो

सूक्त 33 के अनुसारः

2 "पाश्द्युम्न के पराभव पर सुदास ने मदिरा का चढावा दिया। उसे ग्रहण करने के निमित्त इन्द्र को आहूत किया गया। इन्द्र ने त्वरा गति से वायात के पुत्र पाश्द्युम्न के भाग का सोम वशिष्ठों का उड़ेल दिया।"

3 "त्वरा गति से सुदास ने सिंधु नद को पार कर अपने शत्रुओ का दमन किया। वशिष्ठो ने अपनी स्तुति से इन्द्र को दस राजाओ से सुदास की रक्षा करने के लिये तैयार कर लिया।"

सूक्त 19 मे बताया गया है–

3 "हे इन्द्र, तुमने हर प्रकार का नैवेद्य अर्पित करने वाले सुदास की रक्षा की है। तुमने पुरूकुत्स के पुत्र त्रिसदस्यु और पुरू को धरा पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये युद्ध मे शत्रुओ से बचाया है।"

4 "हे इन्द्र, दानी सुदास पर तुम्हारी अनन्त कृपायें हैं। मै तुम्हारे शक्तिशाली अश्व जोतता हूँ। हमारी स्तुति आराध्यों तक पहुँचे।"

सातवे मण्डल के सूक्त 18 में कहा गया है:-

1। "इन्द्र ने मरूद्गण की उत्पत्ति राजा की सहायता के लिये की। यशाकाक्षी राजा ने परूष्णी के तट पर 21 मानवो की बलि दी।"

13 "शक्ति–पुज इन्द्र ने त्वरा गति से उनके सात अजेय नगर ध्वंस कर दिये। उसने अनु के पुत्र का निवास–स्थान छीनकर त्रित्सु को भेंट कर दिया। हम इन्द्र की कृपा से दुर्भाषी लोगों पर विजय प्राप्त करे।"

14 "छियासठ हजार छ सौ साठ अनु तथा दुहयु योद्धा जो महान् सुदास के पशुओ का हरण करना चाहते थे, इन्द्र के गौरवशाली कृत्य से विनाश को प्राप्त हुए।"

15 "उद्धत त्रित्सु भूल मे इन्द्र से उलझ तो पडे लेकिन बाद मे सारी सम्पत्ति सुदास के लिये छोड़कर नदी के तीव्र बहाव की भाति भाग गये।"

16 "इन्द्र ने अपने वरिष्ठ सुदास के शत्रुओं का तहस–नहस कर दिया। इन्द्र ने सुदास के शत्रु जनों को भडकाकर, सुदास के विरुद्ध खड़ाकर, उन्हें भागने को मजबूर कर दिया।"

17 "इन्द्र ने अकिंचन ने दान को पूरा किया, बकरी से सिंह का वध कराया, सुई की नोंक से बलि–खम्भ को काटा और शत्रुओ की लूट से प्राप्त धन–सम्पदा सुदास को सौंपी

18 "हे इन्द्र, उपद्रवी भेद ने अपने असख्य शत्रुओ को दास बना लिया है। वह तुम्हे क्रूर कहने वालो को सरक्षण देता है। उस पर बज्र–प्रहार करो।"

19 "यमुना–तट के निवासियो त्रित्सुओ ने युद्ध मे भेद का वध करने पर इन्द्र की अभ्यर्थना की। अज, शिग्रु और यक्ष लोगों ने इन्द्र के निमित्त यज्ञ किया और अश्वो के सिर की बलि दी।"

इस युद्ध मे सुदास के विरुद्ध लडने वाले राजा इस प्रकार हैं –

1 शिन्यु	*2 तुर्वसु*	*3 द्रुह्यु*	*4 कवषै*	*5 पुरु*
6 अनु	*7 भेद*	*8 शम्बर*	*9 वैकर्ण*	*10. वैकर्ण (दूसरा)*
11 यदु	*12 मत्स्य*	*13 पक्थ*	*14 भालनास*	
15 अलीन	*16 विशानिन*	*17 अज*	*18 सिनि*	
19 शिग्रु	*20 याक्षु*	*21 युध्यामधि*	*22 यद्व*	
23 देवकमन्यमान	*24 च्यमन कवि*	*25 सुतुक*	*26 उचथ*	
27 श्रुत	*28 विदर्भ*	*29 मन्यु*	*30 पृथु*	

स्पष्टत युद्ध अपने नाम से कही बडा और भारतीय आर्यो के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना रहा होगा। इस युद्ध का विजेता सुदास अपने समय का अनन्यतम नायक कहलाता था तो इसमे कई अतिश्योक्ति नही है। युद्ध का कारण क्या था, वह तो ठीक पता नही चलता। ऋग्वेद (VII 83 7) में सुदास के विरोधी राजाओं को अधर्मी कहा गया है, अस्तु सभावना यही है कि यह धर्म–युद्ध था।

4

सायणाचार्य और लोकोक्ति के अनुसार ऋग्वेद के अधोलिखित मत्रो के सृष्टा निम्नांकित राजागण थे –

x 9	वीतहव्य (भारद्वाज)
x 75	अम्बरीष (त्वष्ट्रि के पुत्र त्रिसरस) के पुत्र सिधुद्वीप
x 133	प्रियमेध का बेटा सिंधुक्षित
x 134	पिजवन का पुत्र सुदास
x. 179	युवनाश्च पुत्र माधातृ

उसीनार के पुत्र शिवि, दिवोदास के पुत्र काशी नरेश प्रतार्धन, रोहिदाश्व

के पुत्र वसुमानस। मत्र X.148 को रचयिता पृथिवैन्य को बताया जाता है।

उक्त तालिका में सुदास का नाम वैदिक मत्रो के सृष्टा के रूप मे है।

5

ऋग्वेद (iii 53) के अनुसार सुदास ने अश्वमेध यज्ञ किया था।

9 "महामुनि, देवजनो के उत्पादक विश्वामित्र ने जब सुदास का यज्ञ सम्पन्न कराया, नदियो का प्रवाह रूक गया। इन्द्र प्रसन्न हुए।"

11 "हे कुशिक, तुम आगे बढकर सुदास के तुरंग का उत्साहवर्धन करो और उसे धनिको को जीतने के लिये प्रेरित करो। देवराज इन्द्र ने पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा मे व्रत्र का विनाश कर दिया है। इसलिये पृथ्वी के पवित्र स्थलो पर सुदास, इन्द्र की पूजा करे।"

अपनी दानशीलता के लिये प्रसिद्ध सुदास अतिथिग्व के नाम से पुकारा जाता था। ब्राह्मण उसका यशोगान कैसे करते थे, ऋग्वेद मे देखिये –

1 47 6	हे आश्विन, सुदास को अपने रथ में भरकर धन दो, सागर अथवा आकाश के मार्ग से धन भेजो जिससे हमें अपार दक्षिणा मिले।
1 63 7	"पुरुकुत्स के सात नगरो के विध्वंसक, सुदास के विपत्ति–निवारक, इन्द्र, अब पुरू पर द्रव्य–वर्षा करो।"
1 112 19	"हे आश्विन, सुदास को तेज और बल प्रदान करने वाली शक्ति के साथ पधारो।"
7 19 3	"हे इन्द्र, सुदास की स्तुति पर तुमने हर प्रकार की सहायता देकर उसकी रक्षा की। तुमने पुरुकृत्स के पुत्र त्रिसदस्यु को बचाया। पुरु को अपने शत्रुओ के वध में तुमने भरसक सहायता दी।"
7 20 2	"वृत्र–सहारक इन्द्र अपने भक्तो की रक्षा करते हैं, सुदास को स्थान (सम्मान) देते हैं तथा अपने भक्तों को धन देते हैं।
7 25 3	"सुदास को सौ बार सहायता दो, एक सहस्र मनोवाछित उपहार दो, समृद्धि प्रदान करो। उसके शत्रुओं के घातक आयुध नष्ट करो। हमे यश और धन दो।"

7 32 10	"इन्द्र और मरूद्गण से रक्षित सुदास के रथ को रोकने की शक्ति किसी मे नही है। वह पशुओ से भरे चरागाह में निर्द्वन्द विचरण करता है।"
7 53 3	"हे आकाश और वसुन्धरा! सुदास को धन–समृद्धि दो।"
7 60 8	"आदिति, मित्र ओर वरूण सुदास को सुरक्षा प्रदान करते है, अस्तु हे आराध्यगण! हम देवताओ के प्रति कोई अपराध न करे। हे आर्यमाण! हमे हमारे शत्रुओ से मुक्ति दिलाओ। हे बलशाली देवजनो! सुदास को विस्तृत प्रसार प्रदान करो!"

ये ऋग्वेद से सकलित और महाभारत के शान्तिपर्व मे वर्णित पैजवन के जीवन–वृत्त के कुछ अंश है।

ऋग्वेद से हमे यह ज्ञात होता है कि उसका वास्तविक नाम सुदास था और वह क्षत्रिय था। वह राजा था और शक्तिशाली राजा था। महाभारत मे उसे शूद्र बताया गया है जो एकदम नई बात है। शूद्र का आर्य होना, शूद्र का क्षत्रिय होना और शूद्र का राजा होना? इससे अधिक विश्मयजनक ओर क्या हो सकता है।

जीवन–वृत्त की खोज को समाप्त करने से पूर्व तीन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है –

1 क्या सुदास आर्य था?

2 यदि सुदास आर्य था तो उसकी जाति क्या थी?

3 यदि सुदास शूद्र था तो "शूद्र" का क्या अर्थ है?

हम दूसरे प्रश्न से प्रारम्भ करते हैं। ऋग्वेद मे त्रित्सु, भरत, तुर्वष, द्रुह्यु, यदु, पुरु और अनु आदि अनेक जातियों का वर्णन है। ऋग्वेद के ही साक्ष्यानुसार सुदास का सम्बन्ध पुरु, त्रित्सु और भरत जातियों से था। अस्तु, हमे अपनी खोज इन्हीं तीन जातियो तक सीमित रखना श्रेयस्कर होगा।

ऋग्वेद मे सुदास और त्रित्सुओं का सम्बन्ध इस प्रकार दर्शाया गया है –

1 मंत्र 1 63.7 मे दिवोदास को पुरुषो का राजा कहा गया है।

2 मंत्र 1 130 7 में दिवोदास गौरव बताया गया है।

3 मत्र 7 18 15 के अनुसार सुदास ने त्रित्सुओं के ठिकाने पर धावा बोला। त्रित्सु भाग खडे हुए और उनकी सम्पत्ति सुदास के हाथ लगी।

4 मन्त्र 7 83 6 के अनुसार सुदास और त्रित्सु दसराज्ञ युद्ध मे एक दक्ष थे लेकिन अलग–अलग दिखाये गये हैं ।

5 मंत्र 7 33.5 मे "सुदास त्रित्सुआ का राजा हुआ" बताया गया है।

6 मंत्र 7 33 6 मे त्रित्सु और भरत एक बताये गये है।

7 मंत्र 6 16 4,6,19 मे सुदास के पिता को "भरत" बताया गया है।

उक्त प्रसंगो से यह ज्ञात होता है कि पुरु, त्रित्सु और भरत एक जाति की शाखायें थीं अथवा भिन्न जातियाँ थी जो कालान्तर मे एक हो गयीं। यदि हम यह मानकर चले कि तीनो जातियाँ भिन्न थीं, तब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठेगा कि सुदास की जाति क्या थी। पुरु अथवा त्रित्सु अथवा भरत। सुदास के पिता दिवोदास के पुरु और भरतों से सम्बन्ध को देखते हुए यह कहना कठिन है। तदपि दिवोदास को "भरत" कहे जाने के कारण सुदास भी भरत था।

अब यह प्रश्न उठता है, भरत कौन थे? क्या ये वे है जिनके नाम पर इस देश का नाम "भारत–भूमि" पडा। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि अधिकांशत लोग इस सच्चाई से अवगत नहीं हे। हिन्दू जब भी "भारतवर्ष" की चर्चा करते है उनके मस्तिष्क में दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र भरत रहता है। वे अन्य किसी भरत को जानते तक नहीं। अत वे यह मानते है कि दौष्यन्ती भरत के नाम पर ही इसका नाम भारत पडा।

दो भरत जातियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। एक दौष्यन्ती भरत है जिनका वर्णन महाभारत मे आता है और दूसरे ऋग्वेद मे वर्णित मनु के वशज भरत, जिनमें सुदास भी है। इस देश का नाम ऋग्वेद के "भरतो" के नाम पर ही भारत पडा न कि दौष्यन्ती भरत के नाम पर। यह संभवत् पुराण मे स्पष्ट किया गया है–

"प्रियंवदो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य ह।
तस्याग्नीधस्ततो नाभिऋषभश्च सुतस्तः।।
अवतीर्ण पुत्रशतं तस्यासीद्ब्रह्यपारगम्।
तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः।
विख्याते वर्शमेतधन्नाम्ना भारतमुत्तम्रम।।

(स्वयभू के पुत्र मनु के एक पुत्र प्रियंवद थे। उनके पुत्र अग्नीध्र हुए। अग्नीध्र के पुत्र नाभि ओर नाभि के पुत्र ऋषभ,हुऐ। ऋषभ के एक सौर वेद–विद् पुत्र हुए जिनमे नारायण के परम भक्त भरत ज्येष्ठ थे। उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारत पडा।)

उपरोक्त से पता चलता है कि सुदास किन प्रतापी राजाओं का वंशज था

अब यह पता करना है कि सुदास आर्य था अथवा नहीं। भरत आर्य थे अस्तु सुदास भी आर्य ही होगा।

ऋग्वेद के मत्र 7 18 7 से सुदास के आर्य होने मे सदेह उत्पन्न होता है क्योकि इससे ऐसा प्रकट होता ह कि त्रित्सु आर्य न थे। इसके अनुसार इन्द्र ने त्रित्सुओ को मारकर आर्यो की रक्षा की। त्रित्सुओं को अनार्य कहे जाने पर ग्रिफिथ महाशय भी चक्कर मे पड गये। यह उक्त मत्र के शाब्दिक अर्थ के कारण हुआ क्योकि वह यह भूल गये कि ऋग्वेद मे धर्म एव जाति के आधार पर भिन्न दो आर्य जातियो का वर्णन हैं। तथ्यो के प्रकाश मे ऐसा प्रतीत होता है कि इस मत्र की रचना के समय त्रित्सु ओर आर्यधर्म के आधार पर एक नही हो पाये थे। फिर भी इसका यह आशय कदापि नही कि वे आर्य न थे। वे आर्य थे। यह भी निर्विवादत सिद्ध है कि सुदास रहा हो या त्रित्सु– आर्य था।

अन्तिम प्रश्न है "शूद्र" का क्या अर्थ है? सुदास के शूद्र सिद्ध हो जाने से शब्द का अर्थ ही बदल गया है। पूर्व के गवेषणको के लिये यह नयी खोज आश्चर्यजनक है क्योंकि वे "असभ्य और जंगली आदिम जातियॉ ही शूद्र हैं" मानकर चले है। इसका कारण यह रहा है कि वैदिक आर्यो की सामाजिक सरचना का पूरी तरह अन्वेषण–अध्ययन नहीं हुआ। प्राचीन समाज के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय का समाज जाति, उप–जाति, कुल और गोत्र के आधार पर अनेक छोटे–छोटे समूहो मे विभाजित था। अत यह कहना कठिन है कि शूद्र किस जाति कुल या वश का नाम था। प्रो० व्हेबर कहते है–

" ...आर्यो के यज्ञों मे शूद्र आमन्त्रित किये जाते थे। यद्यपि वे आर्य–भाषा बोल नहीं पाते थे, किन्तु समझते अवश्य थे। . . . .अस्तु, मेरा स्पष्ट मत है कि शूद्र आर्य जाति थे जो दूसरे (वैदिक) आर्यो से पहले ही भारत मे आकर बस गये थे।"

प्रो० व्हैबर का उपरोक्त मत मस्तिष्क को झिंझोडकर रख देता है।

अस्तु, यह सिद्ध हुआ कि शूद्र आर्य थे और वे क्षत्रिय थे।

8. वर्ण - चार या तीन

(1)

सभी हिन्दू एव योरोपीय विद्वान यह मान बैठे हैं कि भारतीय आर्य समाज मे आदि से ही चार वर्ण हैं। यदि गत अध्याय मे सिद्ध मत 'शूद्र क्षत्रिय हैं' मान लिया जाय तो वर्ण तीन रह जाते है। इससे एक नया प्रश्न उपस्थित होता है और वह

यह है कि वर्ण तीन ह या चार। अत' जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि वर्ण केवल तीन थे, यह नही' माना जा सकता कि शूद्र क्षत्रिय हैं। सौभाग्य से इसके साक्ष्य उपलक्ष्य है।

प्रथम साक्ष्य तो ऋग्वेद का है। कुछ विद्वान यह मानते है कि ऋग्वेद–काल में वर्ण–व्यवस्था ही नहीं थी। इनके विचार से पुरुष सूक्त बाद मे ऋग्वेद में जोड दिया गया है। उनके इस मत को स्वीकार कर लेने पर भी यह नही माना जा सकता कि ऋग्वैदिक युग मे वर्ण–व्यवस्था नही थी। इसका कारण यह है कि पुरुष सूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद मे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का उल्लेख अनेक बार किया गया है। ब्राह्मणो और क्षत्रिया का भिन्न वर्ण के रूप मे वर्णन क्रमश पन्द्रह और नौ बार ऋग्वेद मे आया है। किन्तु शूद्र वर्ण का प्रथक वर्णन कहीं भी नहीं है। यदि शूद्र अलग वर्ण होते तो कोई कारण नहीं कि ऋग्वेद मे उनका उल्लेख न होता। इसका यही निष्कर्ष निकलता है कि ऋग्वेदिक काल मे केवल तीन ही वर्ण थे और शूद्र नाम का चौथा या प्रथक कोई वर्ण नहीं था।

दूसरा साक्ष्य शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण का है। दोनो ब्राह्मण ग्रथो मे केवल तीन ही वर्णो का वर्णन मिलता है और उनमे शूद्रो के प्रथक वर्ण होने का कोई उल्लेख तक नहीं है।

शतपथ ब्राह्मण (II . 1 4 11) के अनुसार प्रजापति ने भू' कहकर पृथ्वी का सृजन किया, भुव कहकर वायु की रचना की और स्व कहकर आकाश की रचना की। इन तीन शब्दो के साथ ही ब्रह्माण्ड की रचना हुई। फिर अग्नि को बनाया। तत्पश्चात प्रजापति ने भू से ब्राह्मण, भुव से क्षत्रिय तथा स्व' से वैश्य का सृजन किया। सबके साथ अग्नि को बनाया। तब फिर प्रजापति ने भू से स्वयं को बनाया, भुव से प्राणियो को बनाया और स्व से पशुओ की रचना की। इस प्रकार विश्वप्रजापति, प्राणियों और पशुओं का है और अग्नि सब की है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (iii 12.9.2) में उल्लेख हैं "ऐसा प्राचीन काल में कहा गया है कि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्मा से उत्पन्न है। ऋग्वेद से वैश्य, यजुर्वेद से क्षत्रिय और सामवेद से ब्राह्मण पैदा हुए।"

ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण ग्रंथो से बढकर और क्या प्रमाण हो सकता है। दोनो में केवल तीन वर्णों का उल्लेख है। अत शूद्रों का प्रथक अथवा चतुर्थ वर्ण होना प्रामाणिक नहीं है। इससे केवल इस मत की पुष्टि होती है कि प्रारम्भ मे केवल तीन वर्ण थे और शूद्र दूसरे वर्ण अर्थात् क्षत्रिण वर्ण का एक अग थे।

(2)

ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रथो के विपरीत पुरुष सूक्त में चार वर्णो का उल्लेख है। किसे प्रामाणिक माना जाया। यह एक विचित्र स्थिति है। मीमासा के सिद्धान्तो के अनुसार तो दोनो ही प्रमाणिक है, फिर निर्णय कैसे किया जाय। इसका निर्णय करने के लिये हमे ऐतिहासिको के मत को मानना होगा। साथ ही हमे पुरुष सूक्त की भाषा और शैली का ऋग्वेद की भाषा और शैली से तुलनात्मक अध्ययन करना होगा। क्योकि प्राय सभी विद्वान पुरुष सूक्त को (ऋग्वेद के) बाद की रचना मानते हैं।

कोलबुक के मतानुसार पुरुष सूक्त की भाषा ओर शैली शेष ऋग्वेद से भिन्न है। यह अधुनातन है और इसकी रचना निश्चय ही सस्कृत भाषा और व्याकरण मे सुधार होने पर ही हुई होगी। पुरुष सूक्त की भाषा से एक अपरोक्ष साक्ष्य यह भी मिलता है कि ऋग्वेद पहले पारिवारिक शैली मे लिखा गया था और उसका वर्तमान स्वरूप सस्कृत भाषा मे छन्द, रस, स्वर और गायन शैली का प्रयोग प्रारम्भ होने पर अस्तित्व मे आया। ऐसी ही भाषा में पुराण तथा काव्यो की रचना हुई है।

प्रो० मैक्समूलर के अनुसार दसवें मण्डल का 90वा मत्र भाषा तथा स्वरूप मे नवीन है। इसमे यज्ञ की विधियो, तकनीकी दार्शनिक शब्दो तथा वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुओ का क्रमिक वर्णन है। इसमें ऋग्वेद के एकमात्र मत्र, जिसमे चार वर्णों का वर्णन है, का उल्लेख है। इसके नवीन होने का प्रमाण इसकी भाषा का दुरूह होना है। उदाहरणार्थ ग्रीष्म ऋतु का वर्णन ऋग्वेद मे कही भी उपलब्ध नही है। उसी प्रकार "वसन्त" का उल्लेख वैदिक कवियों की शब्दावली में नही मिलता। "वसन्त" का जिक्र केवल ऋग्वेद (x 161 4) मे शरद, हेमन्त और वसन्त के क्रमिक वर्णन मे मात्र एक बार आया है।

प्रो० वेबर का कहना है कि साम सहिताओं में पुरुष सूक्त का कोई भी मत्र न पाया जाना यह सिद्ध करता है कि यह बाद की रचना है जो ऋग्वेद के मन्त्रो मे जोड़ दी गयी है।

(3)

यह तो एक पहलू रहा। दूसरा पक्ष और भी है जो पुरुष सूक्त को प्राचीन या नवीन सिद्ध करने मे सहायक हो सकता है। वह है यह जानना कि किन-किन सहिताओं ने पुरुष सूक्त का अनुसरण किया है या अपनाया है।

सामवेद मे पुरुष सूक्त के केवल पॉच मत्र मिलते है। श्वेत यजुर्वेद वाजसनेयी सहिता में पुरुष सूक्त के 22 मत्र हैं' अथर्ववेद और ऋग्वेद में पुरुष

सूक्त के 16   6 मत्र पाये जाते हे कृष्ण यजुर्वेद की उपलब्ध तीन सहिताओ तैत्तिरीय, कठ और मैत्रायणी– मे पुरुष सूक्त का कोई उल्लेख तक नही है।

भिन्न–भिन्न वेदो मे पुरुष सूक्त के मत्रों की सख्या और क्रम समान नही है। वाजसनेयी संहिता मे जहाँ छ मत्र अधिक है, वहीं ऋग्वेद का सोलहवा मत्र अन्य वदो मे नहीं मिलता। इसी प्रकार अथर्ववेद का 16वा मत्र ऋग्वेद और यजुर्वेद मे नही है। शेष पन्द्रह मत्र जो तीन वेदों मे मिलते है न तो समान हे और न एक क्रम मे है। यह भिन्नता निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है

यजुर्वेद	ऋग्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
1	1	3	1
2	2	5	4
3	3	6	3
4	4	4	2
5	5	7	3
6	8	x	10
7	9	x	11
8	10	x	14
9	7	x	13
10	11	x	13
11	12	x	5
12	13	x	6
13	14	x	7
14	6	x	8
15	15	x	15
16=	16	x	16≠
17	x	x	x
18	x	x	x
19	x	x	x
20	x	x	x

(2)

ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रथो के विपरीत पुरुष सूक्त मे चार वर्णो का उल्लेख हे। किसे प्रामाणिक माना जाया। यह एक विचित्र स्थिति है। मीमासा के सिद्धान्तो के अनुसार तो दोनों ही प्रमाणिक हैं, फिर निर्णय कैसे किया जाय। इसका निर्णय करने के लिये हमे ऐतिहासिको के मत को मानना होगा। साथ ही हमें पुरुष सूक्त की भाषा और शेली का ऋग्वेद की भाषा और शैली से तुलनात्मक अध्ययन करना होगा। क्योकि प्राय सभी विद्वान पुरुष सूक्त को (ऋग्वेद के) बाद की रचना मानते हैं।

कोलबुक के मतानुसार पुरुष सूक्त की भाषा और शैली शेष ऋग्वेद से भिन्न है। यह अधुनातन है और इसकी रचना निश्चय ही सस्कृत भाषा और व्याकरण मे सुधार होने पर ही हुई होगी। पुरुष सूक्त की भाषा स एक अपरोक्ष साक्ष्य यह भी मिलता है कि ऋग्वेद पहले पारिवारिक शैली मे लिखा गया था और उसका वर्तमान स्वरूप संस्कृत भाषा मे छन्द, रस, स्वर और गायन शैली का प्रयोग प्रारम्भ होने पर अस्तित्व मे आया। ऐसी ही भाषा मे पुराण तथा काव्यो की रचना हुई है।

प्रो० मैक्समूलर के अनुसार दसवे मण्डल का 90वा मन्त्र भाषा तथा स्वरूप में नवीन है। इसमे यज्ञ की विधियो, तकनीकी दार्शनिक शब्दो तथा वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुओ का क्रमिक वर्णन है। इसमे ऋग्वेद के एकमात्र मत्र, जिसमे चार वर्णो का वर्णन है, का उल्लेख है। इसके नवीन होने का प्रमाण इसकी भाषा का दुरूह होना है। उदाहरणार्थ ग्रीष्म ऋतु का वर्णन ऋग्वेद में कहीं भी उपलब्ध नही है। उसी प्रकार "वसन्त" का उल्लेख वैदिक कवियों की शब्दावली में नही मिलता। "वसन्त" का जिक्र केवल ऋग्वेद (x 161 4) मे शरद्, हेमन्त और वसन्त के क्रमिक वर्णन में मात्र एक बार आया है।

प्रो० वेबर का कहना है कि साम सहिताओं मे पुरुष सूक्त का कोई भी मत्र न पाया जाना यह सिद्ध करता है कि यह बाद की रचना है जो ऋग्वेद के मत्रो मे जोड़ दी गयी है।

(3)

यह तो एक पहलू रहा। दूसरा पक्ष और भी है जो पुरुष सूक्त को प्राचीन या नवीन सिद्ध करने मे सहायक हो सकता है। वह है यह जानना कि किन–किन सहिताओं ने पुरुष सूक्त का अनुसरण किया है या अपनाया है।

सामवेद में पुरुष सूक्त के केवल पॉच मत्र मिलते है। श्वेत यजुर्वेद, वाजसनेयी सहिता में पुरुष सूक्त के 22 मंत्र है। अथर्ववेद और ऋग्वेद मे पुरुष

सूक्त के 16–16 मंत्र पाय जाते है। कृष्ण यजुर्वेद की उपलब्ध तीन सहिताओ– तैत्तिरीय, कठ और मैत्रायणी– मे पुरुष सूक्त का कोई उल्लेख तक नही है।

भिन्न–भिन्न वेदो मे पुरुष सूक्त के मत्रो की सख्या और क्रम समान नहीं ह। वाजसनेयी सहिता मे जहॉ छ मत्र अधिक हे, वहीं ऋग्वेद का सोलहवा मत्र अन्य वेदो मे नहीं मिलता। इसी प्रकार अथर्ववेद का 16वां मत्र ऋग्वेद और यजुर्वेद मे नही है। शेष पन्द्रह मत्र जो तीन वेदो मे मिलते है न तो समान है और न एक क्रम मे है। यह भिन्नता निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है

यजुर्वेद	ऋग्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
1	1	3	1
2	2	5	4
3	3	6	3
4	4	4	2
5	5	7	9
6	8	x	10
7	9	x	11
8	10	x	14
9	7	x	13
10	11	x	13
11	12	x	5
12	13	x	6
13	14	x	7
14	6	x	8
15	15	x	15
16:	16	x	16≠
17	x	x	x
18	x	x	x
19	x	x	x
20	x	x	x

21	x	x	x
22	x	x	x

(x चिन्ह का अर्थ है "नही मिलते" और ≠ चिन्ह् पाठान्तर प्रदर्शित करता है।)

परिणाम यह हुआ कि यदि पुरुष सूक्त प्राचीन होता तो अन्य वेद स्वतन्त्रतापूर्वक उसके न तो उद्धरण ले सकते थे और न उसमे मनमाना सशोधन अथवा काट–छाट कर सकते थे।

पुरुष सूक्त ऋग्वेद के फुटकर भागो है और अथर्ववेद के पूरक भाग मे। यदि यह पूर्व कृति होता तो वेदों मे यत्र–तत्र न मिलकर मुख्य भागो में मिलता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि –

1 कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, कठ और मैत्रावणी संहिताओ में पुरुष सूक्त का कोई उल्लेख न होने का अर्थ स्पष्टत यह ही है कि यह इन संहिताओ के बाद की कृति है जो कालान्तर में ऋग्वेद मे जोड दी गयी है।

2 पुरुष सूक्त ऋग्वेद और अथर्ववेद मे क्रमश फुटकर तथा पूरक भागो मे ही उपलब्ध है जो इस मत की पुष्टि करता है कि इसका रचना–काल बाद का है।

3 विभिन्न वेदो/संहिताओ के रचयिता पुरुष सूक्त को प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखते थे। अन्यथा वे इसके मंत्रो मे स्वतन्त्रतापूर्वक सशोधन, परिवर्द्धन या काट–छाट न करते।

इन तर्कों से प्रो० मैक्समूलर और अन्य विद्वानो के इस मत की पुष्टि होती है कि पुरुष सूक्त ऋग्वेद के बाद की कृति है।

(4)

एक अतर और है और वह है पुरुष सूक्त की रचना–शैली का। सभी मत्र वर्णनात्मक शैली में हैं किन्तु मंत्र 11 और 12 प्रश्नोत्तर के रूप मे हैं और वर्णोत्पत्ति का वर्णन करते है। प्रश्न उठता है कि रचनाकार के क्रम–भग का क्या तात्पर्य है। उत्तर स्पष्टतः यह है कि वह (बीच मे ही) एक विशेष सामग्री प्रस्तुत कर रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि पुरुष सूक्त कालान्तर की रचना है जो बाद मे ऋग्वेद मे जोड दी गयी है। साथ ही इसके मंत्र 11 और 12 तो भी बाद मे इसमे "ठूसे" गये है।

कुछ विद्वान तो यहाँ तक कहते हैं कि पुरुष सूक्त केवल ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को ही सिद्ध करता है, अत यह ब्राह्मणों की जालसाजी है। और ब्राह्मण तो ऐसी जालसाजी या धोखेबाजी मे सिद्धहस्त ही रहे है। प्रो० मैक्समूलर के मतानुसार इन्होने ऋग्वेद के शब्द "अग्रे" को "अग्ने" मे बदल दिया जिसमे विधवाओ को जीवित अग्नि मे झोक देने या जला देने का अर्थ प्रतिबोधित होने लगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के युग मे तो एक बादी के समर्थन मे एक पूरी स्मृति के रचे जाने का वर्णन मिलता है। अस्तु, कोई आश्चर्य नहीं कि अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध करने और चातुर्वर्ण्यी व्यवस्था को वेद–सम्मत बनाने के ध्येय से ब्राह्मणो ने पुरुष सूक्त की रचना के माध्यम से धोखाधडी की। फिर भी, यदि पूरा पुरुष सूक्त नहीं तो मंत्र 11 व 12 अवश्य ही इसमे कालान्तर मे "ठूस" दिये।

(5)

क्या पुरुष सूक्त ब्राह्मण ग्रथो से पहले की रचना है। यह सभव है कि पुरुष सूक्त ऋग्वेद का अन्तिम अश हो। तदपि, यदि सम्पूर्ण ऋग्वेद ब्राह्मण ग्रथो से पहले रचा गया था तो पुरुष सूक्त निश्चय की ब्राह्मण ग्रथो से पूर्व लिखा गया होगा। अस्तु यह महत्वपूर्ण है कि इस पर अलग से विचार किया जाय।

प्रो० मैक्समूलर ने मत प्रतिपादित किया है कि पहले वेद लिखे गये, फिर ब्राह्मण ग्रंथो का सृजन हुआ और उसके पश्चात सूत्र रचे गये। यदि इस मत को स्वीकार कर लिया जाय तो पुरुष सूक्त का सृजन–काल ब्राह्मण ग्रथो से पूर्व का होना चाहिये। अस्तु, मैक्समूलर के मत को मानने का अर्थ हे कि –

1. ऋग्वैदिक काल मे चार वर्ण थे जो शतपथ ब्राह्मण के समय मे तीन रह गये, अथवा

2 शतपथ ब्राह्मण मे वर्णव्यवस्था की पूरी व्याख्या नही है।

दोनो ही निष्कर्ष बेतुके और अमान्य हैं। प्रथम तो स्पष्टत और प्रत्यक्षत ही अमान्य है। और दूसरी इसलिये नहीं मानी जा सकती कि पुरुष सूक्त मे वर्णित वर्ण–व्यवस्था अपने आप मे पूर्ण है और ब्राह्मणो मे उल्लेखित व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार प्रो० मैक्समूलर के इस मत का कि "सभी वैदिक सहिताओ के सृजनोपरान्त ब्राह्मण ग्रन्थो की रचना हुई" स्वत ही खण्डन हो जाता है। इसके विपरीत प्रो० बेलवलकर और रानाडे का कहना है कि वेदो का कुछ अश पहले लिखा गया और कुछ भाग कालान्तर मे। अत इस सभावना से इन्कार नही किया जा सकता कि ब्राह्मण ग्रंथो का एक भाग वेदों के एक भाग से प्राचीन है। यह मत सत्य

न सही सत्य के निकट अवश्य है और हम इस परिणाम पर पहुचते है कि ब्राह्मणो के जिन अशो में केवल तीन वर्णो का वर्णन है, ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से पहले लिखे गये है।

पुरुष सूक्त के इस विश्लेषण– विवेचन से यह सिद्ध होता है कि पुरुष सूक्त बाद की रचना है जो कालान्तर मे ऋग्वेद मे ठूस दी गयी है तथा आर्य–समाज मे आदि से ही चार वर्णो की व्यवस्था नही थी।

उक्त तथ्यो से यह सिद्ध हो गया है कि पुरुष सूक्त की वर्ण–व्यवस्था सम्बन्धी प्रामाणिकता निराधार है। अत यह कहने मे कोई सकोच नहीं कि एक समय था जब आर्यो मे केवल तीन वर्ण थे और शूद्रो की गणना दूसरे वर्ण अर्थात् क्षत्रिय वर्ण मे की जाती थी।

9. ब्राह्मण और शूद्र

"शूद्र क्षत्रिय थे और कालान्तर मे अपने–दूसरे वर्ण से गिरकर चतुर्थ वर्ण बने" यह समस्या का पूर्ण समाधान नहीं है। यहाँ एक नया प्रश्न उठता है कि उनका पराभव कैसे हुआ?

यह प्रश्न क्या है और पहले कभी भी किसी ने नही उठाया। वर्तमान साहित्य में इसका कोई तर्कसंगत समाधान भी उपलब्ध नहीं है। खैर, प्रश्न मैने उठाया है अत इसके उत्तर के लिये साक्ष्य–प्रमाण प्रस्तुत करना भी मेरा अपना दायित्व है।

(1)

शूद्र राजा सुदास और ब्राह्मण ऋषि वशिष्ठ का सघर्ष एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसका जो भी वर्णन उपलब्ध है वह विरोधाभासों से परिपूर्ण है। मैंने इस को स्पष्ट और क्रमिक बनाने का प्रयास किया है। संघर्ष का मूल कारण जानने के लिये सर्वप्रथम वशिष्ठ और ऋषि विश्वामित्र का सम्बन्ध जान लेना आवश्यक है। दोनो घोर शत्रु थे। ऐसी कोई घटना नही जिसमे वे एकदूसरे के विरोधी न रहे हों। इसके निमित्त सत्यवृत, जिसको त्रिशंकू के नाम से जाना जाता है, की कथा प्रस्तुत है। हरिवंश मे कथा इस प्रकार है :–

"सत्यव्रत के पिता के आध्यात्मिक गुरु होने के नाते वशिष्ठ अयोध्या नगर और राज्य के साथ–साथ राजमहल का प्रशासन चलाते थे। पिता द्वारा वश–परम्परागत राजकीय अधिकारों से वचित किये जाने पर, वशिष्ठ द्वारा हस्तक्षेप न करने पर, वह

वशिष्ठ से रूष्ट था। इसका स्पष्ट कारण एक यह भी था कि सत्यवृत कहता था कि "विवाह सप्तपदी पर पूर्ण होता है। जब मैंने कन्या का हरण किया, सातवीं भावर नहीं पडी थी। इतने पर भी सभी धर्म–नियमों के ज्ञात वशिष्ठ ने मेरा पक्ष नहीं लिया।" इसके विपरीत वशिष्ठ यह मानते थे कि उन्होने जो कुछ किया वह धर्मनुसार ही था। तात्पर्य यह कि सत्यव्रत का रोष दूर न हुआ। राजा की आज्ञा से सत्यव्रत को मोन धारण कराया गया जिसका उद्देश्य वह (सत्यव्रत) समझ न पाया। राजा का कहना था कि उसने यह सब वश की ख्याति को दृष्टि मे रखकर किया है। वशिष्ठ ने राजा का साथ दिया था। यह सब होते हुए भी वह सत्यव्रत को राजा बनाने का निश्चय कर चुके थे। प्रायश्चित के बारह वर्ष उपरान्त जब खाने योग्य मॉस न मिला तो उसने कमजोरी, क्रोध और भूख की ज्वाला से सतप्त होकर वशिष्ठ की कामधेनु को मारकर उसका मॉस स्वय तो भक्षण किया ही विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिलाया। वशिष्ठ इससे क्रोध से पागल हो गये और उन्होने सत्यव्रत का नाम त्रिशकू अर्थात् तीन पाप करने वाला रख दिया।

त्रिशकू ने विश्वामित्र की पत्नी की भी सहायता की थी। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने त्रिशकू से "वर" मागने को कहा। त्रिशंकू ने सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा प्रकट की। बारह साल की अनावृष्टि के उपरान्त उन्होने त्रिशकू को उसके पिता के सिहासन पर बैठाकर यज्ञ किया। शौर्य–पुज कौशिक मुनि ने देवो और वशिष्ठ के विरोध करने पर भी त्रिशंकू को सदेह स्वर्ग भेज दिया।"

दूसरा प्रमाण त्रिशकू के पुत्र हरिश्चन्द्र की कहानी है जिसमे वशिष्ठ और विश्वामित्र परस्पर विरोध में चित्रित किये गये है। विष्णु पुराण और मार्कण्डेय पुराण मे इसका विवरण इस प्रकार है–

"एक बार मृगया करते समय हरिश्चन्द्र ने स्त्रियो का क्रन्दन सुना। स्त्रियॉ विश्वामित्र के कठोरतम तप से व्याकुल होकर रो रही थीं। निर्बल की रक्षा करने के क्षात्रधर्म और गणेश जी से प्रेरित हरिश्चन्द्र ने हुंकार भरकर कहा "कौन पापी आग से खेल रहा है, मेरे होते हुए? आज वह मेरी प्रत्यंचा से छूटे बाणों से चिरनिद्रा मे सो जायेगा।" इस सम्बोधन से विश्वामित्र का क्रोध जाग उठा। वे सामने आये। हरिश्चन्द्र उनको देखकर पीपल के पत्ते की भॉति कॉपता हुआ निवेदन करने लगा– "मुनिराज, ब्राह्मणो और अन्य विद्वानो द्वारा नियत राज्य–धर्म अर्थात् याचक को दान देना, निस्सहाय की रक्षा करना, शत्रुओं का दमन करना आदि राजा के कर्त्तव्य हैं। मै तो उन्हीं का पाल कर रहा था।" इस पर विश्वामित्र ने राजा से दान मॉगा। राजा ने कहा– "उसका पुत्र, उसकी पत्नी, उसका अपना जीवन, उसका शरीर, उसकी धन–सम्पदा, राज्य, राजधानी और सौभाग्य आदि सब कुछ प्रस्तुत है, कुछ भी मॉग ले "विश्वामित्र ने राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मांगी राजा सहमत हो गया साथ ही

न सही सत्य के निकट अवश्य है और हम इस परिणाम पर पहुचते है कि ब्राह्मणा के जिन अशों मे केवल तीन वर्णो का वर्णन है, ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से पहले लिखे गये है।

पुरुष सूक्त के इस विश्लेषण– विवेचन से यह सिद्ध होता है कि पुरुष सूक्त बाद की रचना है जो कालान्तर मे ऋग्वेद मे ठूस दी गयी है तथा आर्य–समाज में आदि से ही चार वर्णो की व्यवस्था नहीं थी।

उक्त तथ्यों से यह सिद्ध हो गया है कि पुरुष सूक्त की वर्ण–व्यवस्था सम्बन्धी प्रामाणिकता निराधार है। अत' यह कहने मे कोई सकोच नहीं कि एक समय था जब आर्यो मे केवल तीन वर्ण थे और शूद्रो की गणना दूसरे वर्ण अर्थात् क्षत्रिय वर्ण में की जाती थी।

9. ब्राह्मण और शूद्र

"शूद्र क्षत्रिय थे और कालान्तर मे अपने–दूसरे वर्ण से गिरकर चतुर्थ वण बने" यह समस्या का पूर्ण समाधान नहीं है। यहाँ एक नया प्रश्न उटता है कि उनका पराभव कैसे हुआ?

यह प्रश्न क्या है और पहले कभी भी किसी ने नही उठाया। वर्तमान साहित्य मे इसका कोई तर्कसंगत समाधान भी उपलब्ध नहीं है। खैर, प्रश्न मैंने उठाया है अत इसके उत्तर के लिये साक्ष्य–प्रमाण प्रस्तुत करना भी मेरा अपना दायित्व है।

(1)

शूद्र राजा सुदास और ब्राह्मण ऋषि वशिष्ठ का सघर्ष एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसका जो भी वर्णन उपलब्ध है वह विरोधाभासो से परिपूर्ण है। मैंने इस को स्पष्ट और क्रमिक बनाने का प्रयास किया है। संघर्ष का मूल कारण जानने के लिये सर्वप्रथम वशिष्ठ और ऋषि विश्वामित्र का सम्बन्ध जान लेना आवश्यक है। दोनो घोर शत्रु थे। ऐसी कोई घटना नही जिसमे वे एकदूसरे के विरोधी न रहे हों। इसके निमित्त सत्यवृत, जिसको त्रिशंकू के नाम से जाना जाता है, की कथा प्रस्तुत है। हरिवश मे कथा इस प्रकार है –

"सत्यव्रत के पिता के आध्यात्मिक गुरु होने के नाते वशिष्ठ अयोध्या नगर और राज्य के साथ–साथ राजमहल का प्रशासन चलाते थे। पिता द्वारा वश–परम्परागत राजकीय अधिकारो से वचित किये जाने पर, वशिष्ठ द्वारा हस्तक्षेप न करने पर, वह

वशिष्ट से रुष्ट था। इसका स्पष्ट कारण एक यह भी था कि सत्यवृत कहता था कि "विवाह सप्तपदी पर पूर्ण होता है। जब मैंने कन्या का हरण किया, सातवीं भावर नही पडी थी। इतने पर भी सभी धर्म–नियमों के ज्ञात वशिष्ठ ने मेरा पक्ष नहीं लिया।" इसके विपरीत वशिष्ठ यह मानते थे कि उन्होने जो कुछ किया वह धर्मनुसार ही था। तात्पर्य यह कि सत्यव्रत का रोष दूर न हुआ। राजा की आज्ञा से सत्यव्रत को मौन धारण कराया गया जिसका उद्देश्य वह (सत्यव्रत) समझ न पाया। राजा का कहना था कि उसने यह सब वश की ख्याति को दृष्टि मे रखकर किया है। वशिष्ठ ने राजा का साथ दिया था। यह सब होते हुए भी वह सत्यव्रत को राजा बनाने का निश्चय कर चुके थे। प्रायश्चित के बारह वर्ष उपरान्त जब खाने योग्य मॉस न मिला तो उसने कमजोरी, क्रोध और भूख की ज्वाला से संतप्त होकर वशिष्ठ की कामधेनु को मारकर उसका मॉस स्वय तो भक्षण किया ही विश्वामित्र के पुत्रो को भी खिलाया। वशिष्ठ इससे क्रोध से पागल हो गये और उन्होने सत्यव्रत का नाम त्रिशकू अर्थात् तीन पाप करने वाला रख दिया।

त्रिशकू ने विश्वामित्र की पत्नी की भी सहायता की थी। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने त्रिशकू से "वर" मागने को कहा। त्रिशंकू ने सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा प्रकट की। बारह साल की अनावृष्टि के उपरान्त उन्होंने त्रिशकू को उसके पिता के सिहासन पर बैठाकर यज्ञ किया। शौर्य–पुज कौशिक मुनि ने देवों और वशिष्ठ के विरोध करने पर भी त्रिशकू को सदेह स्वर्ग भेज दिया।"

दूसरा प्रमाण त्रिशकू के पुत्र हरिश्चन्द्र की कहानी है जिसमे वशिष्ठ और विश्वामित्र परस्पर विरोध मे चित्रित किये गये हैं। विष्णु पुराण और मार्कण्डेय पुराण मे इसका विवरण इस प्रकार है–

"एक बार मृगया करते समय हरिश्चन्द्र ने स्त्रियो का क्रन्दन सुना। स्त्रियॉ विश्वामित्र के कठोरतम तप से व्याकुल होकर रो रही थीं। निर्बल की रक्षा करने के क्षात्रधर्म और गणेश जी से प्रेरित हरिश्चन्द्र ने हुंकार भरकर कहा "कौन पापी आग से खेल रहा है, मेरे होते हुए? आज वह मेरी प्रत्यंचा से छूटे वाणो से चिरनिद्रा मे सो जायेगा।" इस सम्बोधन से विश्वामित्र का क्रोध जाग उठा। वे सामने आये। हरिश्चन्द्र उनको देखकर पीपल के पत्ते की भॉति कॉंपता हुआ निवेदन करने लगा– "मुनिराज, ब्राह्मणो और अन्य विद्वानों द्वारा नियत राज्य–धर्म अर्थात् याचक को दान देना, निस्सहाय की रक्षा करना, शत्रुओं का दमन करना आदि राजा के कर्त्तव्य हैं। मैं तो उन्हीं का पाल कर रहा था।" इस पर विश्वामित्र ने राजा से दान मॉगा। राजा ने कहा– "उसका पुत्र, उसकी पत्नी, उसका अपना जीवन, उसका शरीर, उसकी धन–सम्पदा, राज्य, राजधानी और सौभाग्य आदि सब कुछ प्रस्तुत है, कुछ भी मॉग ले "विश्वामित्र ने राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मांगी राजा सहमत हो गया साथ ही

उसने ऋषि से "कुछ और भी मागने का अनुराध किया ऋषि ने सम्पूर्ण राज्य माग लिया केवल हरिश्चन्द्र, उसका पुत्र और पत्नी छोडकर। हरिश्चन्द्र सहर्ष तैयार हो गया। तब ऋषि ने उससे वस्त्राभूषण उतार वल्कल धारण कर राजधानी से चले जाने को कहा। जब हरिश्चन्द्र अपने पुत्र और पत्नी के साथ जाने लगे, विश्वामित्र ने दक्षिणा मागी। राजा ने कहा– "मेरे पास स्वय अपना शरीर, पत्नी और पुत्र को छोडकर कुछ भी तो नही है।" विश्वामित्र का उत्तर था– "ब्राह्मण को दिये वचन के अनुसार दान न देने से विनाश होता है। राजा भयभीत हो गया और एक मास की मोहलत मागकर, रोती–कलपती प्रजा को छोडकर, शिव की नगरी काशी जा पहुँचा। विश्वामित्र वहाँ इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। शैव्या ने हरिश्चन्द से आग्रह किया कि वह उसे बेचकर विश्वामित्र का पावना चुका दे। रोहिताश्व भूख से व्याकुल होकर "माँ, माँ, मुझे रोटी दो, पिताजी, पिताजी, मुझे रोटी दो" चिल्ला रहा था। यह देखकर हरिश्चन्द्र पत्नी को बेचने को सहमत हो गया। वह शैय्या को बाजार मे ले जाकर दासी के रूप मे बेचने के लिये आवाजे लगाने लगा। एक धनिक वृद्ध ने उसको घर का काम–काज करने के लिये क्रय कर लिया। शैव्या को वृद्ध के साथ जाते देख बालक "माँ, माँ" कहकर उसके पीछे भागा और उससे चिपट गया। रानी ने क्रेता से निवेदन किया– "इसके बिना मै आपके लिये व्यर्थ सिद्ध होऊँगी। अतः कृपा करे और मेरे पुत्र को मुझ से अलग न करे।" क्रेता ने आवश्यक धन देकर रोहिताश्व को भी खरीद लिया। विश्वामित्र के आने पर राजा ने पत्नी और पुत्र के विक्रय से प्राप्त धन उन्हे दे दिया। ऋषि क्रोधित हुए और बोले– "राजन, तुम यह सोचते हो कि मै इस अल्प राशि से संतुष्ट हो जाऊँगा, यह तुम्हारी भूल है। तुमने मेरा क्रोध अभी देखा नहीं है।" हरिश्चन्द्र के कुछ और भी देने के आश्वासन पर ऋषि ने कहा– "आज शाम तक मेरी दक्षिणा मुझे हर हालत मे मिल ही जानी चाहिये। अन्यथा परिणाम भयकर होगे।" भयभीत राजा ने विश्वामित्र के जाते ही स्वय को भी बोली पर चढा दिया। तब धर्मराज ने छद्‌म वेष धारण कर चाण्डाल के रूप मे प्रकट होकर राजा को उसके (राजा के) मुँह मागे दामों पर खरीदने की इच्छा व्यक्त की। इस पर हरिश्चन्द्र ने कहा– "मै विश्वामित्र के शाप से जलकर मरना पसद कर लूँगा किन्तु चाण्डाल का नौकर न बनूँगा।" विश्वामित्र प्रकट होकर उसे इतनी बडी रकम अस्वीकार करने का कारण पूछते हैं। वह अपने सूर्यवश की प्रतिष्ठा की बात कहता है। विश्वामित्र उसे शाप का भय दिखाते हैं। वह पराभव से बचने के लिये ऋषि की दासता के लिये तैयार हो जाता है। ऋषि अवसर का लाभ उठाते है और कहते है– "तुम मेरे दास हो। मैं तुम्हे इस चाण्डाल के हाथो एक सौ लाख रुपयों में बेचता हूँ।" चाण्डाल प्रसन्न हो गया और वह हरिश्चन्द्र को बाँध कर मारता–पीटता धकियाता अपने निवास को ले चला। चाण्डाल ने हरिश्चन्द को शमशान मे कफन

एकत्रित करने का कार्य सौंपा। कफन का छटवां भाग राजा का वेतन नियत हुआ। इस भयावन स्थान पर राजा ने बारह महीने सौ वर्ष की दयनीय अवस्था की स्थिति के वातावरण मे व्यतीत किये। एक दिन वह अपने विगत जीवन की यादगार सजोता–सजोता सोया। प्रात जागने पर उसकी पत्नी अपने पुत्र, जो सर्प–दंश से मर गया था, का दाह करने के लिये शमशान आयी। प्रथम दृष्टि मे वे आकृति बदल जाने के कारण एक दूसरे को न पहचान सके। हरिश्चन्द्र ने स्वर से शैव्या को पहचान लिया और मूर्छित हो गया। रानी ने भी उसे पहचान लिया था, अत वह भी बेहोश हो गयी। चेतन्य होने पर राजा पुत्र के शोक मे रोने लगा। रानी पुत्र शोक से पहले ही व्यथित थी, राजा के पराभव से और भी टूट गयी और फूट–फूटकर रोने लगी। रानी ने राजा के वक्ष से लगकर पूछा– "यह स्वप्न है या सत्य। यह सत्य ही भयकर है। यदि यह सत्य भी हो तो धर्म का पालन करने वालो के लिये तो और भी कठोर है।

बिना कर चुकाये शव–दाह हो नही सकता था और शैव्या के पास कुछ था नहीं। वह रानी के साथ ही जल मर मरने को तैयार होता है और एतदर्थ पुत्र के शव को चिता पर रख कर हरिनारायण कृष्ण का स्मरण करने लगा। अकस्मात धर्मराज सभी देवताओ और विश्वामित्र के साथ प्रकट हुए और राजा को आत्मघात से रोका। इन्द्र ने घोषणा की कि राजा, रानी और राजकुमार ने अपने पुण्यों से स्वर्ग को जीत लिया है। आकाश से पुष्प–वर्षा हुई। राजकुमार जीवन्त और पूर्ण युवा हो गया। राजा रानी और राजकुमार को राजसी वस्त्राभूषण से अलकृत किया गया। हरिश्चन्द्र ने अपने स्वामी चाण्डाल की अनुमति के बिना स्वर्गारोहण की बात अस्वीकार कर दी। धर्म ने बताया कि उसका स्वामी वह स्वय है और एतदर्थ उन्होने चाण्डाल का छद्म वेश राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। राजा ने एक और तर्क दिया– "वह अपने सुख–दु ख की साथी प्रजा की अनुमति के बिना स्वर्ग कैसे जा सकता है।" इन्द्र ने उसे एक दिन का समय दिया। विश्वामित्र द्वारा रोहताश्व का राज्याभिषेक करने पर हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी, मित्रों, सहयोगियों और अनुयायियों सहित स्वर्गारोहण कर गये। हरिश्चन्द्र के कुलपुरोहित वशिष्ठ को यह समाचार उनके बारह वर्ष तक जल मे खडे होकर तपस्या करने की समाप्ति पर मिला। ब्राह्मण और देवताओ के प्रति निष्ठावान राजा की विश्वामित्र के हाथो हुई दुर्दशा पर उन्हे बहुत क्रोध आया। उन्होने विश्वामित्र को शाप दिया– "ब्राह्मणो के शत्रु विश्वामित्र, तुम विद्वज्जनो की सगति से बहिष्कृत होओ। तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो जाये। और तुम बक बनो।" विश्वामित्र ने श्राप का उत्तर श्राप से दिया– "तुम अरी चिडिया बनो।" दोनो के श्राप फलीभूत हुए।

पारणामस्वरूप दोनो मे– बक और अरी चिडियो के रूप मे – भयकर युद्ध हुआ। दोनो ने एक दूसरे के पंख नोच डाले। पखो की फडफडाहट से तेज ऑधियॉ चलने लगी, पर्वत ढहने लगे और पृथ्वी अपनी धुरी छोडकर पाताल की ओर बढने लगी। असख्य प्राणी अपना जीवन खो बैठे। इस भयानक प्रलयस्वरूपी अव्यवस्था से चिन्तित होकर सभी देवताओ के साथ ब्रह्मा प्रकट हुए और युद्ध रोकने का प्रयास करने लगे। दोनो खूॅखार थे अत लडना बन्द न किया। लाचार हो झगडे का अन्त करने के लिये ब्रह्मा ने उन दोनों को उनके वास्तविक रूप मे ला दिया और समझौता करने मे मध्यस्थता की।"

एक और अन्य कथा है अयोध्या के राजा अम्बरीष की जिसमे दोनो– वशिष्ठ और विश्वामित्र – प्रतिद्वन्दी रहे। वह इस प्रकार है–

"अम्बरीष यज्ञ कर रहे थे। इन्द्र ने "बलि" का अपहरण कर लिया। राजा के पुरोहित का कहना था कि राजा के कुप्रशासन का परिणाम है और इससे विनाश होगा। अत इससे बचने के लिये मानव बलि का प्रस्ताव किया गया। राजा बलि की खोज मे भृगुवंशी ऋषि ऋचिक के पास पहुॅचे और उनके ज्येष्ठ पुत्र को एक सहस्र गौओ के बदले बलि के लिये माँगा। ऋषि ने मना कर दिया। ऋषि–पत्नी ने सबसे छोटे पुत्र को यह कर कि "छोटे पुत्र मॉ के आज्ञाकारी होते है" बेचने से मना कर दिया। दूसरे पुत्र शुन शेप ने यह मानकर कि वह ही बेचा जा रहा है "बलि" बनने की इच्छा प्रकट की। एक सौ गायो, एक करोड स्वर्ण मुद्राओ और अजुलि–भर रत्नो के मूल्य पर शुनशेप को ले जाया गया। जब वे जा रहे थे, शुन शेप को पुष्कर मे यह पता चला कि उसके मामा विश्वामित्र अन्य ऋषियो के साथ वहॉ तपस्या कर रहे है। वह भाग खडा हुआ और विश्वामित्र की बाहों मे छुप अपनी निस्सहायावस्था की गाथा सुनाकर उनसे मदद मॉगने लगा। विश्वामित्र ने उसे सात्वना दी और अपने पुत्रों से शुनशेप के स्थान पर "बलि" बनने को कहा। पुत्रो के मना कर देने पर वे क्रोधित हो उठे। उन्होंने अपने पुत्रो को शाप दिया– "वशिष्ठ–पुत्रो की तरह अधम जाति में जन्म लेकर एक हजार साल तक तुम कुत्तो का मास खाओ।" वे फिर शुनशेप से कहने लगे– "जब तुमको सजाकर यज्ञ खम्भ से बॉधा दिया जाये तब तुम इन दो गाथाओं से अग्नि की आराधना करना। तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायेगी।" गाथाओं से सम्पन्न शुन.शेप अम्बरीष के साथ चला गया। अयोध्या पहुॅचकर उसे लाल वस्त्रों से सजाकर यज्ञ खम्भ से बॉध दिया गया। शुनशेप ने इन्द्र और उनके अनुज विष्णु की आराधना मे दो अद्वितीय गाथायें गायीं। इन गोपनीय गाथाओं से इन्द्र प्रसन्न हुए और उन्होने शुनशेप को दीर्घायु प्रदान की।"

तीसरा प्रमाण महाभारत के आदि पर्व मे वर्णित राजा कल्माषपाद की कहानी है

"कल्माषपाद इक्ष्वाकु वंश का राजा था। विश्वामित्र उसके पुरोहित बनना चाहते थे लेकिन राजा ने वशिष्ठ को प्राथमिकता दी। एक बार राजा आखेट के लिये गया। दिनभर के आखेट से वह थक गया था और भूख–प्यास से व्याकुल था। रास्ते मे उसे वशिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति मिले। राजा ने उनसे रास्ते से हटने को कहा। शक्ति ने उत्तर दिया– "राजन, प्राचीन नियम है कि राजा को चाहिये कि वह ब्राह्मण के लिये मार्ग छोड दे। अस्तु, रास्ता मेरा है, मै क्या हटूँ।" दोनो में कोई भी हटने को तैयार न हुआ और विवाद छिड गया। राजा ने क्रोध मे आकर शक्ति को कोडे से पीट दिया। शक्ति ने इस अभद्र व्यवहार से क्रोधित होकर राजा को नर–भक्षी बनने का श्राप दे दिया। यह सब उस समय हुआ जब वशिष्ठ और विश्वामित्र मे राजा कल्माषाद का पुरोहित बनने की प्रतिस्पर्धा चल रही थी। विश्वामित्र ने अप्रकट रूप मे राजा के शरीर मे राक्षस का प्रवेश कर दिया ओर समझौते के सारे मार्ग ही रोक दिये। समझोता न हो सका। उसी समय एक भूखा ब्राह्मण राजा के पास आया। राजा ने उसके पास अपने रसोइये के हाथों मानव–मॉस खाने के लिये प्रस्तुत किया। ब्राह्मण क्रोधित हुआ और शक्ति के समान ही श्राप देकर चला गया। श्राप की शक्ति बढ जाने से शीघ्र प्रभाव हुआ और राजा का प्रथम शिकार शक्ति स्वय बने। वशिष्ठ के अन्य पुत्रो की भी यही दशा हुई। यह दुस्समाचार वशिष्ठ को मिला, किन्तु वे पर्वत की तरह अटल बने रहे। उन्होने अपना अन्त करने का निर्णय किया और वे पर्वत की उच्चतम चोटी से कूद गये। वे चट्टानों पर गिरे किन्तु शरीर पर खरोच तक न आयी। वे जंगल की आग में कूदे, जल न सके। गले में पत्थर बांधकर समुद्र मे गिर किन्तु लहरें उन्हें बंधन–रहित कर तट छोड गयी। जब किसी तरह उनका अन्त न हो सका, वह अपने आश्रम लौट आये। अपने आश्रम को उजाड देखकर वे दु ख में डूब गये और एक बार फिर अपना अन्त करने के लिये विपासा के तट पर जा पहुँचे। नदी मे भयकर बाढ आयी हुई थी। असंख्य वृक्ष तट से उखड कर बहे जा रहे थे। ऋषि ने इसे आत्मघात के लिये उपयुक्त समझा। उन्होने अपने हाथ–पैर मजबूती से बॉधे और विपासा की उमडती लहरों में कूद पड़े। यहॉ भी वे बच गये, लहरे उन्हे शुष्क भूमि पर पटक गयी थीं। उन्होंने शतदु (सतलुज) मे जिसमे असख्य मकर रहते थे, छलांग लगायी। मकर वशिष्ठ के तेज से डरकर भाग ग्ये। परिणाम यह कि अनेक प्रयास करने पर भी वह अपना अन्त करने मे असमर्थ रहकर पुन अपने आश्रम में लौट आये।"

वशिष्ठ और विश्वामित्र की शत्रुता के ये कुछ उदाहरण हैं। दोनो में प्राय सघर्ष चलता ही रहता था। संघर्ष का क्रम इतना अटूट था कि एक बार तो स्वय विश्वामित्र वशिष्ठ की हत्या कर देने पर उतारू हो गये थे। महाभारत के शल्य पर्व में लिखा है–

वशिष्ठ और विश्वामित्र मे तपश्चर्या की प्रतिस्पर्धा के कारण घोर शत्रुता थी। स्थाणुतीर्थ मे वशिष्ठ का विशाल आश्रम था। विश्वामित्र का आश्रम उनके आश्रम के पूर्व मे था। दोनो मे घोर तपस्या के लिये होड लगी रहती और नित्य नये प्रदर्शन देखने को मिलते। वशिष्ठ की शक्ति से विश्वामित्र चिढ़े हुए थे। वे उन पर श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिये गहन चिन्तन मे डूबे रहते थे।

एक बार उनको विचार आया कि यदि सरस्वती की लहरों में बहकर वशिष्ठ उनके निकट आ जाये तो उनकी हत्या कर दी जाए। विश्वामित्र को आशा बधी उनका क्रोध जाग उठा और बदले की भावना से उनके नयन लाल हो गये। उसी मुद्रा मे उन्होंने सरिताओं की साम्राज्ञी सरस्वती का आवाहन किया। विधवा जैसे वेश मे भयभीत पीत–बदन सरस्वती उपस्थित हुई और करबद्ध हो विश्वामित्र से बोली– "आज्ञा कीजिये, मुनिवर।" विश्वामित्र ने आदेश दिया– "वशिष्ठ को शीघ्र यहाँ ले आओ, मै उनका वध करूँगा।" सरस्वती थर–थर कॉपने लगी। विश्वामित्र ने अपनी आज्ञा दोहरायी। कमलाक्षी सरस्वती जानती थी कि कौशिक मुनि का यह कृत्य पापमय है। साथ ही वह वशिष्ठ की शक्ति से भी परिचित थी। फिर भी वह डरती–कांपती वशिष्ठ के पास गयी विश्वामित्र की इच्छा से उन्हें अवगत कराया। वशिष्ठ ने भयाक्रान्त सरस्वती को सान्त्वना दी और कहा– "तुम मुझे शीघ्र उनके पास ले चलो, अन्यथा वह तुम्हें शाप दे बैठेगे"। सरस्वती ने मन ही मन सोचा– "वशिष्ठ मेरे प्रति सदा दयालु रहे हैं, अत मुझे बुद्धि से काम लेकर उनका कल्याण करना चाहिये।" उसने ऐसा सोच वशिष्ठ को अपनी लहरो के मध्य ले लिया और उन्हे बहाती हुई विश्वामित्र के आश्रम की ओर ले चली। जल में बहते हुए वशिष्ठ सरस्वती की स्तुति करने लगे– "हे सरस्वती, तुम ब्रह्मा के कमण्डल से निकलकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर बहती हो, शून्य मे रहकर बादलो को पानी देती हो। तुम्हीं समस्त जल हो। तुम बल, तेज, यश, बुद्धि और प्रकाश हो। तुम वाणी हो, तुम स्वाहा हो तुम्हीं समस्त प्राणियो मे चार रूपो मे वास करती हो।" वशिष्ठ को सरस्वती के जल मे बहकर अपने निकट आया देख विश्वामित्र किसी शस्त्र की खोज करने लगे। ब्राह्मण – हत्या और विश्वामित्र के क्रोध से बचने के लिये सरस्वती तीव्र वेग के साथ वशिष्ठ को पूर्व की ओर बहा ले चली। इससे, सरस्वती के अनुसार, दोनों ऋषियो की आज्ञा का पालन हो गया और वशिष्ठ की जान भी बच गई। वशिष्ठ को अपने निकट से दूर जाता देख विश्वामित्र ने क्रोध में आकर सरस्वती को शाप दे दिया– "हे नदियो की रानी, सरस्वती, तूने मेरी उपेक्षा की है इसलिये तेरी लहरों में रक्त बहे।" श्राप–ग्रस्त सरस्वती मे एक साल तक रक्त बहता रहा। राक्षस उस तीर्थ स्थल पर आये। रक्त –जल पीकर वे हर्षोन्मत हो नाचने–हॅसने लगे मानो उन्होने स्वर्ग जय कर लिया हो। कालान्तर मे कुछ ऋषिगण वहॉ आये। सरस्वती के जल

मे रक्त–मिश्रण और राक्षसों की किल्लोल देखकर वे सकते मे आ गये। उन्होने अपने उद्योगी प्रयासो से सरस्वती को विश्वामित्र के श्राप से मुक्ति दिलायी।'

विश्वामित्र और वशिष्ठ की शत्रुता दो पुरोहितों की शत्रुता न होकर एक क्षत्रिय पुरोहित और एक ब्राह्मण पुरोहित की शत्रुता थी। वशिष्ठ ब्राह्मण थे और विश्वामित्र क्षत्रिय। वे राजवश के क्षत्रिय थे। ऋग्वेद (3 33 11) मे विश्वामित्र को कुशिक का पुत्र बताया गया। विष्णु पुराण के अनुसार वह पुरु के वंशज गाधि के पुत्र थे। हरिवश भी इस मत की पुष्टि करता है। ऋग्वेद (3 1 21) से पता चलता है कि विश्वामित्र के परिवार–वश ने कई पीढियों तक यज्ञाग्नि जलाये रखी थी तथा विश्वामित्र ऋग्वेद के मत्रो के अनेक दृष्टा–सृष्टा थे। वे राजर्षि माने जाते थे। वह ऋग्वेद (3 62 10) के गायत्री मन्त्र के दृष्टा थे। उनके विषय मे एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य हमें यह भी मालूम हे कि वह भरतवशी क्षत्रिय थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणो और क्षत्रियो के मध्य निम्नाकित बातो को लेकर वैमनस्य था –

1 उपहार (दक्षिणा) लेना। उपहार का अर्थ है बिना काम किये धन प्राप्त करना। ब्राह्मणों का कहना था कि यह ब्राह्मणों का अधिकार क्षेत्र है अत अन्य कोई दक्षिणा नही ले सकता।

2 वेदो की शिक्षा का अधिकार। ब्राह्मणो के अनुसार क्षत्रिय वेदाध्ययन तो कर सकते है किन्तु वे वेदो की शिक्षा नहीं दे सकते। यह ब्राह्मणों का विशेषाधिकार है।

3 यज्ञ–पुरोहित बनना। ब्राह्मण कहते थे कि क्षत्रिय यज्ञ तो कर सकता है किन्तु वह यज्ञ–पुरोहित नहीं बन सकता। यह अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही प्राप्त है।

उक्त तीन बातों और विशेषकर तीसरी बात पर वे एक दूसरे के विरुद्ध रहे। और इसकी पुष्टि त्रिशकू की कथा से होती है। रामायण मे त्रिशकु की कथा इस प्रकार है –

"इक्ष्वाकु वशीय राजा त्रिशंकू ने ऐसा यज्ञ करने का विचार किया जिसके फल से वह सशरीर स्वर्गारोहण कर सके। वशिष्ठ को आमंत्रित किया गया। वशिष्ठ के इनकार कर देने पर त्रिशंकू ने दक्षिण जाकर वशिष्ठ–पुत्रो को पूरी बात बताकर यज्ञ सम्पन्न कराने का विनम्र निवेदन किया "इक्ष्वाकु वंश के राजा अपने कुल–पुरोहित के संकट में सहायक होते हें। फिर, वशिष्ठ महोदय के उपरान्त आप ही हमारे कुल–पुरोहित होंगे।" नम्र निवेदन के बदले त्रिशंकू को वशिष्ठ–पुत्रो के क्रोध–भरे

शब्द सुनने पडे। उन्होने कहा– "मूर्ख, तू अपने सत्यभाषी गुरु के मना करन पर भी दूसरो के पास आया है। इक्ष्वाकुओ के लिये कुल–पुरोहित सर्वोच्च देवता होता है और उसकी आज्ञा भग नहीं की जा सकती। वशिष्ठ के मना करने पर हम यज्ञ कैसे करा सकते हैं। जा, अपनी राजधानी लौट जा। वशिष्ठ मे त्रैलोक्य का पुरोहित बनने की सामर्थ्य है, हम उनकी अवज्ञा नहीं कर सकते।" निराश त्रिशकू ने कहा– "उसके गुरु और गुरु–पुत्रो ने उसकी विनय ठुकरा दी है। अस्तु, वह कोई अन्य युक्ति करेगा। "यह सुनकर वशिष्ठ–पुत्रो ने क्रोध मे आकर राजा को श्राप दिया– "तू, चाण्डाल हो।" श्राप से राजा की आकृति बदल गयी। वह अपने अभाग्य पर पश्चाताप करता हुआ विश्वामित्र के पास पहुँचा। ऋषि विश्वामित्र सौभाग्यवश उन दिनों दक्षिण मे ही थे। उसकी दुर्दशा पर द्रवित हो उसका यज्ञ सम्पन्न कराने का वचन दिया और घोषणा की कि वह अपने गुरु–पुत्रो के शाप स्वरूप प्राप्त चाण्डाल के रूप मे ही स्वर्गारोहण करेगा। उन्होंने उसे आश्वस्त किया– "तू कौशिक के पास आया है। अतः अब स्वर्ग तेरे अपने हाथो में ही है।" उन्होंने राजा को यज्ञ की तैयारी करने तथा वशिष्ठ–परिवार सहित सभी ऋषियों को आमंत्रित करने का आदेश दिया।"

सदेश को प्रचारित करने वाले विश्वामित्र के शिष्यो ने आकर सूचना दी– "वशिष्ठ के अतिरिक्त देश–देशान्तर के ब्राह्मण एकत्रित हो रहे हैं। वशिष्ठ और उनके पुत्रों ने जिन कटु शब्दों का प्रयोग किया है वह आप सुनें– "जिस यज्ञ का होता चाण्डाल हो और पुरोहित क्षत्रिय हो, उसका नैवेद्य देव और ऋषि कैसे ग्रहण कर सकते हैं? चाण्डाल के भोजन को स्वीकार करने पर ब्राह्मण स्वर्ग कैसे प्राप्त करेगे?" यह सुनकर विश्वामित्र को बडा गुस्सा आया। उन्होंने वशिष्ठ–पुत्रो को भस्म होकर पुनर्जन्म में सात सौ वर्ष तक "मृतप" का जीवन जीने का श्राप दिया। उन्होने वशिष्ठ को निषाद बनने का श्राप दिया।

श्राप के फलित होने पर विश्वामित्र ने एकत्रित ऋषियों से यज्ञ कराने का कहा। मुनि के भय से वे सब सब तैयार हो गये। विश्वामित्र ने "याजक" और अन्य ऋषियो ने "ऋत्विज" के रूप में यज्ञ सम्पन्न कराया।"

वशिष्ठ और विश्वामित्र के संघर्ष में सुदास की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। वशिष्ठ सुदास के कुल–पुरोहित थे। उन्होने उसका राज्याभिषेक तो किया ही था दसराज्ञ – युद्ध मे विजय प्राप्त करने मे भी उसकी सहायता की थी। इतने पर भी सुदास ने वशिष्ठ को हटाकर विश्वामित्र को अपना कुल–पुरोहित नियुक्त कर लिया। इस कृत्य से वशिष्ठ और सुदास के मध्य शत्रुता पैदा हो गयी। सुदास ने वशिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति को जीवित ही अग्नि में डलवाकर मार डाला था। इससे

शत्रुता और भी घनीभूत हो गयी। सत्यायन ब्राह्मण की इस कथा मे इस वीभत्स कृत्य का कारण स्पष्ट नही किया गया है। किन्तु ऋग्वेद की कात्यायन–अनुक्रमणिका की टीका मे सद्‌गुरुशिष्य ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है–

"सुदास ने यज्ञ किया। वहाँ विश्वामित्र और वशिष्ठ के पुत्र शक्ति मे विवाद हो गया। शक्ति ने विश्वामित्र के बल और वाक्शक्ति को पूर्णत परास्त कर दिया। पराजय से कौशिक मुनि शोक–सतप्त हो गये।"

सुदास द्वारा शक्ति को जीवित जलाने का यह कारण एक पुष्ट कारण है। विश्वामित्र के अनादर और पराभव का बदला लेने के ध्येय से ही सुदास ने शक्ति को अग्नि मे डलवाकर मार डाला होगा। इससे सुदास और वशिष्ठ में शत्रुता और भी बढ गयी।

यह शत्रुता और वैमनस्य सुदास और वशिष्ठ तक ही सीमित न रही। उनके बाद उनके पुत्रो में भी यह चली। तैत्तिरीय सहिता ने इस अभिमत की पुष्टि इस प्रकार की है:–

"वशिष्ठ ने अपने पुत्र के वध के उपरान्त सुदास के पुत्रो स बदला चुकाने के लिये सतति की कामना की। एतदर्थ उन्होंने यज्ञ किया और सतति–लाभ कर सुदास के पुत्रो को विजित किया।"

2

राजाओं और ब्राह्मणो के संघर्ष मे वशिष्ठ और सुदास का कलह ही एकमात्र उदाहरण नही है। राजाओ और ब्राह्मणों के मध्य कलह के अनेको वृतान्त पुराणो में सुलभ हैं। उनमे से कुछ का संकलन यहाँ उचित रहेगा। प्रथम वृतान्त राजा वेण का है। हरिवश के अनुसार कथा इस प्रकार है:–

"अत्रि–कुल मे अंग नामक प्रजापति थे। उनका, मृत्यु–पुत्री सुनीता के गर्भ से उत्पन्न पुत्र प्रजापति वेण अत्यन्त कामी और विलासी था। राजा वेण वेद–विधान के विपरीत आचरण करता था। अस्तु, सर्वत्र अव्यवस्था का वातावरण पनपने लगा था। उसके राज्य मे वेद–पाठ नही होता था, धार्मिक अनुष्ठानो जैसे यज्ञ आदि नहीं होते थे। और यही नहीं, देवगण भी यज्ञ के अवसर पर सोमपान नहीं कर पाते थे। राजा की आज्ञा थी– "मैं यज्ञ, यज्ञ का होता और यज्ञ का निमित्त स्वय हूँ। अस्तु, यज्ञ मेरे निमित्ति किये जाय, नैवेद्य मुझे ही अर्पित किया जाय।" इस "दुराचरण" पर प्रतिबन्ध लगाने के ध्येय से मारीचि के नेतृत्व मे समस्त ऋषिगण राजा वेण के पास आये और बोले– "राजन्, आप अत्रिकुल के प्रजापति है। प्रजा

के कल्याण का कार्य आपका दायित्व है। हम अनेक वर्षो तक चलने वाला एक अनुष्ठान कर रहे हैं। कृपया तब तक आप अपना वेद–विरोध स्थगित रखे। यह आपकी गरिमा के विपरीत है।" वेण ने अवज्ञा के स्वर में उत्तर दिया– "मै कर्त्तव्य का निदेशक स्वयं हूँ। अत किसी अन्य की आज्ञा मानूँ ही क्यो। सम्पूर्ण जगत मे मेरे सदृश कोई धार्मिक, वीर, तेजस्वी और सत्य–पालक है क्या? तुम सब बहके हुए हो, मूर्ख हो जो इतना भी नहीं जानते कि मै समस्त जीव–पदार्थो का स्रोत हूँ। मै यदि चाहूँ, तो पृथ्वी को जलाकर भस्म कर दूँ, समुद्र मे डुबो दूँ और स्वर्ग और पृथ्वी को एक कर दूँ।" वेण के इस गर्व से ऋषियो को क्रोध आ गया। उन्होने उसे पकड लिया। राजा के प्रतिरोध करने पर भी उन्होने उसकी बायी जघा का मथन कर किया। उसे मंथन के फलस्वरूप नाटे कद का एक कृष्णांग पुरुष उत्पन्न हो हाथ जोड कर खडा हो गया। अत्रि ने आज्ञा दी– "बैठ जाओ।" उससे निषाद–वश चला। वह धीवरो (मछेरो) का पूर्वज था।"

मनु वैवस्वत का पौत्र और इला–पुत्र पुरुरवा दूसरा राजा था जिसका कलह ब्राह्मणो से हुआ। महाभारत के "आदि पर्व" मे उसका वर्णन इस तरह मिलता है

"कालान्तर मे इला ने पुरुरवा को जन्म दिया। हमने यह सुना है कि वह स्वय ही अपनी माता और पिता था। उस यशस्वी का राज्य समुद्र के तेरह द्वीपो तक विस्तृत था। शूरता के मद में वह ब्राह्मणों से उलझ बैठा और उनके प्रतिरोध करने पर भी उसने उन्हें लूट लिया। स्वर्ग से सनत कुमार ने आकर उसे समझाया किन्तु उस पर कोई असर न हुआ। इससे कुपित होकर ऋषियो ने उसे श्राप दिया जिसके फलीभूत होने से वह मतिभ्रष्ट घमण्डी राजा विनाश को प्राप्त हुआ।"

इसी क्रम मे तीसरा राजा पुरुरवा का पौत्र नहुष है। (पुरुरवा की कथा आप ऊपर पढ ही चुके हैं।) नहुष और ब्राह्मणो के कलह की कथा महाभारत के दो पर्वो– वन पर्व तथा उद्योग पर्व– मे वर्णित हैं। निम्नाकित उदाहरण उद्योग पर्व से सकलित है। देखे –

"वृत्र के सहार के पश्चात् ब्रह्म–हत्या के पाप से डर कर इन्द्र जल मे जा छुपे। (वृत्र को ब्राह्मण कहा गया है।) इन्द्र की अनुपस्थिति से स्वर्ग और ससार के कृत्यो मे व्यवधान उपस्थित होने लगा। ऋषियो और देवताओ ने नहुष से स्वर्ग का राजा बनने का अनुरोध किया। नहुष तैयार न हुआ किन्तु अधिक अनुनय–विनय करने पर तैयार हो गया। इन्द्र बनने, पर वह धार्मिक राजा विलासी और इन्द्रिय–दास बन गया। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि वह इन्द्र–भार्या शची को भोगने की कामना करने लगा और एतदर्थ उसने शची को बुला भेजा। शची डरकर देव पुरोहित

अगीरस बृहस्पति की शरण मे आ पहुचो। इस हस्तक्षेप से नहुष कुपित हुआ। देवाताओं ने "पर–स्त्री–गमन पाप है" कहकर उसे शान्त करना चाहा। वह किसी भी प्रतिरोध को मानने को तैयार न था। उसका कहना था– "अहिल्या को उसके पति के होते हुए भी इन्द्र ने भोग कर भ्रष्ट किया था, क्या आप तब इन्द्र को रोक पाये थे। अनेक अनुचित और छल–छद्‌ममय कृत्यो से आपने इन्द्र को क्यों नही रोका।" लाचार देवगण शची को लेने गये किन्तु बृहस्पति सहमत न हुए। हॉ बृहस्पति के परामर्श पर शची ने कुछ मोहलत मागी। इस मोहलत के पीछे यह रहस्य था कि वह अपने पति की खोज करे और उसे ढूँढ निकाले। अनुमति प्राप्त होते ही वह उसकी खोज मे निकल पडी। रात्रि–देवी उपश्रुति के सहयोग से उसने हिमालय के उत्तर मे एक सरोवर के मध्य एक कमल–दण्ड में इन्द्र को खोज लिया और नहुष की पापेच्छा से अवगत कराया। नहुष की शक्ति से परिचित इन्द्र ने विवशता प्रकट की। इसके साथ ही उसने शची को एक युक्ति बतायी। शची ने लौटकर इन्द्र की योजना के अनुसार नहुष को सवाद प्रेषित किया– "देवराज मै आपकी कामना करने लगी हूँ। आप विष्णु, रूद्र, असुर और राक्षसो के लिये अपरिचित और सप्तऋषियो समेत प्रमुख ऋषियों के कंधो पर उठाये हुए अलौकिक वाहन मे बैठकर आये। मै प्रसन्नतापूर्वक समर्पण कर सकूँगी।" नहुष ने प्रत्युत्तर मे कहा– "हे सुन्दरी! ऐसा ही होगा। मैं भूत, भविष्य और वर्तमान का स्वामी हूँ। मेरे क्रोध करने पर वसुधा भी नही टिक सकती। मेरे बल–पराक्रम का क्या अर्थ यदि मैं तुम्हारी यह इच्छा पूरी न कर सका। मेरा सर्वस्व विश्वास रखो, सप्तर्षि एव अन्य ऋषियो के द्वारा उठाये गये वाहन मे बैठकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगा।

नहुष की आज्ञा से, उसकी शक्ति से भयभीत ऋषि, पालकी उठाकर चले। चलते–चलते उन्होने राजा से पूछा– "हे वासव, यज्ञ के अवसर पर उच्चाटित पूर्व ऋषियो के ब्रह्म–वाक्यो का सम्मान करते है न "राजा ने उत्तर दिया– "नही! "लेकिन हम उनके वचनों–उपदेशो का पालन करते हैं। आप अधर्म मे प्रवृत्त हो सत्य की उपेक्षा क्यो करते है।" इस असामयिक विवाद से नहुष ने क्रोधित हो प्रश्नकर्ता ऋषि अगस्त के सिर पर पद–प्रहार किया और कहा– "इसलिये।" नहुष के इस व्यवहार से समस्त ऋषि कुपित हो उठे। अपमानित ऋषि अगस्त ने श्राप दिया कि जिस तेज और बल–पराक्रम के बल पर उसने पूर्व ऋषियों के द्वारा स्थापित आचार–सहिता का उल्लंघन कर ऋषियो को पालकी उठाने को बाध्य किया है और मेरे सिर पर पाद–प्रहार किया है, वह क्षीण हो जाय। तू स्वर्ग से पतित होकर दस सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर अजगर बनकर रहे।" श्राप फलीभूत हुआ।

नहुष के इस पतन का समाचार देते हुए कश्यप ने इन्द्र से अनुरोध किया कि वह स्वर्ग लौटकर अपना राज्य संभाले।

ब्राह्मणों से कहल करने वाला चौथा राजा निमि था। विष्णु पुराण मे निमि की कथा इस प्रकार ह –

"निमि न एक हजार वर्ष मे पूरा होने वाला यज्ञ करने का निश्चय किया ओर इसके लिये वशिष्ठ को बुलाया। वशिष्ट ने उत्तर दिया कि वह पहले ही पॉच सौ वर्ष के लिये इन्द्र के प्रति वचनबद्ध हैं। अस्तु, उसके पश्चात ही वह आयेगे। राजा मौन रह गया। वशिष्ठ ने यह स्वीकृति/सहमति समझी और चले गये। पॉच सौ वर्ष के उपरान्त जब वशिष्ठ वापस आये तो देखा कि राजा निमि यज्ञ कर रहे हे और गौतम यज्ञ करा रहे है। उन्होंने इसे अवज्ञा मानकर राजा का उसकी सुप्तावस्था मे ही श्राप दे दिया कि वह भौतिक शरीर छोड़ दे अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो। राजा निमि ने जागने पर बिना किसी चेतावनी और अकारण वशिष्ठ के श्राप देने पर उनको उनके समान ही श्राप दिया और शरीर त्याग दिया। निमि का पार्थिव शरीर सुरक्षित रख दिया गया। यज्ञ के पूर्ण होने पर देवताओ ने राजा को पुनर्जीवित करने की इच्छा के अनुसार निमि को समस्त जीवित प्राणियो की पलको पर प्रतिष्ठित कर दिया। इसीलिये पलकों को झपकने मे लगने वाला समय "निमेष" कहलाता है।"

उपरोक्त सघर्ष–कथाआ का वर्णन मनुस्मृति मे इस प्रकार किया गया है–

"गर्व के वशीभूत अनेक राजा नष्ट हुए। गर्व की त्याग करने पर अनेक वन–तपस्वी राज्य–पद पर सुशोभित हुए।

गर्व के कारण राजा वेण का विनाश हुआ। कालान्तर मे उसी प्रकार गर्वोन्मत नहुष, पिजवन–पुत्र सुदास और निमि भी विनाश को प्राप्त हुए।"

दुर्भाग्य की बात है कि इन सघर्ष–कथाओं के परिप्रेक्ष्य मे "शूद्र" का पूर्ण मूल्याकन नहीं किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि किसी ने यह समझने का प्रयास ही नहीं किया कि "ब्राह्मणो और क्षत्रियो के मध्य सघर्ष" के नाम से विभूषित सघर्ष वास्तव में ब्राह्मणों और शूद्रो के मध्य हुआ सघर्ष था। सुदास निश्चित रूप से शूद्र था। अन्य राजाओ को शूद्र न कहकर इक्ष्वाकु वश का बताया गया है। ऋग्वेद के अनुसार सुदास इक्ष्वाकुवंशीय था। अस्तु, निश्चयात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण से कलह–सघर्ष करने वाले सभी राजा शूद्र थे। शूद्र क्षत्रियों का एक वर्ग थे, अस्तु, इस कलह को स्पष्टत ब्राह्मणों और शूद्रो के मध्य सघर्ष के रूप में वर्णित करना चाहिये था और यह उचित भी होता। किन्तु ऐसा नही किया गया जिसके फलस्वरूप एक भ्रम उत्पन्न हुआ और वह भ्रम आज तक बना हुआ है। इस भ्रम ने प्राचीन आर्यो के इतिहास का एक महत्वपूर्ण भाग आवरण वेष्टित कर रखा है। इस भ्रम–निवारण के निमित्त ही इस अध्याय का नाम "ब्राह्मण

और क्षत्रिय" के स्थान पर "ब्राह्मण और शूद्र" रखा गया है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणो से क्षत्रियो का कलह हुआ जिसके फलस्वरूप उनका पराभव हुआ। उस पराभवजन्य पतन के कारण ही वह अपने दूसरे वर्ण "क्षत्रिय" से गिरकर समाज का चौथा वर्ण "शूद्र" बने।

10. शूद्रों का पराभव

अब तक यह सिद्ध किया जा चुका है कि शूद्र मूलत' द्वितीय वर्ण–क्षत्रिय वर्ण–का एक अग थे तथा उनका ब्राह्मण – द्वेष इतना बढ चुका था कि ब्राह्मणो ने शूद्रो को उनके दूसरे वर्ण से अपदस्थ कर चौथे वर्ण मे पहुँचा दिया। (यहाँ यह प्रश्न उठता है कि शूद्रों के पराभव के लिये ब्राह्मणों ने क्या तकनीक अपनायी?) इसका एकमात्र उत्तर यह है कि उन्होने शूद्रो का उपनयन बन्द कर दिया। निस्सदेह इस तकनीक से उन्होने शूद्रो को समाज की दृष्टि से हेय बना दिया और अपने अपमान का बदला चुकाया।

कदाचित् यहाँ यह जान लेना भी प्रांसगिक होगा कि "उपनयन" क्या है तथा भारतीय आर्य समाज मे इसका क्या महत्व था? इसकी जानकारी के निमित्त उपनयन–सस्कार का वर्णन उचित रहेगा।

प्रारम्भ मे उपनयन सस्कार एक सादा–सा संस्कार था। बालक समिधा (एक प्रकार का तृण) लेकर आचार्य के पास जाता था और विद्याध्ययन हेतु ब्रह्मचारी बनने की याचना करता थ। समय के साथ–साथ यह विस्तार पकडता गया। आश्वलायन गृह्य सूत्र मे सुलभ "उपनयन" वर्णन से इसके विस्तार का पता चलता है "बालक का सिर मुण्डित हो। वह नवीन वस्त्र पहने हो या चर्म धारण किये हो। बालक यदि ब्राह्मण हो तो मृग–चर्म, क्षत्रिय हो तो रुरू चर्म और यदि वैश्य हो तो बकरे चर्म धारण किये हो। यदि वस्त्र पहने हो तो वह रगीन हो– ब्राह्मण के लिये केसरिया, क्षत्रिय के लिये लाल और वैश्य के लिये पीला। वह मेखला पहने और छडी लिये हो। बालक गुरू का हाथ पकडे और गुरू घी का हवन करे और अग्नि के समक्ष उत्तर मे पूर्व मुख होकर आसीन हो। बालक गुरु के सामने पश्चिम की ओर मुँह करके बैठे। गुरू अपनी तथा बालक की अजुली मे पानी भरकर ऋग्वेद के मंत्र (5 82.1) का पाठ करे और अपने हाथ का पानी बालक की अंजुलि के पानी मे डाल दे। फिर "सावित्री की आज्ञा से", "अश्विनी कुमारो की बॉह से", और "पुषान के हाथो से" मत्र पढकर बालक का हाथ पकड़े। "सावित्री ने तेरा हाथ पकड़ा" मत्र पढकर दोबारा बालक का हाथ पकड़े।" "अग्नि तेरा गुरू" कहका तीसरा बार बालक का हाथ पकडे। गुरू के इगित पर बालक सूर्य की ओर देखे। गुरू तब "देवी, सावित्री

यह तेरा ब्रह्मचारी है इसकी रक्षा करो मत्र का पाठ करे तदुपरान्त गुरू कहे "तू किसका ब्रह्मचारी है– तू प्राण का ब्रह्मचारी है। मै तुझे प्रजापति को देता हूँ। फिर ऋग्वेद (3.8.4) मत्र का पाठ करते हुए बालक को दाहिनी ओर घुमाकर उसक हृदय छुए। तब ब्रह्मचारी चुपचाप अग्नि मे लकडी रख दे। (श्रुति के अनुसार प्रजापति का कार्य चुप रहकर करना चाहिये) कुछ लोग अग्नि का मत्र पढते है "हम यह लकडी इसलिये रखते है कि आप बढे और ब्रह्म द्वारा हम भी वृद्धि प्राप्त करे, स्वाहा"। लकडी रखकर और अग्नि को छूकर बालक तीन बार कहे– "मै तेज से अभिषिक्त होता हूँ, अग्नि मुझे बुद्धि, वश और बल दे। सूर्य मुझे बुद्धि, वंश और बल दे, हे अग्नि, आप तेज है – मैं तेजस्वी होऊँ, आप बल है– मैं बलशाली होऊँ।" इसके उपरान्त शिष्य गुरु के चरण स्पर्श करे और कहे – "मुझे सावित्री पढावे पढावे, पढावे।" गुरू बालक को धीरे–धीरे गायत्री मत्र पढावे और कहे– "मै तेरा मन कर्तव्य मे लगाता हूँ। तुम्हारा मस्तिष्क मेरे मस्तिष्क के समान होवे। तुम एकचित होकर मेरी आज्ञा का अनुसरण करो। बृहस्पति तुम्हें मेरी सेवा मे लगाये।" उसके बाद बालक की कटि मे मेखला बॉधे और छडी पकडाये। तदुपरान्त ब्रह्मचारी के कर्म समझाये– "तुम ब्रह्मचारी हो, पानी पियो, सेवा करो, दिन में शयन न करो, गुरू पर विश्वास रखकर वेदाध्ययन करो।"

"प्रात और साय भिक्षाटन करना और यज्ञ के लिये लकडियॉ चुनना। भिक्षाटन मे प्राप्त सामग्री गुरू को देना और दिन मे विश्राम न करना।"

उपनयन सस्कार का समापन गुरू द्वारा बालक को गायत्री मत्र पढाने के साथ होता है। यहॉ यह कहना कठिन है कि उपनयन से पूर्व गायत्री मत्र का पढाया जाना आवश्यक क्यो हैं।

उपनयन सस्कार के उपरोक्त वर्णन से दो बाते स्पष्ट होती है–

1 उपनयन का अभिप्राय एक व्यक्ति को आचार्य के पास वेदाध्ययन के निमित्त भेजना था और वेद–पाठ गायत्री से प्रारम्भ होता था :

2 उपनयन के लिये वास (अधोवस्त्र), उत्तरीय (शरीर के ऊपरी भाग का वस्त्र) छडी और मेखला या कमर में बाधने के लिये मूंज की रस्सी।

यदि इस वर्णन की आज के उपनयन सस्कार से तुलना करे तो आश्चर्य होगा कि प्राचीन काल के उपनयन संस्कार मे यज्ञोपवीत (जनेऊ) का कोई उल्लेख नहीं है। आधुनिक उपनयन का मुख्य ध्येय यज्ञोपवीत धारण करना मात्र ही रह गया है। और इस यज्ञोपवीत की भूमिका इतनी प्रबल हो चुकी है कि इसके बनाने तथा प्रयोग के लिये विस्तृत नियमावली तक तैयार कर ली गयी है।

यज्ञोपवीत मे नौ–नौ बालिश्त के तीन तार होते हैं। प्रत्येक तार एक देवता के लिये होता है।

यज्ञोपवीत नाभि से ऊपर या नीचे तक न हो। एक व्यक्ति एक बार मे एक से अधिक यज्ञोपवीत धारण कर सकता है।

यज्ञोपवीत हर वक्त धारण करना चाहिये। जनेऊ पहने बिना भोजन करना अथवा जनेऊ दाहिने कान पर टॉगे बिना मल–मूल विसर्जित करने पर स्नान करना प्रार्थना करना, व्रत करना आदि प्रायश्चित करने पडेगे।

दूसरे व्यक्ति के यज्ञोपवीत, जूते, आभूषण, माला अथवा कमण्डल आदि धारण करना वर्जनीय है।

तीन प्रकार के यज्ञोपवीत (1) निवीत, (2) प्राचीन्वित तथा (3) उपवीत धारण करने का प्रावधान हे।

यज्ञोपवीत का प्रारम्भ कैसे हुआ, इसके विषय में तिल्क महाशय का मत है

"वेदिक ग्रथों मे प्रजापति को ओराइन अर्थात् मृगशिर कहा जाता है। कहीं–कहीं यज्ञ भी कहा जाता है। अत कटि–प्रदेश मे धारण किया जाने वाला वस्त्र प्रजा पति के नाम पर स्वाभाविक रूप से यज्ञोपवीत कहलाया। अब यह ब्राह्मणो का जनेऊ कहलाने लगा है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या जनेऊ ओराइन के कमरबन्द (पटुका) का स्वरूप है। मुझे यह निम्नांकित आधार पर सत्य प्रतीत होता है–

स्थानीय शोधकारो के अनुसार यज्ञोपवीतयज्ञ + उपवित शब्दो से बना है। परन्तु इस विषय मे मतभेद है। सयुक्त शब्द का अर्थ "यज्ञ का उपवीत" है "अथवा यज्ञ के लिये उपवीत"। होतृियों ने एक स्मृति के अनुसार परमात्मा को यज्ञ कहा है। यह उसका उपवीत है, अत यज्ञोपवीत कहा गया है। जनेऊ धारण के समय "यज्ञोपवित्रं प्रजापतेयत्सहज पुरस्तात्" मंत्र पढा जाता है।"

यह मंत्र किसी सहिता में उपलब्ध नहीं है। बौधायन ने इसे ब्रह्मोपनिषद में लिखा है। यह मत्र हाओमा येष्ट के समान है जिसका अर्थ है "यज्ञोपवीत उच्च और पवित्र है। यह ब्रह्मा के साथ ही उत्पन्न हुआ है।" शब्द पुरस्तात् अवेस्ता के शब्द "पौर्वानिम" तथा "सहज" (प्रजापति के ओष्ठों से उत्पन्न) भी "मैन्युतस्तेम" का समानार्थी है। यह समानता सयोग मात्र नहीं है। मेरे मतानुसार जनेऊ को ओराइन के पटुका से लिया गया है। अस्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि कमरबन्द या पटुका स्वरूप अधोवस्त्र ही यज्ञोपवीत का वास्तविक स्वरूप है और प्रजापति के नाम से

जुडा होने के कारण पवित्र माना गया है।

निस्सदेह तिलक महाशय का मत रोचक है। किन्तु यह कुछ कठिनाइयो के समाधान मे सहायक सिद्ध नही होता। साथ ही यह उत्तरीय और वास स यज्ञोपवीत का सम्बन्ध भी स्पष्ट नही कर पाता। क्या यज्ञोपवीत उपरोक्त दो वस्त्रो के अतिरिक्त था? यदि ऐसा है तो उपनयन सस्कार के प्राचीन वर्णन मे इसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया? यदि जनेऊ ही उपरोक्त वस्त्रों का स्थानापन्न है तब उपनयन मे वस्त्र–धारण का जिक्र क्यो है?

2

अब मैं एक दूसरा सिद्धान्त प्रस्तुत करता हूँ। यज्ञोपवीत सस्कार गोत्राधिकार के लिये किया जाता था। इसका उद्देश्य एक व्यक्ति को एक विशेष गोत्र से जोडना होता था। उपनयन से इसका कोई सम्बन्ध नही है। उपनयन तो वेदाध्ययन के निमित्त किया जाता था। अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि प्राचीन आर्य कानून के अनुसार पुत्र जन्म से ही पिता के गोत्र का अधिकारी नहीं होता था। अपना गोत्र देने के लिये पिता को एक विशेष सस्कार करना पडता था। और तब ही पुत्र अपने पिता के गोत्र का अधिकारी बनता था। इस सम्बन्ध मे प्राचीन आर्यसमाज मे दो नियम प्रचलित थे। एक शौच का नियम था और दूसरा गोद लेने का। किसी की मृत्यु होने पर अशौच की अवधि निकटस्थ के लिये और दूरस्थ के लिये अलग–अलग होती थी। निकटस्थ के लिये यह अवधि दूरस्थ से अधिक होती थी। यदि पुत्र का यज्ञोपवीत नहीं हुआ है तो अशौच (सूतक) मात्र कुछ दिन के लिये ही होता था। (मनुस्मृति 5 66–70)। जहाँ तक गोद लेने का प्रश्न है, कोई ऐसा व्यक्ति गोद नही लिया जा सकता था जिसका यज्ञोपवीत हो चुका हो। (काणे कृत "व्यवहार मयूख" – पृ० 114 पर उद्धृत कालिका पुराण) इन दोनो नियमो से क्या तात्पर्य है? अशौच की अवधि पुत्र के लिये अल्प इसलिये होती थी कि यज्ञोपवीत न होने के कारण वह औपचारिक रूप से अपने पिता का गोत्र धारण नहीं कर सकता था। गोद लेने का अर्थ गोद लेने वाले पिता के गोत्र से सम्बन्धित हो जाना था। यज्ञोपवीत होने पर पुत्र, पिता के गोत्र का हो जाता था।

उक्त दोनों नियमों से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञोपवीत का सम्बन्ध गोत्र स था न कि उपनयन से। इस बात की पुष्टि जैन साहित्य से भी होती है। आचार्य रविसेन द्वारा विरचित पद्मपुराण के चतुर्थ पर्व के श्लोक 87 में लिखा है–

"भगवान्, आपने हमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो की उत्पत्ति बता दी है। अब हम उन लोगों की उत्पत्ति जानना चाहते हैं जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं।"

"जो यज्ञापवीत धारण करते हैं" वाक्य महत्वपूर्ण है निस्सदेह यह ब्राह्मण का वर्णन है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक समय था जब केवल ब्राह्मण ही यज्ञापवीत धारण किया करते थे अन्य जातियाँ या वर्ण नहीं। क्योकि गोत्र ब्राह्मणो मे ही होते थे इससे यह तथ्य प्रकट हुआ कि यज्ञोपवीत सस्कार पुत्र को पिता के गोत्र मे लाने या पिता के गोत्र से सम्बद्ध करने के लिये किया जाता था। यज्ञोपवीत का उपनयन से कोई सम्बन्ध न था। उपनयन सस्कार तो वेदाध्ययन के निमित्त होता था।

यदि यह सत्य मान लिया जाय तो यज्ञोपवीत और उपनयन संस्कार अलग–अलग थे जो कालान्तर मे एक हो गये। यह एकीकरण स्वाभाविक भी है। यदि पुत्र बिना यज्ञोपवीत विद्याध्ययन के हेतु जाता था, तब आचार्य द्वारा उसे अपने गोत्र मे शामिल करने का भय रहता था। इस भय के निराकरण के लिये ही लोग अपने पुत्रो को यज्ञोपवीत सस्कार के उपरान्त ही वेदाध्ययन के लिये भेजते थे। सभवत यह ही कारण था कि कालान्तर में ये दोनो– यज्ञोपवीत और उपनयन– सस्कार एक साथ होने लगे। कुछ भी हो, उपनयन का सम्बन्ध वेदाध्ययन से है।

3

उपरोक्त मत के सम्बन्ध म निम्नलिखित शंकाये उठना स्वाभाविक है –

1 क्या उपनयन न होना शूद्रत्व का प्रमाण है?

2 क्या शूद्रो को भी उपनयन का अधिकार था?

3 क्या उपनयन न होने का परिणाम ही शूद्रो के पतन का कारण है?

4 शूद्रो का उपनयन बन्द करने का ब्राह्मणो को क्या अधिकार था? इन संभावित शंकाओं का समाधान प्रस्तुत करना मेरा अपना दायित्व है।

4

पहली शका के समाधान के निमित्त सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि भारत के न्यायलयों ने शूद्रों की पहचान के लिये क्या मानदण्ड निर्धारित किये हैं।

पहला उदाहरण प्रीवी कौंसिल द्वारा सन् 1837 में निर्णीत रणदमन सिंह बनाम साहब प्रहलाद सिंह का मुकद्मा (7, एम. आई. ए – 18) है। इसमे यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या भारत में क्षत्रियो का अस्तित्व है। एक पक्ष का मत सकारात्मक था तथा दूसरे का नकारात्मक। क्षत्रियों का अस्तित्व अस्वीकारने वाले पक्ष का मत ब्राह्मणो द्वारा प्रचारित इस सिद्धान्त पर आधारित था कि ब्राह्मण परशुराम

ने तमाम क्षत्रियो का वध कर दिया था तथा जो शेष बच गये थे उनका समूल उच्छेद मगध के शूद्र राजा महापदमनन्द ने कर दिया। अत क्षत्रिय शेष रहे ही नहीं, केवल ब्राह्मण और शूद्र बचे हैं। प्रीवी कौंसिल ने इसे ब्राह्मणों द्वारा गढी गयी कहानी कहकर अमान्य करार कर दिया और क्षत्रियो का अस्तित्व स्वीकार कर लिया। यद्यपि प्रीवी कौंसिल ने कोई ऐसा मानदण्ड स्थापित न किया जिसके आधार पर क्षत्रियो और शूद्रो का अलग–अलग अस्तित्व प्रकट हो सके, फिर भी यह निर्णय दिया कि प्रत्येक मामले को उसके तथ्यों के आधार पर तय किया जाय।

राजकुमार लाल बनाम विशेसर दयाल (आई एल आर. 10 कलकत्ता – 688) मुकदमे में उच्च न्यायालय ने बिहार के कायस्थो को शूद्र ठहराया। बिहार के कायस्थो ने निवेदित किया था कि बिहार के कायस्थो की स्थिति बगाल, उत्तर प्रदेश तथा बनारस के कायस्थो से भिन्न हैं, अत वे क्षत्रिय है। न्यायालय ने इस अन्तर/श्रेष्टता को अस्वीकार किया और उन्हे शूद्र ही माना। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने (मुकदमा न० आई० एल० आर० – 12 इलाहाबाद – 328) मे उपरोक्त निर्णय को अविश्वनीय माना।

तीसरा मुकद्मा असित मोहन घोस बनाम निरोध मोहन घोस मलिक (20–कलकत्ता, डब्ल्यू० एन०–901) वर्ष 1916 का है जिसमें यह विवाद था कि बगाल के कायस्थ शूद्र है अथवा क्षत्रिय। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने उन्हें शूद्र करार दिया। इस निर्णय के विरुद्ध प्रीवी कौंसिल में अपील की गयी जिसका निर्णय 1926 में दिया गया। कौसिल ने बगाल के कायस्थों का मामला ज्यो का त्यो ही छोड दिया। वर्ष 1916 से 1926 की अवधि मे कलकत्ता उच्च न्यायलय ने अपने दो निर्णयो– विश्वनाथ घोष बनाम श्रीमती बलाई पासी तथा भोलानाथ मित्र बनाम सम्राट– मे बंगाल के कायस्थों को शूद्रों की तॉती और डोम जातियो से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के आधार पर शूद्र घोषित किया।

उक्त न्यायिक निर्णयों से कायस्थो की स्थिति मे अधोपतन आया। वर्ष 1926 मे ईश्वरी प्रसाद बनाम राय हरिप्रसाद लाल मुकदमा (आई० एल० आर० 6 पटना 506) चला। न्यायाधीश ज्वालाप्रसाद ने प्रत्येक स्मृति और पुराण, जिसमे कायस्थो का वर्णन था, का गहन अध्ययन किया और कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय से भिन्न मत प्रकट करते हुए बिहार के कायस्थों को क्षत्रिय घोषित किया।

मद्रास उच्च न्यायालय ने वर्ष 1924 मे एक मुकद्मा (48 मद्रास–1) महाराजा कोल्हापुर बनाम सुन्दरम अय्यर चला। इसमे यह विवाद था कि महाराजा, जो मराठा थे, क्षत्रिय हैं या शूद्र? यह मुकदमा तजौर राज्य के रिसीवर ने किया था। मराठा साम्राज्य के सस्थापक शिवाजी के भाई वैकोजी (जिनका उपनाम एको जी

था) द्वारा स्थापित तंजौर राज्य के महाराजा तथा उनके उत्तराधिकारी बचाव पक्ष में थे। मद्रास उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में मराठों को शूद्र माना, क्षत्रिय नहीं।

मराठो से सम्बन्धित सुब्बाराम हम्बीराव पाटिल बनाम राधा हम्बीराव पाटिल (आई० एल० आर०. 52 बम्बई 497) मुकदमें में बम्बई उच्च न्यायलय ने सन् 1928 मे निर्णय दिया – "मराठो के तीन वर्ग है– (1) पाँच परिवार, (2) छियानवै परिवार तथा (3) अन्य। प्रथम दोनो वैधानिक रूप से क्षत्रिय हैं।

अन्तिम मुकदमा वष 1927 का मोक्का कोणे बनाम अम्मा कुट्टी "मदुरै के यादव क्षत्रिय हैं अथवा शूद्र है" है। यादवों ने क्षत्रिय होने का दावा किया था। न्यायालय ने इसे अस्वीकार कर उन्हे शूद्र करार दिया।

यह न्यायिक प्रक्रिया सदिग्ध है क्योकि इसमे "न कुछ" का तुल्य परिणाम उद्घाटित हुआ है। बिहार और उत्तर प्रदेश के कायस्थ क्षत्रिय है और बगाल के शूद्र। मद्रास उच्च न्यायालय ने मराठो को शूद्र माना जबकि बम्बई उच्च न्यायालय ने "पाँच परिवार" और "छियानवे परिवार" मराठो को क्षत्रिय करार दिया तथा अन्य को शूद्र। यादव समाज को कृष्ण का वंशज होने के कारण क्षत्रिय माना जाता था, किन्तु मद्रास उच्च न्यायालय ने उन्हे शूद्र माना।

हमारा मुख्य ध्येय यह है कि हम यह देखे कि उपरोक्त मुकद्मो का निर्णय देते समय न्यायालयो ने किन प्रमाणों/मानदण्डो को दृष्टिगत रखा। ये निम्नलिखित हैं 1 मुकद्मा नं० आई० एल० आर० 10 कलकत्ता 688 मे मानदण्ड थे ·

अ उपनाम दास होना

ब यज्ञोपवीत धारण करना।

स यज्ञ करने का अधिकार

द अशौच (सूतक) की अवधि

इ गोद लिये गये पुत्र को उत्तराधिकार होना या न होना।

2 मुकदमा न० आई० एल० आर० पटना 606 के अनुसार ख्याति को प्रमुख माना गया।

3. मुकद्मा नं० 48 मद्रास – 1 में विभिन्न मानदण्ड प्रयोग में लाये गये जिनमें प्रथम जातिगत चेतना, द्वितीय उपनयन संस्कार प्रतीकरूप में माने गये थे। तीसरा मानदण्ड यह था कि सभी अब्राह्मण जातियाँ यदि स्वय को क्षत्रिय या वैश्य सिद्ध न कर सके तो शूद्र हैं।

4 मुकद्मा न० आई० एल० आर० बम्बई 497 मे जाति गत चेतना रस्म–रिवाज़ तथा अन्य जातियो द्वारा उक्त चेतना को स्वीकार करना मानदण्ड अपनाये गये।

विषय से भिज्ञ कोई भी विद्वान विभिन्न न्यायालयो द्वारा अपनाये गये मानदण्डो को उचित नही मान सकता। अशौच की अवधि प्रसंगच्युत है। यज्ञ की पात्रता प्रासागिक होते हुए भी उचित नही। जातिगत चेतना को भी सम्पुष्ट मानदण्ड नही माना जा सकता क्योंकि एक जाति अपरिहार्य परिस्थितियो मे दीर्घकाल तक अपने धार्मिक अनुष्ठानो को सम्पन्न न कर पाने पर अपने गोरव को खो बैठती है। न्यायालयों ने वास्तविक प्रथा और अधिकार मे भेद न कर ठीक–ठीक वर्णन नहीं किया है। फिर भी उपनयन का प्रमाण ठीक हो सकता है। प्राय अदालते यह मानकर चली है कि प्राचीन में जो सत्य था वह आज भी सत्य है। अतएव इससे उत्पन्न गडबडी से एक ही जाति भिन्न–भिन्न स्थानो पर क्षत्रिय और शूद्र मानी गयी है। प्रमाण यह नहीं कि अमुक जाति यज्ञोपवीत धारण करती है अथवा नही। प्रमाण यह है कि अमुक जाति को उपनयन का अधिकार है या नहीं। अधिकार होने पर यह जाति क्षत्रिय है अन्यथा शूद्र।

दूसरी शका मूलत निराधार है। प्राय प्रत्येक समाज प्रारम्भ में एक होता है और कालान्तर मे अनेक भागों मे विभक्त हो जाता है। अत' यह मान लेना कि आर्यों ने प्रारम्भ से ही जातिगत आधार पर शूद्रो को उपनयन से वंचित कर दिया था प्राकृतिक नियमो के प्रतिकूल होगा। यह तर्कसगत हो सकता है किन्तु इस सम्बन्ध मे परिस्थितिजन्य तथा स्पष्ट प्रमाण सुलभ हैं कि शूद्र और स्त्रियॉ भी यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकारी थे।

उपनयन संस्कार आर्यो मे आवश्यक माना जाता था। यह मूढ और नपुसक तक का होता था। इनके लिये एक विशेष विधि प्रयोग में लायी जाती थी। लडका अपना नाम उच्चाटित नही करता था, सब मंत्र आचार्य द्वारा पढे जाते थे। अन्तर केवल समिधा, यज्ञ, वस्त्र धारण, मेखला बांधने तथा छड़ी धारण करने में था। यही विधि नपुंसको, नेत्रहीनो तथा कोढियो के लिये प्रयुक्त होती थी।

क्षत्रियों, वैश्यो तथा रथकरों, अम्बाष्ठो आदि मिश्रित जातियो के उपनयन के नियमों से स्पष्ट है कि छः अनुलोम जातियों को भी उपनयन का अधिकार था (बौद्धायन गृहयसूत्र · 11 8, काणे– धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० सख्या 299) उपनयन की उपयुक्त आयु ब्राह्मण–पुत्र के लिये आठवां वर्ष, क्षत्रिय–पुत्र के लिये ग्यारहवां वर्ष और वैश्य–पुत्र के लिये 12वां वर्ष। फिर भी यह संस्कार विशेष परिस्थितियों में क्रमश 16वे 22वें तथा 24वे वर्ष में हो सकता था। इस आयु तक

उपनयन न हो पाने पर व्यक्ति को गायत्री मन्त्र के अयोग्य माना जाता था और उसे "पतित सावित्रिक" या "सावित्री–पतित" कहा जाता था। नियमों की कठोरता के कारण "आयु" बीतने पर न तो कोई उसका उपनयन कर सकता था और न उसे वेद पढा सकता था और न यज्ञ करा सकता था। यहाँ तक कि उसके साथ सामाजिक सम्बन्ध (यथा वैवाहिक सम्बन्ध आदि) भी स्थापित नही कर सकता था। इतने पर भी निर्धारित प्रायश्चित करने पर उपनयन हो सकता था। (आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1, 1.1, 28–31)

ब्रह्मघ्न (जिसके पितामह और पिता का उपनयन न हुआ हो) भी प्रायश्चित करने पर उपनयन करा सकता था। नियमानुसार ब्रह्मघ्न के घर न तो कोई भोजन ग्रहण करता था और न कोई वैवाहिक सम्बन्ध ही स्थापित करता था। फिर भी उनके चाहने पर तथा विधिपूर्वक प्रायश्चित करने पर उनका उपनयन हो जाता था (आपस्तम्ब धर्मसूत्र = 1,1 1 , 32.4)।

इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति के वश में प्रपितामह के समय से उपनयन नहीं हुआ हो तो वह 12 वर्ष तक ब्रह्मचारी–जीवन व्यतीत कर उपनयन करा सकता था; यद्यपि वह वेदाध्ययन से वंचित रह जाता था, किन्तु उसका पुत्र "पतित सावित्रिक" भी भॉति उपनयन संस्कार कराकर "आर्य जैसा" बन सकता था।

व्रात्यो का भी उपनयन होता था। व्रात्य आर्य थे या अनार्य – यह कहना अत्यन्त कठिन है। वे पतित जीवन व्यतीत करते थे। वे न तो ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और न कृषि करते थे। उनका कोई अपना व्यवसाय भी न था। फिर भी यह निर्विवादत सत्य है कि वे आर्य और अनार्द दोनों ही थे। यह भी सत्य है कि ब्राह्मण उन्हें आर्यो मे सम्मिलित करना चाहते थे। व्रात्यस्तोम करने पर उनका उपनयन हो सकता था। व्रात्यस्तोम चार प्रकार का होता था (1) सभी व्रात्यो लिये, (2) अभिशप्तों के लिये, (3) अल्पायु के लिये तथा (4) वृद्धो के लिये। चारो व्रात्यस्तोमो में सोदास्तोम सब को करना पडता था। जिससे उन्हें उच्च स्थिति प्राप्त होती थी। व्रात्सस्तोम–यज्ञ के उपरान्त उनका व्रात्य–जीवन समाप्त समझा जाता था और आर्यो से उनके सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो सकते थे। उपनयन से उन्हें वेदाध्ययन का अधिकार भी मिल जाता था (ताण्ड्य ब्राह्मण 17.1 1)

व्रात्य शुद्धि–सग्रह में बारह पीढी के उपरान्त भी व्रात्य के शुद्धिकरण का प्रावधान है।

बौधायन ने तो अस्वत्थ वृक्ष के उपनयन तक की बात कही है। इससे उपनयन के प्रचलन–आधिक्य का पता चलता है। अस्तु, उक्त परिप्रेक्ष्य में यह विश्वास कर लेना कठिन है कि आर्यों ने प्रारम्भ से ही शूद्रों और स्त्रियों को

से वचित कर रखा था। इस संदर्भ मे, भारतीय ईरानियो, जिनके भारतीय आर्यो से सास्कृतिक और धार्मिक आधार पर निकटस्थ सम्बन्ध थे, का उदाहरण देना प्रासांगिक होगा। भारतीय ईरानियो मे सभी वर्ग के सभी स्त्री–पुरुष यज्ञोपवीत धारण करते थे। फिर भारतीय आर्यों में इस भेद का कारण क्या है?

प्रत्यक्ष प्रमाण सुलभ है कि आर्यो मे भी स्त्रियो और शूद्रों को उपनयन का अधिकार था। अस्तु, परिस्थितिजन्य साक्ष्यो पर निर्भर करने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू धर्म–शास्त्रो के अनुसार स्त्रियो का उपनयन होता था। वे न केवल वेद–पाठ करती थी, वेदाध्ययन–हेतु पाठशालायें तक सचालित करती थी। यही कारण है कि "स्त्री पूर्व मीमासा" पर टीकाये लिखी गयीं।

जहाँ तक शूद्रो का प्रश्न है, साक्ष्य सकारात्मक है। राजा सुदास का राज्याभिषेक ऋषि वशिष्ठ ने किया था। उसने राजसूय यज्ञ किया था। सुदास शूद्र था। वह निर्विवादत यज्ञोपवीत धारण करता होगा क्योकि उपनयन के उपरान्त ही वह इन कृत्यो का अधिकारी बन सकता था। अस्तु, यह स्पष्ट है कि शूद्र भी उपनयन के अधिकारी थे (सस्कार गणपति)।

स्त्रियो का उपनयन बन्द होने का स्पष्ट कारण है। पहले स्त्रियो का उपनयन आठ साल की आयु में होता था और विवाह बाद में। कालान्तर मे विवाह की आयु घटते–घटते आठ साल हो गयी तो उपनयन सस्कार स्वतत्र रूप से न होकर विवाह संस्कार में सम्मिलित हो गया और धीरे–धीरे समाप्त हो गया। यह सत्य है या असत्य, यह दूसरी बात है। किन्तु शूद्रों का उपनयन होता था। वह कैसे बन्द हुआ– इस सम्बन्ध में भी कोई स्पष्ट मतसिद्धान्त उपलब्ध नहीं है। यदि यह मान लिया जाय कि शूद्रों को प्रारम्भ से ही उपनयन का अधिकार न था, तब यह प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों था? पुरातनपंथी तो यह कहते हैं कि उपनयन शूद्रों के लिये है ही नहीं। किन्तु वे इसका कोई कारण या आधार नही बताते। उनका कहना केवल यह ही होता है कि शूद्र अनार्य होने के कारण उपनयन के अधिकारी नहीं हैं। चूकि यह सिद्ध किया गया जा चुका है कि शूद्र अनार्य नहीं आर्य है, अस्तु यह तर्क निराधार है। अब प्रश्न यह है कि शूद्रों को प्रारम्भ से ही उपनयन का अधिकार न था अथवा उन्हे कालान्तर में इससे वचित कर दिया गया। यह सिद्ध किया जा चुका है कि पहले से ही उपनयन का अधिकार न होने की बात तार्किक तथा प्रमाणिकता के आधार पर वेद–विधान के प्रतिकूल है, अस्तु अमान्य है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि शूद्रों को उपनयन का अधिकार था जो बाद में छीन लिया गया। यह अधिकार क्यो और कैसे छीना गया, इस पर विचार बाद मे करेंगे।

6

तीसरी शंका तो कोई शका है ही नहीं। ऐसी शंका वही कर सकता है जिसे उपनयन सस्कार का ज्ञान नहीं है।

आर्य अपने अनुष्ठानो को सस्कार कहते थे। गौतम धर्मसूत्र (8, 14–24) मे निम्नलिखित 40 सस्कारो का वर्णन है –

"गभाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन चार वेद–व्रत, सवर्तन, विवाह (देव, पितृ, मनुष्य, भूत और ब्रह्म के लिये) पॉच दैविक महायज्ञ, सात पाकयज्ञ (अस्तक, पर्वनास्थालिपिक, श्राद्ध, श्रावणी, अग्रहायणी, चैत्री, अस्वयुजी), सात हविर्यज्ञ (अग्नियाधेय, अग्निहोतृ, दर्शपूर्णमास, अग्रायण, चातुर्मास, निरुद्धपासुबन्ध तथा सौत्रुमणि), सात सोमयज्ञ (अग्निस्तोम, अत्याग्निस्तोम, उक्त्थ्य सुदासिन, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्यम) तथा मृतक।

कालान्तर मे संस्कार सिमटकर मात्र 16 रह गये।

संस्कारो के सम्बन्ध मे कोई विचित्रता नहीं है। प्रत्येक समाज सस्कारो को स्वीकार करता है। ईसाइयो मे भी सस्कार होते हैं किन्तु वे सामाजिक न हो कर धार्मिक होते है। भारतीय आर्यो मे भी प्रारम्भ मे सस्कार विशुद्ध धार्मिक होते थे। पूर्वमीमांशा के रचनाकार जेमिनी के मतानुसार सस्कारो से दुष्कर्मो का क्षय और सद्गुणों का उदय होता है। उपनयन अन्य संस्कारों की भॉति धार्मिक था। शूद्रो का उपनयन बन्द कर देन से इसके महत्त्व मे अभूतपूर्व परिवर्तन आया जो सामाजिक महत्व का विषय बन गया। परिणामस्वरूप यज्ञोपवीत (उपनयन) धारण करना श्रेष्ठता और कुलीनता का द्योतक माना जाने लगा। इसका दूरगामी फल यह निकला कि इससे शूद्र, ब्राह्मणो, क्षत्रियों और वैश्यो को अपने से श्रेष्ठ मानने को बाध्य हुए वही उक्त तीनों वर्ण शूद्रों को अपने से हेय मानने लगे। और इस प्रकार उपनयन–निरोध से शूद्रों का पतन प्रारम्भ हुआ।

पूर्व मीमांसा के एक अन्य नियम के अनुसार यज्ञ वैदिक मंत्रों से ही हो सकता है– कथन का तात्पर्य यह है कि यज्ञकर्ता वेदपाठी होना ही चाहिये। साथ ही वेदाध्ययन वही कर सकता है जिसका उपनयन हो गया हो। दूसरे शब्दो में हम यह कह सकते हैं कि वेदों के अध्ययन और ज्ञान के लिये उपनयन ही एकमात्र मार्ग है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि उपनयन मात्र नाम ही सस्कार नहीं है, इससे सम्पत्ति और विद्याध्ययन के दो महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन आर्यों में उपनयन का कितना महत्त्व था। [illegible] से सामाजिक प्रतिष्ठा और वैयक्तिक अधिकार प्राप्त

होते थे , ब्राह्मणो ने शूद्रो का उपनयन का अधिकार छीनकर उन्हे ज्ञार्नाजन और सम्पत्ति–सचय/अर्जन के अयोग्य ठहरा दिया। और इसका नतीजा यह हुआ कि वे धीरे–धीरे मूर्ख और निर्धन होते चले गये।

ब्राह्मणों ने शूद्रो के विरुद्ध "उपनयन–निरोध" को एक भीषण शस्त्र के रूप मे प्रयोग कर उन्हें गर्त मे ढकेल दिया और शमशान–तुल्य बना डाला।

7

"ब्राह्मण दूसरों को उपनयन से वचित करने की शक्ति रखते है" प्रश्न से पर की बात है। यद्यपि इस सम्बन्ध मे कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है, तदपि निम्नाकित दो तथ्य ध्यान मे रखने से शंका का समाधान हो जायेगा –

1 उपनयन केवल ब्राह्मण करा सकता है, तथा

2. अनधिकृत उपनयन करानेवाला ब्राह्मण दण्ड का भागी होगा।

प्रारम्भ मे पिता पुत्र को गायत्री सिखाता था और वेदाध्ययन गायत्री से प्रारम्भ होता था। कालान्तर मे वेदाध्ययन उपनयन के पश्चात होने लगा। उपनयन के उपरान्त लडका आचार्य के घर पर ही रहकर वेदाध्ययन करता था।

"आचार्य कौन हो सकता है और उसकी योग्य क्या हो?" यह प्रश्न पुरातन काल से ही विवाद का रहा है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र (1 1 1 11) के अनुसार आचार्य वही हो सकता है जो वेद–पारगत हो। आपस्तम्ब धर्म सूत्र (1 1 1 12–13) के अनुसार उपनयन वह आचार्य कराये जो विद्वान हो, जिसके वंश में विद्याध्ययन परम्परागत हो, जो शान्त मस्तिष्क हो। ऐसे आचार्य से वेद–पाठ ब्रह्मचर्यपर्यन्त अथवा तब तक कराना चाहिये जब तक कि वह धर्मच्युत न हो जाय। व्यास के मतानुसार "आचार्य वेदविद्, धर्मविद्, कुलीन, पवित्र और श्रोत्रिय हो और आलसी न हो।" परन्तु सबसे पहली और वांछनीय योग्यता आचार्य का ब्राह्मण होना है। ब्राह्मण आचार्य न मिलने पर क्षत्रिय या वैश्य गुरु धारण करना चाहिये। ब्राह्मण शिष्य को क्षत्रिय या वैश्य गुरु की आज्ञा ही माननी चाहिये। वह न तो चरण–स्पर्श करे और न अन्य सेवा। (आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2, 2 4, 25–28; गौतम धर्मसूत्र 7, 1–3, बौधायन धर्मसूत्र 1,2, 40, 42, मनुस्मृति · 2.241) प्रारम्भ में वेद पढने–पढाने मे कोई भेद न था। वास्तव मे वशिष्ठ और विश्वामित्र में यही विवाद चलता रहा था। बाद में ब्राह्मणो ने आचार्य बनने और उपनयन कराने का अधिकार प्राप्त कर लिया और यह तय हो गया कि जो उपनयन ब्राह्मण द्वारा न कराया गया हो, अमान्य है।

ब्राह्मणो को यह भी आदेश था कि वह समाज विरोधी अर्थात् ब्राह्मण द्वारा

अस्वीकृत धार्मिक कृत्य सम्पन्न न कराये। ऐसा करने वाला दण्ड का भागी होता था। इस सम्बन्ध मे प्राचीन सहिताओं मे अनेक प्रकार के दण्डों का प्रावधान मिलता है। मैं केवल मुन और पाराशर की कृतियो के उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ –

मनुस्मृति (3 156) "जो शुल्क लकर पढावे और जो शुल्क देकर पढे जो शूद्र को पढावे और जिसका गुरू शूद्र हो, जो कठोर वचन बोलता हो, जो पतिता या विधवा का पुत्र हो, यज्ञ कराने का अधिकारी नहीं है।"

व्यास कृत व्यवहार मयूख के अनुसार "वह ब्राह्मण जो दक्षिणा (शुल्क) के लिये शूद्र का यज्ञ कराता है, शूद्र हो जाता है और (यज्ञ करने वाला) शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है।"।

माधव के अनुसार "यज्ञ का पुण्य शूद्र को मिलता है और ब्राह्मण पाप का भागी बनता है।"

जो लोग यह प्रश्न करते है कि ब्राह्मणो को क्या अधिकार था कि वे शूद्रों को उपनयन से वचित कर दें, उन्हे यह दृष्टिगत रखना चाहिये कि '–

1 उपनयन केवल ब्राह्मण करा सकता है, तथा

2 अनधिकृत (ब्राह्मणो द्वारा अस्वीकृत) उपनयन करानेवाला ब्राह्मण दण्ड का भागी था।

उपरोक्त दो कारणो से ब्राह्मणो को निस्सदेह यह अधिकार मिल गया कि वे जिसका चाहे उपनयन करे, जिसका न चाहे उसका न करें। ऐसे सोलह उदाहरण सुलभ है जिनमें ब्राह्मणो द्वारा विभिन्न जातियो को उपनयन बन्द करने की धमकी दी गयी थी। इनमें नौ कायस्थो के सम्बन्ध में, चार पाचालो के सम्बन्ध मे और एक पालशे के सम्बन्ध में है। इतना ही नहीं सन् 556 और 1904 ने इन्होने दो मराठा राजाओं को भी चुनौती दी। ये उदाहरण यद्यपि अति प्राचीन नहीं है, फिर भी इन्हे उदाहरण के रूप मे याद किया जायेगा जिनमे ब्राह्मणो ने उपनयन न कराने के अपने विशेषाधिकार का प्रयोग किया। पुरातन काल मे सत्यकाम जावाल ने कहा था कि मनुष्य का वर्ण उसके गुणो, (मानसिक एव चारित्रिक) से जाना जाता है। जहॉ यह सत्य है, वही यह भी सत्य है कि ब्राह्मणो को उपनयन करने तथा उपनयन न करने का अधिकार बहुत पहले ही मिल चुका था। दुर्भाग्य से उपरोक्त उदाहरणों के सम्बन्ध मे पूर्ण विवरण न मिलकर केवल निर्णय मात्र ही सुलभ है। अस्तु, यह हमारे काम के नही है। केवल "ब्राह्मण बनाम शिवाजी" का विस्तृत एवं पूर्ण विवरण मिलता है। यह विशेष महत्वपूर्ण मामला है। अत इसका सविस्तार विवेचन करेगे। इसके तथ्य रोचक और शिक्षाप्रद तो हैं ही, विचाराधीन विषय पर भी यथेष्ट प्रकाश डालते हैं

8

यह सर्वविदित है कि शिवाजी ने पश्चिम महाराष्ट्र मे स्वतंत्र हिन्दू राज्य की स्थापना के उपरान्त सिहासनारूढ होने के हेतु अपने राज्याभिषेक का विचार किया। शिवाजी और उनके मित्रो की इच्छा थी कि अभिषेक वैदिक विधि से हो। लेकिन इसमे अनेक बाधायें थीं। प्रथम तो यह कि वैदिक रीति से अभिषेक ब्राह्मणो की इच्छा पर निर्भर करता था। दूसरी कठिनाई यह थी कि जब तक शिवाजी अपने को क्षत्रिय सिद्ध न कर दे राज्याभिषेक असभव था। तीसरी बाधा यह थी कि उपनयन न हो पाने के कारण राज्याभिषेक नही हो सकता था। पहली कठिनाई शिवाजी के लिये चट्टान जैसी थी। प्रश्न यह था कि क्या शिवाजी क्षत्रिय है? यदि यह सिद्ध हो जाता तो शेष आसान था। यद्यपि शिवाजी स्वय को क्षत्रिय कहते थे, लेकिन बहुत से लोग इसका विरोध करते थे। उनका विरोध करने वाले विशेषत. ब्राह्मण थे, और उनका नेता स्वय उनका प्रधान मत्री मोरे पन्त था। दुर्भाग्य से शिवाजी के मराठा सरदार भी उनको सामाजिक स्तर पर अग्रपद देने को तैयार न थे क्योकि उनके अनुसार वे शूद्र थे। ब्राह्मणो का मत था कि कलियुग मे क्षत्रिय रहे ही नहीं। इस मत को क्षत्रियो के लिये निर्धारित ग्यारह वर्ष की आयु मे शिवाजी का उपनयन न होने से और भी अधिक बल मिला। अस्तु, उन्हें शूद्र माना गया। सौभाग्य से वेदो और शास्त्रो मे पारंगत बनारस के ब्राह्मण विद्वान गाघ भट्ट ने सभी कठिनाइयाँ दूर कर 6 जून, 1674 मे रायगढ मे शिवाजी का राज्याभिषेक कर दिया।

शिवाजी की कथा अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है क्योकि यह सिद्ध करती है –

1 उपनयन कराने का अधिकार केवल ब्राह्मण को है तथा एतदर्थ उसे कोई बाध्य नहीं कर सकता। शिवाजी एक स्वतंत्र राज्य के शासक थे और स्वय महाराजा तथा क्षत्रपति कहलाते थे। अनेक ब्राह्मण उनकी प्रजा थे फिर भी वे उन्हें अपने राज्याभिषेक के लिये मजबूर नहीं कर सकते थे।

2 शिवाजी यह भली भाति जानते थे कि ब्राह्मण द्वारा किया गया संस्कार ही समाज में मान्य है। अस्तु, उन्हें यह साहस न हुआ कि किसी अब्राह्मण से सस्कार कराते। यदि कराते भी तो उसका कोई सामाजिक महत्व न होता।

3 किसी हिन्दू का वर्ण निर्धारित करने का अधिकार केवल ब्राह्मण को था। शिवाजी को क्षत्रिय सिद्ध करने के लिये शिवाजी के परम मित्र बालाजी आवाजी मेवाड से एक वशावली लाये जिसमे शिवाजी का सम्बन्ध मेवाड के सिसौदिया वश से सिद्ध किया गया था। यह कहा जाता है कि यह वंशावली जाली थी और मात्र राज्याभिषेक के अवसर के लिये बनवाई गयी थी ' यदि

जन्म पत्री को सत्य भी मान लिया जाय तो यह कहा सिद्ध होता है कि शिवाजी क्षत्रिय थे। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या सिसौदिया क्षत्रियवश थे? इसमे सदेह है कि राजपूत प्राचीन आर्यो के दूसरे वर्ण–क्षत्रियों के वशज हैं। एक मत यह है कि राजपूत भारत के आक्रान्ता हूणो के वशज है जो राजपूताना मे बस गये थे। ब्राह्मणों ने मध्य भारत में बौद्ध धर्म को कुचलने–नष्ट करने के ध्येय से इन्हें अग्नि–सस्कार द्वारा क्षत्रिय–पद से विभूषित किया था। अत यह अग्नि–कुल क्षत्रिय कहलाये। इस मत से अनेक विद्वान शोधकर्ताओ ने सहमति प्रकट की है। विसेंट स्मिथ कहते हैं

"... यह बात प्रामाणिक रुप से सिद्ध हो चुकी है कि स्थानीय राजाओ से हुए युद्धो में राजपूताना और गगा की घाटी मे विदेशी आक्रान्ता पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हो पाये थे और जो बचे थे वे स्थानीय नागरिको मे घुल–मिल गये और अपने पूर्वज शको की भाति हिन्दू धर्म तथा हिन्दू समाज मे मिलकर "हिन्दू" बन गये थे। विदेशी विजेताओ को ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय या राजपूत कहकर हिन्दू धर्म मे शामिल कर लिया गया। अस्तु, यह निर्विवादतः सत्य है कि पॉचवी और छठी सदी मे भारत मे आयो इन्ही जातियों मे से उत्तरी भारत के परिहार तथा अनेक प्रसिद्ध राज्य–वश पनपे। अन्य अजनबी गूजर आदि जाति बन गये जो प्रतिष्ठा मे राजपूतों से कुछ कम हैं। इसी प्रकार दक्षिण के गौड, भार, खारवा, चन्देल, राठौर गहरवार तथा अन्य प्रसिद्ध राजपूत वंश उभरे। ये अपना सम्बन्ध सूर्यवंश और चन्द्रवंश से बताते है। (सी० वी० वैद्य हिस्ट्री ऑव मीडिवल इण्डिया – खण्ड 2–पृ० 8)

विलियम कुक का कहना है कि

"हाल की खोजो ने राजपूतो की उत्पत्ति पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। वैदिक क्षत्रियो ओर मध्यकालीन राजपूतों की खाई को पाटना असंभव है। यह निश्चित हो गया है कि बहुत से राजपूत वंशों की उत्पत्ति का समय शकों या कुषाणों अथवा सन् 480 ई० के आसपास गुप्त साम्राज्य को ध्वस करने वाले श्वेत हूणो के आक्रमण–काल से प्रारम्भ होता है। गूजर जातियों ने हिन्दू धर्म अपना लिया जिसमे से कालान्तर में राजपूत वंश निकले। ब्राह्मणों का प्रभुत्व स्वीकार कर लेने पर इन्हें रामायण और महाभारत के नायको से जोड दिया गया। इस प्रकार राजपूतों का इतिहास बना और उनका कल्पित आरम्भ सूर्य और चन्द्र से सम्बद्ध कर दिया गया। इन नव क्षत्रियो की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं श्रेष्ठता के लिये ये अत्यावश्यक था कि कुछ उचित कथाओं का सृजन किया जाय। अस्तु, एक कथा के अनुसार "शुद्धिकरण" या "प्राचीन ऋषियो के आवाहन पर" वैदिक संस्कारों से चार अग्नि–कुल क्षत्रिय–परमार, परिहार, चालुक्य और चौहान उत्पन्न हुए। इन अग्नि–कुल क्षत्रियों ने मध्य भारत मे बौद्ध धर्म तथा अन्य मत–मतान्तरों के दमन में ब्राह्मणो की सहायता की।" (हिस्ट्री

ऑव मीडिएवल इण्डिया – खण्ड 2 – पृ० 9)

डा० टी० आर० भण्डारकर के अनुसार राजपूत गूजरो के वशज है। गूजर विदेशी मूल थे अत राजपूत विदेशी मूल हैं।

जो ब्राह्मण राज्याभिषक करते थे, राजपूतो की उत्पत्ति से अनभिज्ञ न थे। यदि यह मान भी लिया जाय कि वे इस विषय मे अनजान थे, तब भी वे इस सिद्धान्त से अवश्य परिचित थे कि कलियुग मे क्षत्रिय नही थे। यदि अपने पूर्व निर्णय के आधार पर ब्राह्मण सिसौदिया वश और शिवाजी के दावे को अस्वीकार कर देते तो कोई दोष न दे पाता। परन्तु, ब्राह्मण परम्परागत निर्णय को कब मानते थे। वह तो अवसर के अनुसार रग बदलते थे। उनके सिद्धान्त और निर्णय ईसाई पादरियो की भाति बिकते थे। घाघ भट्ट तथा अन्य ब्राह्मणो को दी गयी दक्षिणा के आधार पर यह नही कहा जा सकता कि घाघ भट्ट का निर्णय उचित था। राज्याभिषेक एव दक्षिणा पर क्या कुछ व्यय किया गया, वैद्य महोदय के शब्दो मे देखें–

"प्रत्येक मन्त्री को तीन लाख रुपया, एक हाथी, एक अश्व, वस्त्र और आभूषण उपहार स्वरूप दिये गये। घाघ भट्ट को आयोजन पूर्ण कराने की दक्षिणा एक लाख रुपया मिली। सभासद के अनुसार राज्याभिषेक पर चार करोड छब्बीस लाख रुपया खर्च हुआ।"

सभासद के अनुसार राज्य–अभिषेक के अवसर पर 50000 वैदिक ब्राह्मण, हजारो की सख्या में योगी–सन्यासी आदि एकत्रित हुए थे। इन सब को दुर्ग के नीचे अन्न और भोजन दिया जाता था। तत्कालीन कागज–पत्रो से पता चलता है कि राज्याभिषेक से पूर्व शिवाजी को सोना तथा अन्य प्रत्येक धातुओ से तोला गया था। रिकार्ड ने आयोजन का सविस्तार विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि शिवाजी का वजन 160 पौण्ड था। उन्हें सोना, चांदी, ताबा, लोहा इत्यादि धातुओ, कपूर, नमक, शक्कर, घी, सुपाडी, फलों आदि से तौला गया और उक्त सामग्री ब्राह्मणों में वितरित कर दी गयी। उपहार स्वरूप अभिषेक के दूसरे दिन प्रत्येक ब्राह्मण को तीन से पॉच रुपया तथा अन्यों को एक–एक रुपया दक्षिणा दी गयी। स्त्रियो और बच्चो को क्रमश दो–दो और एक–एक रुपया दिया गया। दक्षिणा पर कुल मिलाकर साढे चार लाख रुपया खर्च हुआ।

ऑक्सेण्डन ने अपनी डायरी (13 मई से 13 जून) मे लिखा है कि शिवाजी को स्वर्ण से तौला गया था। उनका वजन 16000 हॉन था। यह रकम एक लाख हॉन के साथ ब्राह्मणों में दक्षिणा के रूप में बांट दी गयी थी।

उपरोक्त डच लेखक के मतानुसार व्रात्य संस्कार पर घाघ भट्ट को

7000 हान तथा अन्य ब्राह्मणा को 17000 हान मिले . पाच जून को शिवाजी ने गगाजल मे स्नान किया और प्रत्येक उपस्थित ब्राह्मण को 100 हॉन भेट किये।"

(शिवाजी दि फाउण्डर ऑव मराठा– पृ० स० 248 तथा 252)

घाघ भट्ट को जो रकम दी गयी, क्या वह दक्षिणा थी? ऐसा कहा जाता है कि घाघ भट्ट को यथेष्ट पारिश्रमिक नहीं मिल पाया। उससे अधिक तो मत्रियो को मिला। इस सम्बन्ध मे दो बाते याद रखने योग्य है –

1 मत्रियो ने शिवाजी को राज्याभिषेक पर बहुमूल्य उपहार दिये। प्रधान मत्री मोरे पन्त ने 7000 हॉन तथा अन्य मत्रियो ने 5000–5000 हॉन भेंट किये। मत्रियों को दिये गये उपहारो मे से शिवाजी को दी गयी भेट कम कर दी जाए तो शिवाजी द्वारा मत्रियों को दिये गये उपहार अल्प मात्र ही रह जाते हैं।

2 शिवाजी के मंत्री उन्हे शूद्र मानते थे। अत वे राज्याभिषेक के विरोधी थे। इसमे कोई आश्चर्य न्हीं यदि शिवाजी ने उनका मुँह बन्द रखने के लिये बडी–बडी भेटें उन्हे दी थी। अत· शिवाजी द्वारा मत्रियो को दिये द्रव्य को आधार मानकर नहीं कहा जा सकता कि घाघ भट्ट को दक्षिणा से अधिक नहीं मिला। वास्तविकता यह है कि घाघ भट्ट ने स्वय इतनी करवटे बदली कि उन्हे दी गयी दक्षिणा रिश्वत कही जा सकती है।

शिवाजी के राज्याभिषेक मे शिवाजी के व्यक्तिगत सचिव बालाजी आवाजी, जो महाराष्ट्र का कायस्थ था, की मुख्य भूमिका रही। बालाजी ने सर्वप्रथम शिवाजी के पूर्ण वृतान्त के साथ तीन ब्राह्मणो–केशव भट्ट, भालचन्द्र भट्ट और सोमनाथ भट्ट– को बनारस से घाघ भट्ट को लिवा लाने के लिये भेजा। घाघ भट्ट ने सदेशवाहको को एक पत्र के साथ वापस भेज दिया जिसमे शिवाजी को शूद्र बताते हुए राज्याभिषेक के अयोग्य ठहराया गया था। बालाजी ने शिवाजी के क्षत्रिय होने का प्रमाण एकत्रित करने का कदम उठाया। वह एक ऐसी वंशावली प्राप्त करने मे सफल हुआ जिसमे शिवाजी को मेवाड के शासक सिसौदिया वश का बताया गया था। इस प्रमाण के साथ एक कायस्थ सदेश वाहक नीलो केशाजी को पुन· घाघ भट्ट के पास भेजा गया। घाघ भट्ट रायगढ आये और कहा कि उन्होंने प्रमाणों की फिर से जॉच की है जिसके परिणामस्वरूप शिवाजी शूद्र ही ठहरते हैं अस्तु, राज्याभिषेक के अधिकारी नहीं है।

इस सम्बन्ध मे घाघ भट्ट की केवल एक ही कलाबाजी नहीं रही। उन्होने एक बार फिर विचित्र पलटी खायी और घोषणा की कि वह शूद्र शिवाजी के स्थान पर बालाजी आवाजी का कायस्थ क्षत्रिय होने के नाते अभिषेक करने का तैयार हैं

घाघ भटट यहा भी स्थिर न रहे और एक पलटा खाया और घोषणा की कि शिवाजी क्षत्रिय है और उनका राज्याभिषेक कराने को तैयार हैं। इतना ही नहीं, उन्होने शिवाजी की प्रशस्ति में घाघ भट्टी कर रचना भी की जिसमे कायस्थो को "हरामी" कहकर गालियॉ दीं।

यह सब क्या सिद्ध करता है? क्या इससे यह सिद्ध नही होता कि घाघ भट्ट एक अति अविश्वसनीय पुरोहित था और उसकी सहमति धन देकर क्रय की जा सकती थी। यदि यह सच है तो उसने अपना निर्णय "शिवाजी क्षत्रिय हैं" धन लेकर बेचा था।

अन्त में, शिवाजी के विषय में एक बात और। ब्राह्मण कभी भी अपने पूर्व निर्णय से बंधे नहीं रहे। वे स्वय को अपने पूर्व निर्णय का पुनरीक्षण करने मे स्वतत्र मानते थे। उन्होने अपने निर्णय "शिवाजी क्षत्रिय है" का कितने दिन पालन किया।

शिवाजी ने अपने राज्याभिषेक के दिन– 6 जून 1674 से "राज्याभिषेक सवत्" प्रारम्भ किया। जब तक शिवाजी और उनके उत्तराधिकारी सिहासनरुढ रहे, सवत् चलता रहा। सत्ता जैसे ही ब्राह्मण पेशवाओ के हाथो मे आई, सवत् का प्रचलन रोक दिया गया। उन्होने मुगल सम्राटो की भाति फसली संवत् का प्रयोग शूरु कर दिया। इतना ही नहीं उन्होने शिवाजी के उत्तराधिकारियो के क्षत्रियत्व तक को चुनौती दी। शिवाजी अपने पुत्रो– शम्भाजी और राजाराम का उपनयन अपने जीवन–काल में ही वैदिक रीति से करा गये थे, अत ब्राह्मण उनका कुछ बिगाड न सके। वे शिवाजी के पौत्र शाहूजी का भी कुछ अहित न कर पाये क्योकि तब तक सत्ता ब्राह्मणो के हाथो मे नहीं आ पायी थी। शाहू जी द्वारा ब्राह्मण पेशवा को सत्ता सौपने के साथ ही ब्राह्मणो की मनमानी का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसका प्रमाण सुलभ नहीं है कि शाहूजी के उत्तराधिकारी दत्तक पुत्र रामजी राजे, जिसके अभिभावक पेशवा थे, का उपनयन किस रीति से हुआ। हॉ, ऐसा साक्ष्य अवश्य मिलता है कि शाहू द्वितीय का उपनयन पेशवा के निर्देश पर पौराणिक विधि से अवश्य हुआ था। (राव बहादुर डोगरे द्वारा सम्पादित "सिद्धान्त विजय" की भूमिका पृ 6) शाहू के पुत्र महाराजा प्रतापसिह का क्या हुआ? उनका उपनयन हुआ या नहीं हुआ तो किस रीति से? इसका कोई पता नही चलता। हॉ, एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि करवीर के शंकराचार्य ने सांगली के कायस्थो के विषय मे सन् 1827 में अपना निर्णय दिया . – "कलियुग मे क्षत्रिय नहीं रहे। उनके कार्यालय के दस्तावेजो के अनुसार शिवाजी, शम्भाजी और शाहूजी क्षत्रिय न थे। (राव बहादुर कृत "सिद्धान्त विजय" पृ० 9) कहा जाता है कि यह बात मूल निर्णय मे न थी। सागली के ब्राह्मण राजा यह ने इसे कालान्तर में मुख्य निर्णय में अकित करा दिया। कुछ भी हो यह शिवाजी के वंशज राजा प्रतापसिंह को खुली चुनौती थी। प्रतापसिह ने

सन् 1830 मे ब्राह्मणो का एक सम्मेलन आयोजित किया और विषय विचारार्थ प्रस्तुत किया। सम्मेलन ने प्रतापसिंह के पक्ष में निर्णय देकर उनको शूद्रत्व से बचा लिया।

शिवाजी की एक वश–शाखा से पराजित ब्राह्मणों ने कोल्हापुर की दूसरी शाखा पर आक्षेप शुरु कर दिये। कोल्हापुर के एक शासक बाबा साहेब महाराज के महलपुरोहित रघुनाथ शास्त्री परवटे ने महल के सभी संस्कार पौराणिक विधि से सम्पन्न कराना प्रारम्भ कर दिया। उसे ऐसा करने से रोक दिया गया। बाबा साहेब की मृत्यु सन 1886 में हो गयी। वर्ष 1886 से 1894 तक के सभी राजा अवयस्क थे तथा प्रशासन अंग्रेजो के हाथो मे था। अत ऐसा कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष साक्ष्य नही मिल पाता जिससे यह पता चल सके कि महल–पुरोहित ने उनके सस्कार किस विधि से किये–कराये। सन् 1902 मे शाहू महाराज ने महल पुरोहित को निर्देश दिया कि वह महल के सस्कार वैदिक रित से सम्पन्न करे। किन्तु, पुरोहित ने विरोध किया और कहा – कि कोल्हापुर के शासक क्षत्रिय न होकर शूद्र हैं और सभी सस्कार पौराणिक विधि से ही कराने पर बल दिया। इस सम्बन्ध में करवीर के शकराचार्य की भूमिका विशेष रूप से स्मरणीय है। विवाद के समय शकराचार्य ने अपने शिष्य ब्राह्मणाल्कर को मठ के समस्त अधिकार सौंप दिये। प्रारम्भ में तो गुरु–शिष्य दोनो ही महल–पुरोहित के समर्थन में महाराजा के विरोधी रहे। लेकिन, कुछ समय उपरान्त ही शिष्य महाराजा को क्षत्रिय स्वीकार कर उनका पक्षधर बन गया। इससे खिन्न होकर गुरु ने शिष्य का त्याग कर दिया। तब महाराजा ने डा० कुर्तकोटि को अपना शकराचार्य नियुक्त किया फिर भी सफलता हाथ न लगी।

शिवाजी को क्षत्रिय माना गया था। अस्तु, सम्मान व्यक्तिगत न होकर वशानुगत उत्तराधिकारियों को प्राप्त हो गया था। इस सम्बन्ध मे किसी को प्रश्न का अधिकार न था। शिवाजी के किसी उत्तराधिकारी ने कोई दुष्कृत्य भी न किया था फिर भी ब्राह्मण उन्हें हीन (शूद्र) मानते थे।

यह सब इस कारण हुआ कि ब्राह्मण किसी भी हिन्दू का वर्ण निर्धारण करने के अधिकार से सम्पन्न थे। वे शूद्र को क्षत्रिय और क्षत्रिय को शूद्र बनाने में सक्षम थे। शिवाजी के इस मामले में यह सिद्ध हो जाता है कि वर्ण–निर्धारण मे ब्राह्मणो को असीमित अधिकार प्राप्त हैं।

यह कथा केवल महाराष्ट्र से उदघृत की गयी है। परन्तु ये सिद्धान्त समस्त देश में प्रचलित है। यथा :

1 उपनयन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को है। शिवाजी, प्रताप सिह या कायस्थ, पांचाल या पालशे कोई भी अब्राह्मण से उपनयन कराने का साहस न रखते थे। केवल एक बार कायस्थो ने संस्कार कराने का प्रस्ताव पारित किया था किन्तु वह मात्र ही रह गया

2 ब्राह्मण को अधिकार है कि वह किसी का उपनयन करे अथवा न करे। दूसरे शब्दो मे एकमात्र ब्राह्मण ही निर्णय दे सकता है कि अमुक जाति उपनयन की अधिकारी या पात्र है।

3 उपनयन के सम्बन्ध मे ब्राह्मण की सहमति के लिये ईमानदारी आवश्यक नहीं हैं। यह धन देकर भी कराया जा सकता है। शिवाजी ने अतुल धन देकर घाघ भट्ट से अपना उपनयन कराया था।

4 ब्राह्मण द्वारा उपनयन से इनकार का आधार वैधानिक या धार्मिक होना आवश्यक नहीं। वह राजनीतिक कारण भी हो सकता है। ब्राह्मणो ने कायस्थों का उपनयन राजनैतिक प्रतिद्विन्दिता के कारण बन्द कर दिया था।

5 एक ब्राह्मण द्वारा उपनयन करने पर केवल विद्वत् परिषद मे ही अपील की जा सकती है और विद्वत् परिषद् का सदस्य केवल ब्राह्मण ही हो सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह पूर्णत स्पष्ट हो जाता है कि उपनयन के सम्बन्ध ब्राह्मणो को वर्चस्व प्राप्त था। वे किसी को भी उपनयन से वचित करने में सर्वथा क्षम थे। अस्तु, कोई आश्चर्य का विषय नही कि उन्होंने शूद्रो के पतन–पराभव के नैमित्त इस अधिकार का प्रयोग अमोधअस्त्र के रूप मे किया।

11.

संधि-कथा

अब तक सिद्ध किया जा चुका है कि –

1 ब्राह्मणों ने आर्यो के दूसरे वर्ण क्षत्रियो के एक वर्ग शूद्रों को पतित कर समाज का चौथा वर्ण बनाया।

2 शूद्रो के पतन के निमित ब्राह्मणो द्वारा अपनायी गयी तकनीक थी उनका उपनयन बन्द कर देना।

3 ब्राह्मणो ने यह सब शूद्र राजाओ के द्वारा उनके साथ किये गये अत्याचार उत्पीड़न, अपमान आदि से दुखी होकर बदले की भावना से किया।

यद्यपि यह सब स्पष्ट है, तदपि निम्नांकित प्रश्न उठाये जा सकते हैं –

1 ब्राह्मणो का कलह केवल कुछ राजाओं से था। फिर क्या कारण है कि वे समस्त शूद्र जाति के विरोधी बन गये?

2 क्या यह द्वेष इतना प्रबल था कि ब्राह्मणो को शूद्रो से घृणा हो गयी और वे बदला लेने पर उतर आये?

3 क्या दोनों पक्षों में संधि नहीं हुई? यदि संधि हुई थी तो ब्राह्मणो के पास शूद्र

के पतन के लिये कोई स्पष्ट कारण न था। फिर भी उन्होंने ऐसा क्यो किया?

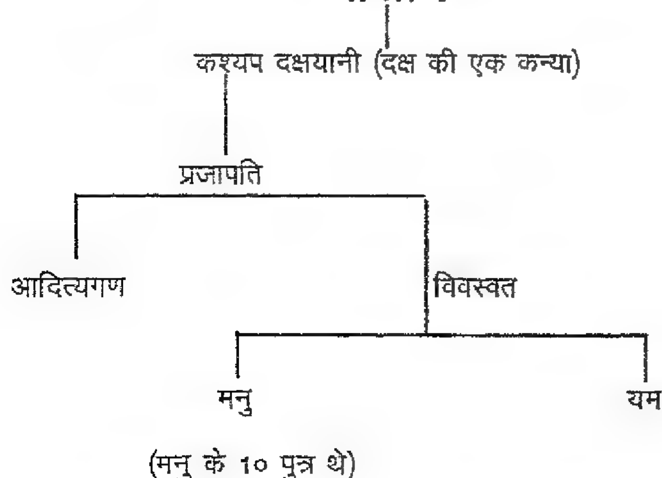
4 शूद्रो ने इस अधोपतन को कैसे सहन कर लिया?

मै मानता हूँ कि ये प्रश्न तथ्यपूर्ण है तथा इन पर गभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। अस्तु, इनका उत्तर देना उचित रहेगा।

(1)

"ब्राह्मणो का कलह केवल कुछ शूद्र राजाओ से था। फिर क्या कारण था कि उन्होने समस्त शूद्र जाति को पदच्युत करने का निश्चय किया?" प्रश्न प्रासागिक ओर सामयिक है। इसका उत्तर देना भी आसान है। इसके लिये निम्नाकित दो तथ्य दृष्टिगत रखना आवश्यक है।

1 अध्याय 9 मे वर्णित ब्राह्मणो और शूद्र राजाओ के कलह, जैसे कि दृष्टिगोचर होते है, व्यक्तिगत न थे। एक आर ब्राह्मण थे और दूसरी ओर शूद्र। वशिष्ठ–प्रकरण के अतिरिक्त सभी झगडे ब्राह्मण–मात्र से थे। ठीक इसी प्रकार जिन राजाओ से ब्राह्मणों का सघर्ष हुआ, वे सभी शूद्र वश के थे इस सम्बन्ध मे महाभारत के आदि पर्व मे सुलभ निम्नाकित वंश–वृक्ष देखें '



देव	दस्यु	नौश्युत	नाभाग	इक्ष्वाकु	करूष	शर्याति	इला	प्रशाध्र	नाभगी	शाल

क्षत्रिय राजाओ, जिनका ब्राह्मणो से सघर्ष हुआ, का आपसी सम्बन्ध शिक्षाप्रद होने के साथ–साथ विषय पर प्रकाश डालता है। पुरूरवा इला का पुत्र तथा

मनु का पौत्र था। निमि मनु पुत्र इक्ष्वाकू का पुत्र था। त्रिशकू इक्ष्वाकु की 28वीं पीढी का था। सुदास भी इक्ष्वाकु वंश का 50वी पीढी का राजा था। वेण मनु का पुत्र था। सारे राजा मनु तथा इक्ष्वाकु के वशज थे अत सुदास के सगोत्री थे सुदास के शूद्रवंशीय होने के कारण सभी राजा शूद्र थे, यह स्वयमेव सिद्ध है।

2 यद्यपि कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, तथापि यह स्वाभाविक है कि ब्राह्मणो के साथ सघर्ष में यह वंश समस्त शूद्र वश–एक पक्ष था। प्राचीन काल मे जब सघर्ष हुआ, जीवन और कर्म प्रारम्भिक अवस्था मे था तथा जाति या वंश एक मुख्य सस्था थी। एक व्यक्ति-द्वारा किया गया अपराध व्यक्तिगत नही माना जाता था। उसका परिणाम समस्त जाति या वश को भोगना पडता था। अस्तु, यह पूर्णत स्वाभाविक है कि ब्राह्मणों ने अपनी शत्रुता उत्पीडक राजाओ तक ही सीमित न रखकर सम्पूर्ण शूद्र जाति का उपनयन बन्द कर दिया।

2

क्या क्रोधोत्तेजन इतना प्रबल हो चुका था कि सधि न हो सके? हाँ, दो पक्षो मे द्वेष भाव चरम सीमा पर था तथा स्थिति विस्फोटक थी। दूसरी ओर, ब्राह्मणो द्वारा समाज में श्रेष्ठता तथा विशेषाधिकार प्राप्त करने का दावा भी असह्य हो गया था। ब्राह्मणो के दावो की लम्बी सूची का भी अवलोकन करें। श्री काणे कृत धर्मशास्त्र खण्ड द्वितीय (1) पृ० 138–53 के अनुसार ब्राह्मणी दावे इस प्रकार है.–

1 ब्राह्मण को सभी वर्गों का गुरू माना जाए।

2 अन्य वर्णो के कर्त्तव्य आचरण तथा आजीविका के श्रोत निर्धारण का अधिकार केवल ब्राह्मण का हो। सभी वर्ण जातियॉ इसका पालन करे। राजा ब्राह्मण के परामर्श से शासन–कार्य चलाये।

3 ब्राह्मण राजा के अधीन न होंगे। राजा ब्राह्मण के अतिरिक्त सब वर्णो का शासक होगा।

4 ब्राह्मण इन दण्डो से मुक्त है –1. चाबुक 2. हथकडी – बेडी 3 आर्थिक दण्ड 4 देशनिकाला 5 भर्त्सना तथा 6 बहिष्कार।

5 श्रोत्रिय (वेद–विद् ब्राह्मण) कर मुक्त है।

6 गढा हुआ खजाना यदि ब्राह्मण को मिले तो वह उसका सम्पूर्ण अधिकारी होगा। यदि राजा को मिले तो उसका अर्द्धभाग ब्राह्मण को दे।

7 निस्सन्तान मरने वाले ब्राह्मण की सम्पत्ति राज कोष में न ले जाकर

श्रोत्रियो और ब्राह्मणो मे वितरित कर दी जायेगी।

8 यदि राजा को श्रोत्रिय या ब्राह्मण रास्ते मे मिले तो वह उनके लिये मार्ग छोड दे।

9 सबसे पहले ब्राह्मण का अभिवादन किया जाय।

10 ब्राह्मण पवित्र हे। उसे हत्या के अपराध मे भी प्राण–दण्ड नही दिया जा सकेगा।

11 ब्राह्मण को धम्काना, पीटना अथवा उसके शरीर से रक्त निकालना अपराध है।

12 विशेष अपराधो के लिये अन्य वर्णो की अपेक्षा ब्राह्मण को कम दण्ड दिया जाय।

13 अभियोगी अब्राह्मण होने पर राजा ब्राह्मण को साक्षी के लिये न बुलाये।

14 यदि किसी के दस अब्राह्मण पति हों और एक ब्राह्मण उससे विवाह कर ले तो वह ब्राह्मण की भार्या होगी न कि एक क्षत्रिय अथवा वेश्य की जिससे उसने पहले विवाह किया था। (यह चौदहवीं शर्त अथर्ववेद – 5 17 8–9 में मिलती है।)

ब्राह्मणो के इन विशेषाधेकारो पर विचार करते हुए श्री काणे कहते हैं– "ब्राह्मणो को अन्य विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। यथा भिक्षाटन के लिये अन्य लोगो के घर मे बिना रोक टोक प्रवेश करना, कहीं से भी ईंधन, फूल, पानी आदि का संकलन, परायी स्त्रियों से निर्द्वन्द बातचीत करना, बिना किराया दिये सबसे पहले नदी पार करना, व्यवसाय के लिये प्रयुक्त नावो पर चुगी न देना, तथा यात्रा से थके–भूखे होने पर किसी भी खेत से दो गन्ने या कन्दमूल ले लेना।"

निस्सदेह कालान्तर में इन अधिकारों में और भी वृद्धि हई। अस्तु, यह कहना कठिन है कि सघर्ष के समय तक ब्राह्मण किन अधिकारो से सम्पन्न हो चुके थे। किन्तु यह निश्चित है कि उपरोक्त सूची मे क्रम सं 1, 2, 3, 8 और 14 पर अधिकार किसी भले और स्वाभिमानी व्यक्ति–समुदाय को भडकाने के लिये पर्याप्त कारण थे। अत क्षत्रिय राजा इन शर्तो मे कैसे सहमत होते। यहाँ हम न भूलें कि जिन राजाओं का ब्राह्मणों से कलह हुआ उनमे से अधिकाश सूर्यवंशी थे। वे विद्याध्ययन, गौरव और वैवाहिक प्रकृति में चन्द्रवशी क्षत्रियों से भिन्न थे। सूर्यवशी क्षत्रीय पौरूषेय थे। लेकिन चन्द्रवंशी क्षत्रियों में बल और आत्मगौरव का अभाव था। सूर्यवंशी क्षत्रिय विद्या और ज्ञान मे ब्राह्मणो से उत्तम थे। अनेक तो वैदिक मंत्रो के

सृष्टा राजर्षि थे। अत उन्होने ब्राह्मणो को चुनौती दी।

ऋग्वेद की अनुक्रमणिका के अनुसार निम्नांकित स्त्रोत्र मत्रो के सृष्टा अधोलिखित सूर्यवंशी राजा गण थे।

ऋग्वेद 6.15 वीतहव्य (अथवा भारद्वाज)

10 9	अम्बरीष–पुत्र सिन्धुद्वीप (अथवा त्वष्ट्रि–तनय त्रिशिरस)
10 75	प्रियमेध का पुत्र सिन्धुक्षित
10 133	पिजवन–पुत्र सुदास
10 134	युवनाश्व का पुत्र मान्धातृ
10 148	पृथि वैण्य
10 179	उशीनार–पुत्र शिवि, काशिराज दिवोदास–पुत्र प्रतार्दन तथा रोहिदाश्व का पुत्र वसुमानस।

मत्स्युपुराण के अनुसार ऋग्वेद के मत्रो के रचनाकार निम्नांकित है:–

भृगु, कश्यप, प्राचेतस, दधीचि, आत्मावत, और्व, जमदग्नि, कृप, शारद्वत अर्ष्टिसेन, युधजित, वीतहव्य, सुवर्चस, वेण, पृथु दिवोदास, भारद्वाज, भालन्दन शौनक (ये भृगु है), अगिरस, वेलस, अम्बरीष, युनाश्व, पुरूकुत्स, प्रद्‌युम्न, श्रवनाश्व अजामेध, हर्यश्व, तक्षप, कवि, प्रधाश्व, विरूप, कण्व,-मुदगल, उताथ्य, शारद्वत वाजश्रवा, आपस्य, सुवित्त, वामदेव, अजीत, बृहदुक्थ, दीर्घातमा, काक्षीवत (ये 33 अगिरव्र है), गाधि–पुत्र विश्वामित्र, देवराज, बल, मधुछन्द ऋषभ, आधमार्शन, अष्टक लोहित, भ्रीतकिल, वेदश्रवा, देवरत, पूर्णश्व, धनंजय, मिथिल, शालकायन (ये सब कौशिक है), क्षत्रियो मे तीन प्रमुख मत्रदृष्टा हैं मनु वैवस्वत इदा और पुरुरवा। वैश्यो मे भालन्द, बंद्‌य और सस्कृति प्रमुख तीन मंत्रदृष्टा हुए हैं इस प्रकार ब्राह्मणो, क्षत्रियो ओर वैश्यों के 91 व्यक्तियों ने वैदिक मत्रो की रचना की है। मत्र–सृजन मे क्षत्रिय अग्रणीय थे। प्रसिद्ध गायत्री मत्र के रचयिता क्षत्रिय विश्वामित्र थे।

ब्राह्मणों की मॉगों से विद्याध्ययन और शूरता के आधार पर प्राप्त गौरव को भीषण आघात पहुँचता था। अत उनकी चुनौती को स्वीकार न करना क्षत्रियो के लिये असंभव था। लेकिन उन्होंने इस चुनौती का उत्तर दमन से दिया। उन्होने ब्राह्मणों के कूल्हो और पेट पर आघात किये। वेण ने ब्राह्मणों को देवताओ के स्थान पर अपनी पूजा करने को बाध्य किया। पुरूरवा ने उनकी धन–सम्पत्ति लूट लीं। नहुष ने ब्राह्मणो को रथ में जोतकर नगर मे घुमाया, निमि ने अपने कुल–पुरोहित

को अपने कुल–परम्परागत सस्कार करने से रोक दिया। सुदास ने इन सबसे आगे जाकर अपने पूर्व कुल–पुरोहित वशिष्ठ के पुत्र शक्ति को जीवित जला डाला। इस प्रकार ब्राह्मणों के पास शूद्रो से बदला लेने के लिये निश्चित रूप से इससे बड़ा और कोई कारण हो ही नही सकता था।

3

ब्राह्मणो और शूद्रो के मध्य सधि के कुछ साक्ष्य मिलते है। इससे पहले कि मै इस साक्ष्य पर अपना मत स्थापित करूँ, मैं उक्त साक्ष्य की जानकारी देना परम आवश्यक समझता हूँ। सधि की कथाये महाभारत और पुराणों में है।

पहली कथा भरत (जिस मे विश्वामित्र थे) तथा तृत्सु (जिस मे वशिष्ठ थे) की है। भरत तृत्सुओ के शत्रु थे। यह ऋग्वेद (3, 53 24) से स्पष्ट है – "हे इन्द्र भरत–पुत्र वशिष्ठो को आने (प्रगति) से रोकते हैं।"

महाभारत के आदि पर्व मे संधिकथा इस प्रकार है–

"और उनके शत्रुओ ने भरतो को मारा। पाचाल्य चतुरंगिणी सेना से आक्रमण मित्रो के साथ भाग खडा हुआ और सिधु के जंगलो में शरणापन्न हुआ। भरत वहाँ एक हजार साल तक रहे। वशिष्ठ ऋषि के आने पर भरतों ने उनका अर्घ्य से स्वागत किया। महर्षि के आसनारूढ होने पर राजा ने विनम्र निवेदन किया – "आप हमारे पुरोहित बने। तदुपरान्त हमे हमारे राज्य की पुनर्प्राप्ति में सहायता दे।" वशिष्ठ ने स्वीकृति दे दी। ऐसा सुना जाता है कि वशिष्ठ ने पुरू को समस्त क्षत्रियो की प्रभुता सौप दी। उसने उद्यम के बल पर भरतो के खोये हुए राज्य पर तो अधिकार किया ही, अन्य सभी राजाओ को भी अपने आधीन किया।" दूसरी कथा भृगुओ और क्षत्रिय राजा कृतवीर्य के मध्य विग्रह और सधि की है। महाभारत के आदिपर्व की इस कथा के अनुसारः–

"कृतवीर्य नाम का एक राजा था। भृगु ने उसका यज्ञ कराया और राजा से गौएं और धन प्राप्त किया। राजा की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी धनी भृगुओं ने धन जमीन मे गाढ़ दिया था। कुछ ने ब्राह्मणो को दे दिया और कुछ ने राज–पुत्रों को वापस दे दिया। एक क्षत्रिय ने एक भृगु का घर खोदकर जमीन में दबा धन खोज निकाला। सारे क्षत्रियो ने उस खजाने को देखा और क्रोध मे आकर सब भृगुओ का वध कर दिया। उन्होंने गर्भस्थ शिशुओ तक पर भी दया तक न की। विधवाये हिमालय की ओर भाग गयीं। उनमें से एक ने अपने गर्भ को छिपा लिया। एक ब्राह्मण मुखबिर स्त्री से यह समाचार प्राप्त कर वे उसे मारने गये किन्तु उस गर्भस्थ शिशु के तेज से अंधे होकर जंगलों मे भटकने लगे। हारकर उन्होंने नेत्रो

की ज्योति फिर से पाने के लिये शिशु की मा की स्तुति की , शिशु की मा के परामर्श पर क्षत्रियों ने नवजात शिशु और्व की स्तुति कर फिर से नयनो की ज्योति पायी। और्व वेद–वेदागो में पारगत बताया जाता है।

भृगुओं के वध का बदला लेने के लिये और्व कठिन तप करने लगा। देवता असुर और मानव चिन्तित हो उटे। और्व के पूर्वजों ने आकर उन्हे समझाया– वे क्षत्रिय से बदला नहीं लेना चाहते। वे स्वय वृद्ध हो गये थे और मरना चाहते थे। आत्मघात के अपराध से बचने के लिये ही उन्होने जमीन मे धन दबाकर क्षत्रियो को भडकाया था। अस्तु, हे पुत्र! तुम अपने क्रोध से क्षत्रियो और सातो द्वीपों को नष्ट न करो।" और्व ने उत्तर दिया–यदि मेरा क्रोध दूसरो पर न उतरा तो स्वय मुझे ही नष्ट कर देगा। इस पर पितृस ने उसे अपना क्रोध समुद्र में बहाने का परामर्श दिया। समुद्र मे जाते ही क्रोध हयसिरस बन गया जो अग्नि उगलता और जल पीता है।"

तीसरी कहानी हैहय नरेश कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन और ब्राह्मण परशुराम की है। यह महाभारत के वनपर्व में निम्न प्रकार है

"बताया जाता है कि हैहय राजा कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन के एक सहस्र हाथ थे। उसने दत्तात्रेय से अनिवारणीय गति का एक स्वर्ण रथ प्राप्त कर लिया और देव यक्ष ऋषि आदि सब का दमन किया। देवता और ऋषि विष्णु के पास गये। वे और इन्द्र, अर्जुन से अपमानित हो चुके थे अत उन्होंने उसके वध की योजना बनायी। कान्यकुब्ज के राजा गाधि की पुत्री सत्यवती का विवाह ऋषि ऋचिक से हुआ ओर जमदग्नि का जन्म हुआ। ऋषि जमदग्नि के पॉच पुत्र थे जिनमे परशुराम सबसे छोटे थे। परशुराम ने पिता की आज्ञा से अपनी मॉ का वध कर दिया और अपने पिता से दीर्घायु और अजेय होने का वरदान पाया। बाद में परशुराम के आग्रह पर जमदग्नि ने रेणुका को जीवित कर दिय।

एक दिन अर्जुन जमदग्नि के आश्रम मे आया। ऋषि–पत्नी ने उसका स्वागत किया। लौटते वक्त अर्जुन आश्रम के फलदायी वृक्षो को गिरा गया और ऋषि की गाय और बछडे को ले गया। परशुराम को बहुत क्रोध आया और उन्होंने उसके सहस्र हाथ काटकर उसे मार डाला। अर्जुन के पुत्रों ने परशुराम की अनुपस्थिति में जमदग्नि को मार डाला। परशुराम का क्रोध भडक उठा और उन्होंने पृथ्वी से क्षत्रियो का अस्तित्व समाप्त करने का प्रण किया। वे अपने अस्त्र–शस्त्र लेकर निकल पडे। उन्होने अर्जुन के पुत्रो, पौत्रो सहित सैंकडो हैहयो को मार गिराया। पृथ्वी रक्त से लाल हो उठी। क्रूरता के साथ किये गये क्षत्रियोच्छेद से उनका मन दुख से आप्लावित हो गया। अत वे मन को शान्त करने के ध्येय से तपस्या करने के लिये

वन म चले गय। कुछ सहस्र वर्ष बीत जाने पर विश्वामित्र के पौत्र और रैभ्य के पुत्र परावसु ने जनकपुर में एक भरी सभा में ताना देते हुए कहा– "क्या ययाति की इस समृद्ध नगरी मे एकत्रित प्रतार्दन आदि पुण्यात्मा क्षत्रिय नहीं है? क्षत्रियोच्छेद के आपके प्रण का क्या हुआ जो इस सभा मे डींग मार रहे हैं? अपनी असफलता छिपाने के लिये, क्षत्रियो के भय से, आपने पर्वतो की कन्दराओं मे शरण नहीं ली क्या? क्या इस समय पृथ्वी सैकडा क्षत्रियो के वशो से पदाक्रान्त नही है?" यह सुनते ही राम ने परशुराम के अस्त्र–शस्त्र छीन लिये। इस समय तक सैकडो क्षत्रिय जो परशुराम के क्रोध से बच गये थे, शक्तिशाली राजाओं के रूप में उभर आये थे।

सघर्ष कथा के उपरान्त महाभारत का रचनाकार सधि की कहानी इस प्रकार कहता है–

"जमदग्नि–पुत्र परशुराम पृथ्वी पर इक्कीस बार क्षत्रियोच्छेद करने के पश्चात महेन्द्र पर्वत पर तप करने लगे। क्षत्रिय–विधवाओ को सतति की कामना हुई। अस्तु, वे ब्राह्मणों के पास आयीं। निष्काम ब्राह्मणो ने उनके साथ सम्भोग किया। वे गर्भिणी हुई। और कालान्तर मे उन्होने वीर पुत्रो और पुत्रियों को जन्म दिया। इन्हीं से क्षत्रिय वश चला। इस प्रकार ब्राह्मणो और क्षत्रिय स्त्रियो के मिश्रण से क्षत्रिय वश की वृद्धि हुई। तभी से चार ब्राह्मणेत्तर जातियो का उदय हुआ।"

ब्राह्मण–क्षत्रिय विग्रह और सधि की उपरोक्त कथाओ में उन क्षत्रिय राजाओ, जिन्होने ब्राह्मणो के विशेषाधिकारो के विरुद्ध युद्ध–घोषणा कर रखी थी, का कोई उल्लेख नही है। आइये, हम सधि–कथाओं की ओर वापस लौट चले ताकि विषयान्तर न हो सके। पहला वृतान्त सुदास–पुत्र कल्माषपाद का है। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया गया कि वह कौन सा सुदास था फिर भी विवरण के अनुसार यह पिजवन सुदास सिद्ध होता है। महाभारत के आदि पर्व मे यह वृतान्त इस तरह है–

"शक्ति की पत्नी अद्रस्यन्ति ने अनेक पर्वतों और देशों के भ्रमण में वशिष्ठ का अनुगमन किया। वशिष्ठ को उसके गर्भ से वेदोच्चारण सुनाई दिया। अत वश–वृद्धि की आशा मे वशिष्ठ ने प्राणान्त का विचार किया। अद्रस्यन्ति के गर्भ से पराशर ने जन्म लिया। एक बार राजा कल्माषपाद ने वन में वशिष्ठ और अद्रस्यन्ति को निगलने का असफल प्रयास किया जिसे वशिष्ठ ने फुफकार कर रोका। मन्त्रपूत जल के छीटे मारकर राजा को बारह वर्ष के शाप से मुक्त कर दिया। शाप–मुक्त राजा ने वशिष्ठ की अभ्यर्थना की–"हे, उत्तम ऋषि, मैं वह सौदास हूँ जिसके आप पुरोहित है। मैं आपकी प्रसन्नता के निमित्त क्या कर सकता हूँ?

सेवा बतायें।"

की ज्योति फिर से पाने के लिये शिशु की मॉ की स्तुति की। शिशु की मॉ के परामर्श पर क्षत्रियों ने नवजात शिशु और्व की स्तुति कर फिर से नयनो की ज्योति पायी। और्व वेद–वेदागों में पारगत बताया जाता है।

भृगुओ के वध का बदला लेने के लिये और्व कठिन तप करने लगा। देवता असुर और मानव चिन्तित हो उठे। और्व के पूर्वजों ने आकर उन्हे समझाया– वे क्षत्रिय से बदला नहीं लेना चाहते। वे स्वय वृद्ध हो गये थे और मरना चाहते थे। आत्मघात के अपराध से बचने के लिये ही उन्हाने जमीन मे धन दबाकर क्षत्रियो को भडकाया था। अस्तु, हे पुत्र! तुम अपने क्रोध से क्षत्रियो और सातों द्वीपो को नष्ट न करो।" और्व ने उत्तर दिया–यदि मेरा क्रोध दूसरो पर न उतरा तो स्वयं मुझे ही नष्ट कर देगा। इस पर पितृस ने उसे अपना क्रोध समुद्र मे बहाने का परामर्श दिया। समुद्र मे जाते ही क्रोध हयसिरस बन गया जो अग्नि उगलता और जल पीता है।"

तीसरी कहानी हैहय नरेश कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन और ब्राह्मण परशुराम की है। यह महाभारत के वनपर्व मे निम्न प्रकार है

"बताया जाता है कि हैहय राजा कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन के एक सहस्र हाथ थे। उसने दत्तात्रेय से अनिवारणीय गति का एक स्वर्ण रथ प्राप्त कर लिया और देव यक्ष ऋषि आदि सब का दमन किया। देवता और ऋषि विष्णु के पास गये। वे और इन्द्र, अर्जुन से अपमानित हो चुके थे अत उन्होने उसके वध की योजना बनायी। कान्यकुब्ज के राजा गाधि की पुत्री सत्यवती का विवाह ऋषि ऋचिक से हुआ और जमदग्नि का जन्म हुआ। ऋषि जमदग्नि के पॉच पुत्र थे जिनमे परशुराम सबसे छोटे थे। परशुराम ने पिता की आज्ञा से अपनी मॉ का वध कर दिया और अपने पिता से दीर्घायु और अजेय होने का वरदान पाया। बाद मे परशुराम के आग्रह पर जमदग्नि ने रेणुका को जीवित कर दिय।

एक दिन अर्जुन जमदग्नि के आश्रम मे आया। ऋषि–पत्नी ने उसका स्वागत किया। लौटते वक्त अर्जुन आश्रम के फलदायी वृक्षो को गिरा गया और ऋषि की गाय और बछडे को ले गया। परशुराम को बहुत क्रोध आया और उन्होने उसके सहस्र हाथ काटकर उसे मार डाला। अर्जुन के पुत्रो ने परशुराम की अनुपस्थिति में जमदग्नि को मार डाला। परशुराम का क्रोध भडक उठा और उन्होने पृथ्वी से क्षत्रियो का अस्तित्व समाप्त करने का प्रण किया। वे अपने अस्त्र–शस्त्र लेकर निकल पडे। उन्होंने अर्जुन के पुत्रों, पौत्रो सहित सैकड़ों हैहयो को मार गिराया। पृथ्वी रक्त से लाल हो उठी। क्रूरता के साथ किये गये क्षत्रियोच्छेद से उनका मन दुख से आप्लावित हो गया। अत वे मन को शान्त करने के ध्येय से तपस्या करने के लिये

वन मे चले गये। कुछ सहस्त्र वर्ष बीत जाने पर विश्वामित्र के पौत्र और रैभ्य के पुत्र परावसु ने जनकपुर मे एक भरी सभा में ताना देते हुए कहा– "क्या ययाति की इस समृद्ध नगरी मे एकत्रित प्रतार्दन आदि पुण्यात्मा क्षत्रिय नही हैं? क्षत्रियोच्छेद के आपके प्रण का क्या हुआ जो इस सभा मे डींग मार रहे हैं? अपनी असफलता छिपाने के लिये, क्षत्रियो के भय से, आपने पर्वतो की कन्दराओ मे शरण नहीं ली क्या? क्या इस समय पृथ्वी सैकडो क्षत्रियो के वशो से पदाक्रान्त नही है?" यह सुनते ही राम ने परशुराम के अस्त्र–शस्त्र छीन लिये। इस समय तक सैकड़ों क्षत्रिय जो परशुराम के क्रोध से बच गये थे, शक्तिशाली राजाओ के रूप में उभर आये थे।

सघर्ष कथा के उपरान्त महाभारत का रचनाकार सधि की कहानी इस प्रकार कहता है–

"जमदग्नि–पुत्र परशुराम पृथ्वी पर इक्कीस बार क्षत्रियोच्छेद करने के पश्चात महेन्द्र पर्वत पर तप करने लगे। क्षत्रिय–विधवाओ को सतति की कामना हुई। अस्तु, वे ब्राह्मणो के पास आयीं। निष्काम ब्राह्मणो ने उनके साथ सम्भोग किया। वे गर्भिणी हुई। और कालान्तर में उन्होने वीर पुत्रो और पुत्रियों को जन्म दिया। इन्हीं से क्षत्रिय वश चला। इस प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रिय स्त्रियो के मिश्रण से क्षत्रिय वश की वृद्धि हुई। तभी से चार ब्राह्मणेत्तर जातियो का उदय हुआ।"

ब्राह्मण–क्षत्रिय विग्रह और सधि की उपरोक्त कथाओ में उन क्षत्रिय राजाओ, जिन्होंने ब्राह्मणो के विशेषाधिकारों के विरुद्ध युद्ध–घोषणा कर रखी थी, का कोई उल्लेख नही हे। आइये, हम सधि–कथाओ की ओर वापस लौट चले ताकि विषयान्तर न हो सके। पहला वृतान्त सुदास–पुत्र कल्माषपाद का है। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया गया कि वह कौन सा सुदास था फिर भी विवरण के अनुसार यह पिजवन सुदास सिद्ध होता है। महाभारत के आदि पर्व में यह वृतान्त इस तरह है–

"शक्ति की पत्नी अद्रस्यन्ति ने अनेक पर्वतो और देशों के भ्रमण में वशिष्ठ का अनुगमन किया। वशिष्ठ को उसके गर्भ से वेदोच्चारण सुनाई दिया। अत वश–वृद्धि की आशा मे वशिष्ठ ने प्राणान्त का विचार किया। अद्रस्यन्ति के गर्भ से पराशर ने जन्म लिया। एक बार राजा कल्माषपाद ने वन में वशिष्ठ और अद्रस्यन्ति को निगलने का असफल प्रयास किया जिसे वशिष्ठ ने फुफकार कर रोका। मंत्रपूत जल के छीटे मारकर राजा को बारह वर्ष के शाप से मुक्त कर दिया। शाप–मुक्त राजा ने वशिष्ठ की अभ्यर्थना की–"हे, उत्तम ऋषि, मैं वह सौदास हूँ जिसके आप पुरोहित हैं। मै आपकी प्रसन्नता के निमित्त क्या कर सकता हूँ?

सेवा बतायें।"

वशिष्ठ ने कहा— "जो कुछ हुआ है, वह दैविक शक्ति से हुआ है। अस्तु हे राजन, अब आप जाकर अपना राज सभाले। किन्तु, ब्राह्मण—निन्दा न करना।" राजा ने वचन दिया— "मै ब्राह्मण को किसी भी तरह हीन न समझूँगा। मै आपके आदेश शिरोधार्य कर उन्हे सब तरह सम्मानित करूँगा। अब आप मेरी सन्तति (पुत्र) लाभ प्राप्त करने की इच्छा पूर्ण करे ताकि मैं इक्ष्वाकु वश के ऋण से उऋण हो सकूँ।" वशिष्ठ के अनुरोध मान लेने पर वह अयोध्या लौट आये। बारह वर्ष उपरान्त वशिष्ठ के सहवास से साम्राज्ञी मदयन्ती ने गर्भ धारण किया और एक पुत्र को जन्म दिया। अनुशासन पर्वमहाभारत— मे मदयन्ती को मित्रसाह की भार्या बताया गया है। मित्रसाह कल्माषपाद का दसरा नाम था।

अब महाभारत के अनुशासन पर्व का दूसरा दृष्टान्त देखे —

"एक बार वकृता करने वाले इक्ष्वाकुवशीय राजा सुदास ने अपने कुल—पुरोहित, अविनाशीसन्त, उत्तम ऋषि, सम्पूर्ण ससार को हिलाने मे समर्थ दैविक ज्ञान के भण्डार वशिष्ठ को सादर अभिवादन कर पूछा— "हे परमादरणीय निर्दोष ऋषि, तीनों लोको में वह पवित्रतम् वस्तु क्या है जिसके निरन्तर पूजन से सर्वोत्तम गुणो की प्राप्ति होती है।" वशिष्ठ ने उत्तर मे गुणो और उनकी उपादेयता का विस्तार पूर्वक वर्णन कर गाय की महत्ता बतायी। उस जितेन्द्रिय नरेश ने ऋषि के उपदेश से प्रभावित हो कर गायो के रूप मे ब्राह्मणो को यथेष्ट धन दिया। इससे उसे ऋषि के रूप मे ख्याति प्राप्त हुई।"

सुदास के वशजो से सम्बन्धित संधि की कथा महाभारत के शान्ति पर्व मे है

"कश्यप ने पृथ्वी को विजित कर ब्राह्मणो को बसाया और स्वयं वन मे चले गये। शूद्र और वैश्य, ब्राह्मण स्त्रियो को सताने लगे, बलवान निर्बल को दबाने लगे सम्पत्ति पर किसी का आधिपत्य न रहा। क्षत्रियो से अरक्षित पृथ्वी पाताल की ओर जाने लगी। कश्यप ने उसे अपने ऊपर धारण किया। अतः पृथ्वी उर्वी कहलायी। तब पृथ्वी ने अपनी रक्षा के हेतु कश्यप से एक राजा की याचना की— "मैने हैहय वश की विधवाओ से उत्पन्न अनेक क्षत्रियो को बचा रखा है। उनमे रिक्षवत पर्वत के रीछों द्वारा पालित पुरुवशी विदूरथ का पुत्र भी है। मेरी इच्छा है कि वही मेरा रक्षक बने। इसी प्रकार गौरवशाली ऋषि पाराशर ने सुदास के वशज सर्वकर्मण की रक्षा की है। अन्य राजाओं के वशज द्योकार तथा स्वर्णकारो के रूप मे देश के विभिन्न भागो में सुरक्षित हैं। उनके पितामह तथा पिता मेरे निमित्त पराक्रमी राम द्वारा मार डाले गये थे। अस्तु, मैं उनके हितों की रक्षा करके बदला चुकाना चाहती हूँ। मै अपनी रक्षा के लिये कोई असाधारण महापुरुष नही चाहती। मेरी तुष्टि तो एक

ग शासक से भी हो जायेगी। अस्तु, आप शीघ्रता कर उस अभाव की पूर्ति करे।" ने पृथ्वी द्वारा बताये गये क्षत्रियो को बुलाकर उन्हें राजाओ के रूप मे त कर दिया।"

यह साक्ष्य? यह कोई विश्वसनीय मान सकता है क्या? मेरे अपने नार ऐसे साक्ष्यो को स्वीकारना तो दूर रहा इनसे सावधान रहने की कता हे। क्योकि –

सारी सधि–कथाओ का अन्त ऐसी शान्ति मे हाता है जिनमे क्षत्रियो के प्रति अनादर निहित है। प्रत्येक कथा मे क्षत्रियो को घुटने टेकने की स्थिति मे दर्शाया गया है। भरत तृत्सुओ के शत्रु हैं। उनके राज्य में दुर्भिक्ष पडता है। वे देश छोडते हे। अत उनका राज्य छिन जाता है। वे अपने पुरातन चिर शत्रु वशिष्ठ के समक्ष उनका पुरोहित बनने तथा दुर्भिक्ष की आपत्ति से बचाने के लिये गिडगिडात हैं। भृगु और क्षत्रियो की कथा मे सारा श्रेय ब्राह्मणो को दिया गया है। हैहय क्षत्रियो और सौदास कल्माषपाद के वृतान्त मे बताया गया है कि क्षत्रियो ने विजेता ब्राह्मणो को अपनी स्त्रियॉ देकर सधि क्रय की। ये कहानियॉ ब्राह्मणो की प्रशंसा करने तथा क्षत्रियो को लज्जित करने के ध्येय से गढी गयी है। ऐसी गन्दी, भद्दी और निन्दनीय कहानियो को ऐतिहासिक सत्य नही माना जा सकता। मात्र ब्राह्मणवाद का अध समर्थक ही ऐसा कर सकता है।

जहॉ तक ब्राह्मणो और सुदास के वशज शूद्रो के मध्य सघर्ष का सम्बन्ध है इसके पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं कि उनमे सधि हुई ही नहीं। वशिष्ठ के पौत्र ओर शक्ति के पुत्र पाराशर को जब यह विदित हुआ कि सुदास ने उसके पिता को जीवित जला दिया था, उसने शूद्रो के सामुहिक सहार का प्रण किया। ऐसी ही प्रतिज्ञा वशिष्ठ ने सुदास के वश के प्रति की थी। महाभारत मे निस्सदेह, यह बताया गया है कि वशिष्ठ ने पाराशर को बदला न लेने के लिये सहमत किया। और इस सम्बन्ध मे उन्होने भृगुओ और क्षत्रियो के सघर्ष का हवाला देते हुए बताया कि भृगुओ ने हिसा का मार्ग न अपनाकर क्षत्रियों पर किस प्रकार विजय पायी। यह वृतान्त सत्य न होकर गढ़ा हुआ हे क्योकि इसमें ब्राह्मणो की श्रेष्ठता सिद्ध करने का कुप्रयास है।

ब्राह्मण और शूद्रो में सधि न होने का सबल प्रमाण ब्राह्मणो द्वारा शूद्रों के जारी किये गये कानून हैं। इनकी वृद्धि, उत्पत्ति और असाधारणता का वर्णन ी किया जा चुका है। इन काले कानूनों की पृष्ठभूमि मे समझौता या सधि नाव स्वत ही अमान्य सिद्ध हो जाता है। ब्राह्मणो ने केवल शूद्रो से ही बदला

नहीं लिया, उन्होने बदले की भावना से शूद्रो की सन्तान को भी सदा सर्वदा के लिये निर्दयता–कठोरता से कुचल डाला इन काले कानूनो के माध्यम से। अत चाण्डालो और निषादो के विषय मे जानकारी देना वाछनीय होगा।

चाण्डाल और निषाद मिश्रित (अतर्जातीय) विवाह से उत्पन्न वर्णसकर सतति हैं। निषाद अनुलोम है तथा चाण्डाल प्रतिलोम। अनुलोम उपनयन के अधिकारी है किन्तु ब्राह्मण पिता और शूद्र माता की सतान निषाद, अनुलोम होते हुए भी उपनयन का अनाधिकारी ठहराया गया है। ऐसा क्यो? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि यह ब्राह्मणो का अपने शत्रु (शूद्र स्त्री) के बच्चो के साथ बदले की भावना से किया गया कृत्य है। देखिये –

पिता	माता	संतान का नाम (वश या जाति)
ब्राह्मण	*क्षत्रिय*	*मूर्धवसिन*
ब्राह्मण	*वैश्य*	*अम्बष्ट*
ब्राह्मण	*शूद्र*	*निषाद*
क्षत्रिय	*वैश्य*	*माहिष्य*
क्षत्रिय	*शूद्र*	*उग्र*
वैश्य	*शूद्र*	*करण*

गौतम धर्मसूत्र (4 21) के अनुसार प्रतिलोम छः प्रकार के होते है –

पिता	*माता*	*सतान का नाम (वश या जाति)*
शूद्र	*ब्राह्मण*	*चाण्डाल*
शूद्र	*क्षत्रिय*	*क्षत्तर*
शूद्र	*वैश्य*	*आयोगव*
वैश्य	*ब्राह्मण*	*सूत*
वैश्य	*क्षत्रिय*	*वैदेहक*
क्षत्रिय	*ब्राह्मण*	*मागध*

यद्यपि मनु ने इन्हें नीच बताया है तथापि सभी प्रतिलोम कलंकित नही हैं। आयोगव और क्षत्तर को अधिकारो और सुविधाओं के सम्बन्ध मे विशेष छूट दी गयी है। किन्तु चाण्डाल के लिये दण्ड–विधान का प्रावधान किया गया है। इस सम्बन्ध मे मनुस्मृति के उद्धरण प्रस्तुत हैं

मनुस्मृति (10 46)	आयोगव का धन्धा बढईगिरी होगा।
मनुस्मृति (10 49)	क्षत्तर की जीविका विलो मे रहने वाले जानवरो को पकडना और मारना होगा।

उनको नीच उद्यम बताया गया। आइये, अब चाण्डाल के विषय मनुस्मृति का विधान देखे –

"ब्राह्मण भोजन करते समय चाण्डाल, सुअर, कौवा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री तथा नपुंसक को न देखे।" (3 239)

"कोई व्यक्ति पतित, चाण्डाल, पुक्कस, मूढ, घमण्डी, नीच और अन्त्यवासिनो के साथ न रहे।" (4 79)

"चाण्डाल रजस्वला स्त्री, पतित शव या इनको छूने वाले व्यक्ति से छू जाने पर स्नान से शुद्धि हो जाती है।" (5 85)

"कुत्ते द्वारा मारे गये जगली पशु तथा चाण्डाल या दस्यु के किसी मासाहारी पशु द्वारा किये गये आखेट का मांस पवित्र होता है। (5, 131)

"एक वर्ष की अवधि मे दोबारा अपराध करने का दण्ड दूना होगा। व्रात्य अथवा चाण्डाल स्त्री स सम्भोग के लिये भी यही दण्ड है। (8 373)

"चाण्डाल और श्वपच गॉव के बाहर रहे। कुत्ते और गदहे ही उनकी सम्पत्ति मात्र है।" (10 51)

"अच्छे और बुरे का ज्ञान होने पर भी भूख से व्याकुल विश्वामित्र ने चाण्डाल के द्वारा दिया कुत्ते का मास खाया।" (10 108)

"ब्राह्मण कभी भी यज्ञ कार्य के लिये शूद्र से धन की याचना न करे क्योंकि शूद्र के धन से यज्ञ करने वाले मृत्योपरान्त चाण्डाल के घर ही जन्म लेते है।" (6 24)

"यदि कोई ब्राह्मण अनजाने मे चाण्डाल अथवा नीच जातीय स्त्री से कायिक सम्भोग कर ले अथवा उसका भोजन ग्रहण कर ले अथवा उसका उपहार (दक्षिणा) स्वीकार कर ले तो पतित हो जाता है। जानकर ऐसा करने पर वह उसी जाति का हो जाता है।" (11 175)

"ब्राह्मण का वध करने वाला कुत्ता, सुअर, गधा, ऊँट, गाय, बकरा, भेड, वन्य पशु, पक्षी, चाण्डाल और पुक्कस की योनि मे जन्म लेता है।" (11 55)

आयोगव, चाण्डाल ओर क्षत्तार–सभी प्रतिलोम हैं। फिर अकेले चाण्डाल

को ही अप्रतिष्ठित या कलकित क्यो ठहराया गया है? मात्र इसलिये कि वह ब्राह्मणा द्वारा शूद्र स्त्री की सतति है। वस्तुत यह शूद्रो के प्रति बदले की भावना से किया गया ब्राह्मण–कृत्य है।

इससे निस्सदहे यह सिद्ध हो जाता है कि ब्राह्मणो और शूद्रों मे सधि हुई ही नही।

4

अन्तिम प्रश्न यह है कि "शूद्रो ने यह अधापतन कैसे सहन कर लिया?" इस प्रश्न के मूल मे सभवत यह मत है कि प्राचीन आर्यो मे शूद्रो की जनसख्या विशाल थी। अस्तु, विशाल जनसख्या वाले शूद्र अल्पसख्यक ब्राह्मणो द्वारा उपनयन बन्द कर देना सहन कर बैठे, यह कुछ आश्चर्यजनक भले ही न हो विचित्र अवश्य है। यह मत संभवत हिन्दुओ मे शूद्रो की सख्या को दृष्टिगत रखते हुए किया गया लगता है। यह निराधार है। हिन्दू समाज के शूद्र प्राचीन आर्यो के शूद्रो के वशज नही है।

भारतीय आर्यो के शूद्र और आधुनिक हिन्दू समाज के शूद्र का अर्थ–भेद न कर पाने के कारण ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। आर्यो मे यह एक जाति (वश या कुल) विशेष का नाम था। किन्तु हिन्दू समाज मे "शूद्र" शब्द कोई स्वाभाविक नाम नही है। यह तथाकथित नीच अथवा असभ्य मानव–वर्ग के लिये प्रयुक्त गुणवाचक शब्द–सज्ञा है। यह मानव–वर्ग सामान्यत अनेक जातियो, कुलों, वशो तथा कबीलो का समूह मात्र है। जिनके रहन–सहन, खान–पान, रस्म–रिवाज आदि मे भिन्नता तथा विविधता है। बस एक साम्य है और वह यह कि वे सब हिन्दू है। और हिन्दू सस्कृति के धरातल पर वे सबसे नीचे हैं। उनको शूद्र कहना अनुचित है। उनका ब्राह्मणों को कलेश देने वाले आर्यो के शूद्रों से कोई सम्बन्ध नही है। यह बडे खेद का विषय है कि आधुनिक युग के निर्दोष और सामाजिक स्तर पर पिछडे लोगो को मूल आर्यों से सम्बद्ध कर अकारण ही दण्डनीय बनाकर बेबस कर दिया गया है।

सूत्रकार दोनो प्रकार के शूद्रो का अन्तर भली भाति जानते थे। अन्यथा वे सच्छूद्र और असच्छुद्र एव अनिर्वासति और निर्वासित शूद्रो मे भेद न करते। सच्छूद्र का अर्थ है सभ्य शूद्र और असच्छूद्र का अर्थ है असभ्य शूद्र। निर्वासित शूद्र का अर्थ है गॉव मे रहने वाला शूद्र और अनिर्वासित शूद्र का अर्थ है गॉव के बाहर रहने वाला शूद्र। काणे महोदय कृत धर्मशास्त्र खण्ड द्वितीय (1) पृ० 123 के अनुसार ये नाम शूद्रों के स्तर मे हो रहे सुधार को देखते हुए दिये गये थे। यह मत सत्य से दूर है यह है कि सच्छूद्र और अनिर्वासित शूद्र आर्य शूद्र हैं जबकि

असच्छूद्र और अनिर्वासित शूद्र हिन्दू शूद्र है।

हमारे चिन्तन का विषय आर्यो के शूद्र हैं जिनका हिन्दू समाज के शूद्रो से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिय यह नही माना जा सकता कि यदि हिन्दुओ मे शूद्रो की सख्या अधिक है तो आर्यो मे भी शूद्रो की जनसख्या बडी थी। यह तर्क तथ्यजनित न होने के कारण हमारे विचार का आधार नही बन सकता।

हम यह ठीक तरह नहीं जानते कि आर्यो के शूद्र जाति, कुल या परिवार समूह थे। यदि हम उन्हें एक जाति मान ले तो भी उनकी सख्या कुछ सहस्र स अधिक नही रही होगी। ऋग्वेद (7 33 6) मे भरतो की सख्या स्पष्ट रूप से अल्प बतायी गयी है। शतपथ् ब्राह्मण पाचाल राजा सोन सत्रसाह के अश्वमेध का वर्णन करते हुए कहता है जब सत्रसाह ने अश्वमेध, यज्ञ किया, छ हजार छ' सौ तीस कवचधारी तुर्वस विरोध मे उठ खडे हुए।"

(ओल्डनबर्ग बुद्ध का जीवन चरित– 1404)

यदि तुर्वसों की सख्या को सकेत–प्रतीक मान लिया जाए तो शूद्रो की सख्या भी बहुत अधिक न रही होगी।

शूद्रो ने अपने दुख–निवारण के लिये क्या किया? कुछ ब्राह्मणो ने, जिन्हे उन्होने पीडा पहुँचायी थी, उपनयन से इनकार कर दिया। वे दूसरे ब्राह्मण, जिनको उन्होने कोई कलेश तक न दिया था, का उपहार नही ले सकते थे? यह संभावना परिस्थितिया पर निर्भर करती है। प्रथमत हमे यह मालूम नही है कि ब्राह्मणो ने एक सयुक्त मोर्चा गठित कर लिया था। हम यह भी नही जानते कि यदि ऐसा था तो उस मोर्चे को तोडा जा सकता था या नही। लेकिन यह स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल मे ही ब्राह्मण एक वर्ग या जाति बन गये थे तथा उनमे जातीयता की भावना पनप चुकी थी। ऐसी दशा में ब्राह्मणों के षडयन्त्र को कुचलना शूद्रों के लिये दुष्कर कार्य था। द्वितीय, उपनयन करना कुल–पुरोहित का अधिकार बन चुका था। यह राजा निमि की कथा से स्पष्ट हो चुका है।

यदि इन सकेतो मे सार है तो प्रत्यक्षत शूद्र, ब्राह्मणो द्वारा अपने विरुद्ध गठित संयुक्त मोर्चे का विरोध करने में असमर्थ थे।

दूसरी सभावना यह हो सकती थी कि सभी क्षत्रिय मिलकर एक मोर्चा बना लेते जिससे ब्राह्मणो का विरोध प्रभाव हीन सा हो जाता। यह सभावना तो केवल अनुमान मात्र है। क्योकि प्रथमत शूद्र यह ही नहीं समझ पाये कि उपनयन बन्द हो जाने का भविष्य मे उनके जीवन–स्तर पर क्या प्रभाव पडेगा। दूसरी बात यह है कि क्षत्रिय सगठित न थे। और वह बात ऋग्वेद मे वर्णित दसराज्ञ युद्ध से स्पष्ट

का ही अप्रतिष्ठित या कलकित क्यो ठहराया गया है? मात्र इसलिये कि वह ब्राह्मणो द्वारा शूद्र स्त्री की सतति है। वस्तुत यह शूद्रो के प्रति बदले की भावना से किया गया ब्राह्मण–कृत्य है।

इससे निस्सदेह यह सिद्ध हो जाता है कि ब्राह्मणो और शूद्रों में सधि हुई ही नही।

4

अन्तिम प्रश्न यह है कि "शूद्रो ने यह अधोपतन कैसे सहन कर लिया?" इस प्रश्न के मूल मे सभवत यह मत है कि प्राचीन आर्यो मे शूद्रो की जनसख्या विशाल थी। अस्तु, विशाल जनसख्या वाले शूद्र अल्पसख्यक ब्राह्मणो द्वारा उपनयन बन्द कर देना सहन कर बैठे, यह कुछ आश्चर्यजनक भले ही न हो विचित्र अवश्य है। यह मत संभवत हिन्दुओ मे शूद्रो की सख्या को दृष्टिगत रखते हुए किया गया लगता है। यह निराधार है। हिन्दू समाज के शूद्र प्राचीन आर्यो के शूद्रो के वशज नही है।

भारतीय आर्यो के शूद्र और आधुनिक हिन्दू समाज के शूद्र का अर्थ–भेद न कर पाने के कारण ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। आर्यो मे यह एक जाति (वश या कुल) विशेष का नाम था। किन्तु हिन्दू समाज मे "शूद" शब्द कोई स्वाभाविक नाम नही है। यह तथाकथित नीच अथवा असभ्य मानव–वर्ग के लिये प्रयुक्त गुणवाचक शब्द–सज्ञा है। यह मानव–वर्ग सामान्यत अनेक जातियो, कुलो, वशो तथा कबीलो का समूह मात्र है। जिनके रहन–सहन, खान–पान, रस्म–रिवाज आदि मे भिन्नता तथा विविधता है। बस एक साम्य है और वह यह कि वे सब हिन्दू है। और हिन्दू सस्कृति के धरातल पर वे सबसे नीचे है। उनको शूद्र कहना अनुचित है। उनका ब्राह्मणों को कलेश देने वाले आर्यो के शूद्रो से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह बडे खेद का विषय है कि आधुनिक युग के निर्दोष और सामाजिक स्तर पर पिछडे लोगो को मूल आर्यो से सम्बद्ध कर अकारण ही दण्डनीय बनाकर बेबस कर दिया गया है।

सूत्रकार दोनो प्रकार के शूद्रो का अन्तर भली भाति जानते थे। अन्यथा वे सच्छूद्र और असच्छुद्र एव अनिर्वासति और निर्वासित शूद्रो मे भेद न करते। सच्छूद्र का अर्थ है सभ्य शूद्र और असच्छूद्र का अर्थ है असभ्य शूद्र। निर्वासित शूद्र का अर्थ है गाँव मे रहने वाला शूद्र और अनिर्वासित शूद्र का अर्थ है गॉव के बाहर रहने वाला शूद्र। काणे महोदय कृत धर्मशास्त्र खण्ड द्वितीय (1) पृ० 123 के अनुसार ये नाम शूद्रों के स्तर मे हो रहे सुधार को देखते हुए दिये गये थे। यह मत सत्य से दूर है वास्तविकता यह है कि सच्छूद्र और अनिर्वासित शूद्र आर्य शूद्र हैं जबकि

असच्छूद्र और अनिर्वासित शूद्र हिन्दू शूद्र है।

हमारे चिन्तन का विषय आर्यो के शूद्र हैं जिनका हिन्दू समाज के शूद्रो से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिये यह नहीं माना जा सकता कि यदि हिन्दुओ मे शूद्रो की सख्या अधिक है तो आर्यो मे भी शूद्रो की जनसंख्या बडी थी। यह तर्क तथ्यजनित न होने के कारण हमार विचार का आधार नही बन सकता।

हम यह ठीक तरह नही जानते कि आर्यो के शूद्र जाति, कुल या परिवार समूह थे। यदि हम उन्हे एक जाति मान ले तो भी उनकी सख्या कुछ सहस्र से अधिक नही रही होगी। ऋग्वेद (7 33 6) मे भरतो की सख्या स्पष्ट रूप से अल्प बतायी गयी है। शतपथ् ब्राह्मण पाचाल राजा सोन सत्रसाह के अश्वमेघ का वर्णन करते हुए कहता है जब सत्रसाह ने अश्वमेध, यज्ञ किया, छ हजार छ' सौ तीस कवचधारी तुर्वस विरोध मे उठ खडे हुए।"

(ओल्डनबर्ग बुद्ध का जीवन चरित– 1404)

यदि तुर्वसो की सख्या को सकेत–प्रतीक मान लिया जाए तो शूद्रो की सख्या भी बहुत अधिक न रही होगी।

शूद्रो ने अपने दुख–निवारण के लिये क्या किया? कुछ ब्राह्मणो ने, जिन्हे उन्होने पीडा पहुँचायी थी, उपनयन से इनकार कर दिया। वे दूसरे ब्राह्मण, जिनको उन्होने कोई कलेश तक न दिया था, का उपहार नहीं ले सकते थे? यह सभावना परिस्थितिया पर निर्भर करती है। प्रथमत हमें यह मालूम नहीं है कि ब्राह्मणो ने एक सयुक्त मोर्चा गठित कर लिया था। हम यह भी नही जानते कि यदि ऐसा था तो उस मोर्चे को तोडा जा सकता था या नहीं। लेकिन यह स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल मे ही ब्राह्मण एक वर्ग या जाति बन गये थे तथा उनमें जातीयता की भावना पनप चुकी थी। ऐसी दशा में ब्राह्मणो के षडयन्त्र को कुचलना शूद्रो के लिये दुष्कर कार्य था। द्वितीय, उपनयन करना कुल–पुरोहित का अधिकार बन चुका था। यह राजा निमि की कथा से स्पष्ट हो चुका है।

यदि इन संकेतो मे सार है तो प्रत्यक्षत शूद्र, ब्राह्मणो द्वारा अपने विरुद्ध गठित सयुक्त मोर्चे का विरोध करने मे असमर्थ थे।

दूसरी सभावना यह हो सकती थी कि सभी क्षत्रिय मिलकर एक मोर्चा बना लेते जिससे ब्राह्मणो का विरोध प्रभाव हीन सा हो जाता। यह संभावना तो केवल अनुमान मात्र है। क्योकि प्रथमत शूद्र यह ही नहीं समझ पाये कि उपनयन बन्द हो जाने का भविष्य मे उनके जीवन–स्तर पर क्या प्रभाव पडेगा। दूसरी बात यह है कि क्षत्रिय संगठित न थे। और वह बात ऋग्वेद में वर्णित दसराज्ञ युद्ध से स्पष्ट

है कि शूद्र क्षत्रिया और अशूद्र क्षत्रियो के मध्य प्रेम या सोजन्य नाम की कोई चीज शेष न बच पायी थी।

अतएव कोई आश्चर्य नहीं, यदि शूद्रो ने उक्त परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए ब्राह्मणा की इस बात को मान लिया हो कि वे उपनयन के अधिकारी नहीं हैं।

12. सिद्धान्त-परीक्षण

इस निबन्ध का उद्देश्य शूद्रो की उत्पत्ति का स्रोत ढूँढना तथा उनके पतन के कारणो की गवेषणा है। ऐतिहासिक सामग्री तथा प्राचीन एव अर्वाचीन शोधकर्ता विद्वानों के सिद्धान्तो के परीक्षण के उपरान्त मैने एक नूतन मत प्रतिपादित किया है। यह मत पिछले अध्यायो मे विषय की गभीरता और महत्व को दृष्टिगत रखते हुए अलग–अलग खण्डो मे स्पष्टता के साथ व्यक्त किया गया है। आइये, अब उस बिखरी सामग्री को एकत्रित करे और शोध के सम्बन्ध मे पूर्ण एव परिपक्व ज्ञान प्राप्त करे। यह सक्षेप मे इस प्रकार है–

1 शूद्र सूर्यवशीय आर्य जातियो मे एक कुल या वश थे।

2 भारतीय आर्य समाज में शूद्र का स्तर क्षत्रिय वर्ण था।

3. एक समय आर्यो मे केवल तीन वर्ण– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य– ही थे। शूद्र अलग वर्ण न होकर क्षत्रिय वर्ण का ही एक अग थे।

4 शूद्र राजाओ और ब्राह्मणो के मध्य निरन्तर सघर्ष हुआ जिसमे ब्राह्मणो को अत्याचार, उत्पीडन और अपमान सहना पडा।

5 शूद्रो के अत्याचार–उत्पीडन से त्रस्त ब्राह्मणो ने द्वेष–वश उनका उपनयन बन्द कर दिया।

6 उपनयन (यज्ञोपवीत) के निरोध से शूद्रो का सामाजिक अपमान हुआ और वे अपने स्तर से च्युत हुए। उनका स्तर वैश्यो से भी निम्न हो गया। अन्तिम परिणति यह हुई कि वे समाज का चौथा वर्ण बन गये।

अब सिद्धान्त की यथार्थता का मूल्याकन शेष रह गया है। प्राय प्रत्येक विद्वान शोधकर्ता इस कार्य को दूसरों अथवा पाठकों के विवेक पर छोड़ देता है। मै इस परम्परागत लीक से हटकर स्वय अपने सिद्धान्त का परीक्षण करना श्रेयष्कर समझता हूँ क्योंकि इससे मुझे अपने सिद्धान्त–मत के प्रतिष्ठापन का पूर्ण अवसर प्राप्त होगा।

2.

मै यह जानता हूँ कि मेरे आलोचक मित्र यह तर्क कर सकते है कि

1 मेरा सिद्धान्त महाभारत के उस एकमात्र प्रसग पर आधारित है जिसमे पैजवन को शूद्र कहा गया है।

2 "पैजवन और सुदास एक ही व्यक्ति था" शका से परे नही है। और

3 पैजवन का शूद्र के रूप मे वर्णन महाभारत के एकमात्र स्थल के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी नहीं मिलता। अस्तु, ऐसे दुर्बल आधार पर स्थायित्व सिद्धान्त–मत कैसे स्वीकार किया जा सकता है।

मै इस मत से सहमत नहीं हूँ कि एकमात्र साक्ष्य के आधार पर कोई मत स्थापित नही किया जा सकता। कानून का अटल सिद्धान्त है कि साक्ष्यो का मूल्य देखना चाहिये न कि सख्या। फिर महाभारत के रचनाकार के पास कोई ऐसा स्पष्ट कारण न था जिसके वशीभूत हो वह असत्य वर्णन करता। कृति–रचना से लेकर आज तक रचयिता पर पक्षपात आदि का लाछन भी नहीं लगा है। अत "पैजवन शूद्र था" इस कथ्य में सदेह का कोई कारण नहीं है। यह निर्विवादत निर्णीत है कि रचनाकार परम्परागत सत्य अकित कर रहा था।

यह कहना कि ऋग्वेद मे पैजवन को शूद्र नहीं बताया गया, महाभारत के कथ्य के विरोध में नहीं है। ऋग्वेद मे पेजवन के वर्णन– विवरण में शूद्र शब्द की बेसुधी के अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। पहला तो यह ही कि ऋग्वेद एक धार्मिक ग्रथ है। अस्तु उसमे शूद्र के वर्णन की अपेक्षा नही की जा सकती। ऐसा उल्लेख अप्रांसागिक होगा। महाभारत एक ऐतिहासिक कृति है। अस्तु, उसमें यह स्पष्ट करना आवश्यक था कि पैजवन किस वर्ण या कुल का था।

जहॉ तक सुदास के लिये शूद्र शब्द के अल्प प्रयोग का तर्क है, मै इसे अनावश्यक समझता हूँ। कुल, गोत्र, जाति इत्यादि का वर्णन तो वास्तव में व्यक्तित्व को निश्चित करने के ध्येय से किया जाता है। प्रसिद्ध पुरुषो के लिये तो यह अनावश्यक ही होता है। इसमे कोई संदेह नहीं है कि सुदास अपने समय का एक प्रख्यात व्यक्ति था। अत व्यक्तिगत–निर्धारण के निमित्त उसे शूद्र कहना आवश्यक न था। यह मात्र कल्पना नहीं है। इस सम्बन्ध मे अनेक ऐतिहासिक उदाहरण दिये जा सकते है । देखे– बुद्ध के समय मे बिम्बसार और पसेनादि दो राजा थे। उनके समकालीन अन्य सभी राजाओ का तत्कालीन साहित्य में सगोत्र वर्णन किया गया है। किन्तु, बिम्बसार और पसेनादि का उल्लेख उनके व्यक्तित्व नामो से ही किया गया है प्रो अल्डनवर्ग ने अपनी पुस्तक "लाइफ ऑफ बुद्धा" (पृ० स० 414) मे

इसका कारण यह बताया है कि दोनो राजा ख्याति–प्राप्ति प्राप्त थे। अत उनक सगोत्र वर्णन–विवरण की आवश्यकता ही नहीं थी।

3

यह मान लेना अन्यायपूर्ण होगा कि मेरा सिद्धान्त –मत महाभारत के एकमात्र प्रसंग अथवा "पैजवन और सुदास एक ही व्यक्ति था" पर आधारित है। वास्तव मे ऐसा नही है। ऋग्वेद में पैजवन को शूद्र बताया जाना और पैजवन और सुदास एक ही व्यक्ति के दो नाम थे– मेरे सिद्धान्त–मत का एकमात्र आधार नही है। अन्य भी आधार है। प्रथम तो यह कि शतपथ ब्राह्मण ओर तैत्तिरंय ब्राह्मण ग्रथो मे यह स्पष्ट वर्णन है कि वर्ण केवल तीन ही थे तथा शूद्रो का अलग वर्ण न था। दूसरा यह कि शूद्र राजा और मत्री थे ओर तीसरा यह कि प्राचीन काल में शूद्रो को उपनयन का अधिकार था। क्या ये सब सबल तथा पुष्ट आधार नही है?

किसी भी सिद्धान्त–मत की विश्वसनीयता सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक है कि वह केवल विषय के निरूपण की ओर ही से सकेत न करे, प्रत्युत समस्या–समाधान निमित्त समस्त अवगुठित पहेलियो का प्रामाणिक एव तथ्यजनित समाधान भी प्रस्तुत करे।

विषय से सम्बन्धित प्रमुख पहेलिकाएँ निम्नलिखित है –

1 यह कहा जाता है कि शूद्र अनार्य थे और आर्यो के शत्रु थे। आर्यो ने उन्हे पराजित किया और अपना दास (गुलाम) बना लिया था। यदि यह सत्य है तो क्या कारण था कि यजुर्वेद और अथर्ववेद के रचनाकार ऋषियो ने शूद्रो का गुणगान किया? वे शूद्रो के कृपा–पात्र क्यो बनना चाहते थे?

2. यह भी कहा जाता है कि शूद्रों को विद्याध्ययन का अधिकार न था। उस स्थिति मे शूद्र सुदास ने ऋग्वेद के मत्रो की रचना कैसे की?

3 बताया जाता है कि शूद्र यज्ञ नहीं कर सकते थे क्योकि वे इसके अधिकारी न थे। तब सुदास ने अश्वमेघ यज्ञ कैसे किया? यदि ऐसा था भी तो शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ करने वाले शूद्र को अभिवादन करने की विधि का विधान क्यो है?

4 यह कहा जाता है कि शूद्रों को उपनयन का अधिकार न था। यदि शूद्रों को आदि काल से ही यह अधिकार न था तो विवाद क्यो? बदरी और सस्कार गणपति मे यह उल्लेख क्यो कि शूद्र उपनयन के अधिकारी पात्र है?

5 यह भी कहा जाता है कि शूद्र सम्पत्ति–संचय के अधिकार से वंचित थे। यदि

इसे सच मान भी लिया जाय तब मैत्रायणी और कठ सहिताओ मे शूद्रो को धनिक और वैभवशाली क्यों बताया गया है?

6 शूद्रो को राज्याधिकारी बनाने के अयोग्य बताया गया है। फिर महाभारत मे शूद्र राज्यमन्त्रियो का उल्लेख क्यो है?

7 शूद्रो का कर्त्तव्य–धर्म तीनो वर्णो– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा कहा गया है। उस दशा मे शूद्र राजा कैसे हुए? सायणाचार्य ने सुदास तथा अन्य सेवक शूद्र राजाओ का वर्णन क्यो किया?

8 यदि शूद्रों को वेदाध्ययन, उपनयन और यज्ञ का अधिकार न था तो उसे यह अधिकार क्यों नही दिया गया?

9 उपनयन कराने, वेद पढने और यज्ञ कराने का अधिकार केवल ब्राह्मण को है। शूद्रों का उपनयन, वेदाध्ययन और यज्ञ निश्चितरूपेण ब्राह्मण के लिये लाभ के अवसर थे। यदि वे सदाशयता से काम लेते और शूद्रो को यह अधिकार–अवसर दे दते तो उन्हें यथेष्ट दक्षिणा मिलती। ऐसा करने स उन्हे कोई हानि न होती। साथ ही उनकी आजीविका–आय मे वृद्धि भी हो जाती। ऐसा होने पर भी ब्राह्मणें ने शूद्रों को क्षमा न करने का संकल्प क्यो किया?

10 पुनश्च, यदि शूद्रो को उपनयन, वेदाध्ययन और यज्ञ का अधिकार न था तब ब्राह्मण अपने विशेषाधिकारो के बल पर उन्हे यह अधिकार देना अगीकार कर सकते थे। अस्तु, यह प्रश्न ब्राह्मणो की व्यक्तिगत इच्छा पर क्यों नही छोड दिया गया? इन निषिद्ध (ब्राह्मणों द्वारा घोषित निषिद्ध) कार्यो को करने–कराने वाले ब्राह्मण के लिये दण्ड का प्रावधान क्यों किया गया?

वास्तव मे इन पहेलियो का उत्तर क्या है? न तो कट्टर हिन्दुओ ने ही इनका उत्तर देने का प्रयास किया है और न आधुनिक शोधकर्ता विद्वानो ने ही। सत्य तो यह है कि उन्हें इन पहेलिकाओ के अस्तित्व का आभास तक न था। पुरातन–पथी हिन्दू तो पुरुष सूक्त इस "देव–वाक्य" से ही सतुष्ट है कि शूद्र की उत्पत्ति पुरुष (इश्वर) के पैरो से हुई है। अत वह इस ओर ध्यान ही नही देता। दूसरी ओर अर्वाचीन शोधकारो ने यह मान कर सतोष कर लिया कि शूद्र अनार्य थे जिनके लिये आर्यो ने भिन्न कानून या आचार–सहिता निश्चित की। खेद का विषय है कि इन शोधकारो के किसी भी वर्ग ने न तो शूद्रो की समस्या से सम्बन्धित इन पहेलियों को आवरण–मुक्त करने के लिये आवश्यक शोध–कार्य किया है और न ही कोई ऐसा सिद्धान्त निश्चित किया है कि जिससे शूद्रों के उद्भव–स्तर के प्रश्न का हल सिद्ध हो सके

मेरा सिद्धान्त–मत इन सब पहेलियो का उत्तर प्रस्तुत करता है। कल्पना सख्या 1 से 4 मे बताया गया है कि शूद्र राजा और मत्री हो सकते थे। यही कारण है कि ऋषियो ने उनका योगदान किया और उनका कृपा–भाजन बनना चाहा था। कल्पना सख्या 5 और 6 मे स्पष्ट किया गया है कि शूद्रो के उपनयन को लेकर विवाद हुआ। कानून के माध्यम से शूद्रो को उपनयन के अधिकार से वचित कर दिया गया। साथ ही उपनयन–निरोधक कानून को प्रभावी बनाने के ध्येय से शूद्रो का उपनयन कराने वाले ब्राह्मण के लिये दण्ड का प्रावधान किया गया। इस प्रकार कोई ऐसी पहेलिका शेष नहीं रह जाती जिसका समाधान मेरे इस मत ने न किया हो। अत मै यह कहने का पूर्ण अधिकारी हूँ कि शूद्रो की उत्पत्ति और पतन के सम्बन्ध में मेरा मत पूर्णत दोष–मुक्त तथा उत्तम है। अस्तु, स्वीकारणीय है।

बौद्ध शिशु बोध	अज्ञात भिक्षु	5 00
बौद्ध सस्कार कैसे करे	स० डॉ० कुसुम 'वियोगी'	15-00

अम्बेडकर साहित्य

युगपुरुष बाबा साहेब अम्बेडकर (सघर्ष गाथा)	हिमाशु राय	300 00
रामायण मे सस्कृति सघर्ष	प्रा० अरूण कावले	150 00
गुलामगीरी	ज्योतिबा फुले (अनु० डॉ० विमलकीर्ति)	125 00
दलित क्रान्ति का साहित्य	सम्पादक डॉ० श्यौराज सिंह बेचैन	150 00
गाधी–अम्बेडकर हरिजन–जनता	डॉ० श्यौराज सिह बेचैन	100 00
अन्याय कोई परम्परा नही	डॉ० बी० आर० अम्बेडकर स० श्यौराज सिह बेचैन	150 00
हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव	डॉ० श्यौराज सिह बेचैन	450 00
बालक अम्बेडकर	डॉ० धर्मवीर	75 00
डॉ० अम्बेडकर और दलित आन्दोलन	डॉ० धर्मवीर	60 00
डॉ० अम्बेडकर की प्रभाववादी व्याख्या	डॉ० धर्मवीर	10 00
बाबा साहब और उनके सस्मरण	मोहनदास नैमिशराय	40 00
चमार	जी डब्ल्यू ब्रिग्स अनु० जयप्रकाश कर्दम	250 00
डॉ० अम्बेडकर और उनक समकालीन	जयप्रकाश कर्दम	25 00
युगप्रवर्तक सरह और दोहाकोश	डॉ० रमाइन्द्र कुमार	28 00
हिन्दू समाजव्यवस्था– सिद्धान्त और समीक्षा	डॉ० देवीसिंह	20 00
दलित साहित्य और सामाजिक न्याय	डॉ० पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी	120 00

सन्त साहित्य

सन्त रैदास का निर्वर्ण सम्प्रदाय (पुरस्कृत)	डॉ० धर्मवीर	200 00
गुरु रविदास	डॉ० धर्मवीर	60 00
कौटिल्य का सामाजिक वैर	डॉ० धर्मवीर	35 00
गुरु रविदास की वाणियॉं	सकलन . राहुल गौतम	15 00
सन्त रविदास की साखियॉं और पद	सकलन प्रमोद गौतम	15 00

उपन्यास

पहला खत	डॉ० धर्मवीर	100 00
दिशाबोध	श्रीराम शर्मा	90 00
छप्पर	जयप्रकाश कर्दम	80 00
मन्नू	राकेश भारती	90 00

कविता

छन्दोमर्या	अनु० मनोज सोनकर	95 00
लुम्बिनी की गोद मे	दयाचन्द्र तिलखन 'पारखी'	90 00
आजाद हे हम	एन० आर० सागर	50 00
शब्द बोलेगे	अचना त्रिपाठी	160 00
हीरानन	डॉ० धर्मवीर	60 00
कम्पिला	डॉ० धर्मवीर	45 00
एकता के फूल	रमेशचन्द्र जालोनिया	90 00
उत्पीडन की यात्रा	लक्ष्मीनारायण 'सुधाकर'	60 00

कहानी

आवाज	मोहन्दास नैमिशराय	140 00
चार इच की कलम	डॉ० कुसुम वियोगी	60 00
अपन बीच अजनबी	सुभाष अखिल	35 00

निबन्ध/नाटक

विचार यात्रा मे	डॉ० एन० सिह	120 00
मेरा दलित चिन्तन	डॉ० एन० सिह	125 00
अन्तिम अवरोध	एन० आर० सागर	40 00

बाल साहित्य

प्यारी मम्मी यह बतला दो	मुसाफिर देहलवी	15 00
मेरे प्यारे गीत	मुसाफिर देहलवी	15 00
शरतचन्द्र का बचपन	विष्णु प्रभाकर	15 00
एसे थे शरत्	विष्णु प्रभाकर	15.00
ऊर्जा के स्रोत	डॉ० मस्तराम कपूर	18 00
दक्खिन की खूट	डॉ० धर्मवीर	15 00
हाथी और गीदड की कहानी	डॉ० धर्मवीर	18 00
जगल की गुडिया	पद्मश्री डॉ० श्यामसिह 'शशि'	15 00
उडनेवाले हाथी	पद्मश्री डॉ० श्यामसिहसिह 'शशि'	15 00
जादू के दाने	सगीता	15 00
अनोखी सोगात	सगीता	15 00
ढोल के अन्दर पोल	प्रमोद गौतम	15 00
घसियारे का बेटा	प्रमोद गौतम	15 00
सुनहरे बालो वाली राजकुमारी	भगवती पाडे	15 00

खजूर का पेड और घसियारे का बेटा	कमल शुक्ल	20 00
शमशान का रहस्य (बाल उपन्यास)	जयप्रकाश कर्दम	15 00
गुरु रविदास की वाणियाँ	सकलन राहुल गौतम	15 00
सन्त रविदास की साखियाँ और पद	सकलन प्रमोद गौतम	15 00
गाधी का बचपन	राहुल गौतम	15 00
ऐसे थे गाधी	सगीता	15 00
मूर्ख ज्योतिषी	प्रमोद गौतम	15 00
प्रतीक गाथाएँ	सर्वेश शमा	15 00
एड्स कैंसर और तपेदिक	डॉ॰ गीता शर्मा	15 00
बायोगैस ग्रामीण औद्योगीकरण	डॉ॰ नेहा	15 00
बुद्धि का चमत्कार	बुद्धप्रिय गौतम	15 00
प्रदूषण धरा से अतरिक्ष तक	कचन	15 00
बायोगैस की नई सम्भावनाएँ	सगीता	15 00
चल मेरे घोडे	टी॰ पी॰ सिह 'तेज'	15 00
पथ–प्रणेता अम्बेडकर	डॉ॰ तारा परमार	15 00
अम्बेडकर की जीवन–यात्रा	डॉ॰ तारा परमार	15 00
डर से डर मत जाना	रमेशचन्द्र जालानिया	15 00
सिद्धार्थ का गृहत्याग	कालीचरण गौतम	15 00
बाल किशोर गीत	डॉ॰ कुसुम 'वियोगी'	15 00
हमारे प्रेरणास्रोत डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकर भाग–1	मोहनदास नैमिशराय	18 00
हमारे प्रेरणास्रोत डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकर भाग – 2	मोहनदास नैमिशराय	18.00
भीम की जिद	डॉ॰ धर्मवीर	15.00
अम्बेडकर का बचपन	डॉ॰ धर्मवीर	15 00
डॉ॰ अम्बेडकर की जीवनधारा	डॉ॰ धर्मवीर	15 00
अम्बेडकर की कहानी	जयप्रकाश कर्दम	15 00
बिहार के बौद्ध भिक्षु	जयप्रकाश कर्दम	15 00
अम्बेडकर की शिक्षा	डॉ॰ धर्मवीर	15 00

विविध

हिन्दी की आत्मा	डॉ॰ धर्मवीर	400 00
सीमन्तनी उपदेश	डॉ॰ धर्मवीर	70 00
नोकायती वैष्णव – विष्णु प्रभाकर	डॉ॰ धर्मवीर	70 00
इंग्लिश ग्रामर (टैक्सट बुक)	विद्या भारद्वाज	150 00